श्री सूरदासजी रचित

श्रीकृष्ण माधुरी

सरल भावार्थ सहित

अनुवादक
सुदर्शन सिंह

श्री सूरदासजी रचित
श्री कृष्ण माधुरी
सरल भावार्थ सहित
अनुवादक
सुदर्शन सिंह

Central Library
185441
Gurukula Kangri University Haridwar
097
185441

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१४ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य अजिल्द १) एक रुपया
सजिल्द १।=) एक रुपया छः आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

'श्रीकृष्ण-माधुरी' के नामसे सूर-पदावलीका यह चौथा संग्रह सूर-साहित्यके प्रेमियोंकी सेवामें प्रस्तुत है। जैसा कि इस संग्रहके नामसे ही व्यक्त है, इसमें माधुर्यनिधि सर्वतोमधुर भगवान् श्रीकृष्णके अनेकविध माधुर्यका वर्णन करनेवाले पदोंका ही संग्रह किया गया है। इसके पहले 'श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी' के नामसे जो संग्रह निकल चुका है, उसमें श्रीकृष्णकी मनोमुग्धकारिणी शिशुलीलाकी झाँकी देखनेमें आती है। वर्तमान संग्रहमें उनके बाल, कुमार एवं किशोर रूपोंकी छटा देखनेको मिलती है तथा साथ ही उनकी मुरलीकी मादकताका भी बड़ा ही सरस वर्णन है।

इसमें माधुर्यपरक लगभग साढ़े तीन सौ चुने हुए पदोंका समावेश हुआ है, जो काव्य-कला एवं भावकी दृष्टिसे अनुपमेय हैं। इनमें भक्त-शिरोमणि कविने भावकी जो सरस धारा बहायी है, उसमें अवगाहन करनेपर ही उसका कुछ स्वाद मिल सकेगा। उसके विषयमें कुछ लिखना वैरस्यका कारण भले ही बने। अस्तु,

विषयकी दृष्टिसे इस संग्रहको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। पहले भागमें, जिसमें केवल १४४ पद हैं, श्रीकृष्णकी विविध मधुर झाँकियोंके दर्शन होते हैं। इसीके अन्तर्गत उनके वनसे लौटनेकी दिव्य छटा भी दर्शनीय है। पुष्टिमार्गके पद-संग्रहोंमें इन्हें 'आवनी' के पद कहा गया है। दिनभर वनमें गायें चरानेके बाद संध्याके समय श्रीकृष्ण जब गौओं एवं ग्वाल-बालोंके साथ वेणुनाद करते हुए लटकीली चालसे नन्दभवनकी ओर लौटते थे, उस समयकी उनकी गोधूलि-धूसरित छवि

व्रजजनोंको अमित सुख प्रदान करती थी। उसी लोकोत्तर छविका सूरने इन पदोंमें बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। दूसरे भागमें, जिसमें दो सौसे कुछ कम पद हैं, उनकी मुरलीकी अलौकिक माधुरीका वर्णन है, जिसकी अनुपम स्वर-लहरी अचेतनोंमें चेतनताका संचार कर देती थी और चेतनोंको विजडित कर देती थी—'*अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम्।*' मुरलीकी मोहकताके वर्णनमें तो सूरदासजीने मानो कलम ही तोड़ दी है। मुरलीपर संस्कृत एवं प्रादेशिक भाषाओंमें इतना प्रचुर साहित्य मिलता है कि उसे एकत्रित किया जाय तो एक वृहत् ग्रन्थ तैयार हो जाय। सूरदासजीकी मुरली-विषयक उक्तियाँ कम-से-कम हिंदी-साहित्यमें तो बेजोड़ हैं। इस प्रकार यह संग्रह माधुर्यकी दृष्टिसे अनूठा सिद्ध होगा। आशा है, प्रेमी पाठक सूर-पदावलीके पूर्व-प्रकाशित संग्रहोंकी भाँति ही इस संग्रहका भी समुचित समादर करेंगे और हमारा उत्साह बढ़ायेंगे। भगवान्ने चाहा तो आगेके संग्रह भी क्रमशः शीघ्र ही प्रकाशमें आयेंगे। सम्पादनमें अत्यधिक सावधानी बरतनेपर भी मूल तथा अनुवादमें सम्भव है दृष्टि-दोष अथवा असावधानीके कारण कई भूलें रह गयी हों। विज्ञ पाठक कृपापूर्वक यदि उन भूलोंकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे तो अगले संस्करणमें हम साभार उन्हें सुधारनेकी चेष्टा करेंगे। किं बहुना विज्ञेषु।

विनीत—

प्रकाशक

श्रीहरिः

पद-सूची

राम-श्यामका खेल

श्रीहरिः

श्रीकृष्ण-माधुरी

राग बिलावल

[१]

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारबिंद उर धरौ ॥ १ ॥
हरि की कथा होइ जब जहाँ,
गंगाहू चलि आवै तहाँ ॥ २ ॥
जमुना, सिंधु, सरस्वति आवै।
गोदावरी बिलंब न लावै ॥ ३ ॥
सर्व तीर्थ कौ बासौ तहाँ,
'सूर' हरि कथा होवै जहाँ ॥ ४ ॥

बार-बार श्रीहरिका स्मरण करो, श्रीहरिके चरणारविन्दको हृदयमें धारण करो। जहाँ जब श्रीहरिकी कथा होती है, वहाँ उस समय स्वयं गङ्गाजी चली आती हैं। (साथ ही) यमुना, सिन्धु एवं सरस्वती भी आ जाती हैं और गोदावरी भी आनेमें देर नहीं करतीं। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीहरिकी कथा जहाँ होती है, वहाँ सभी तीर्थोंका (स्थिर) निवास होता है !

[२]

कमल नैन ससि वदन मनोहर,
देखौ हो पति ! अति बिचित्र गति।

स्याम सुभग तन, पीत बसन दुति,
सोहै बनमाला अद्‌भुत अति ॥ १ ॥
नव मनि मुकुट प्रभा अति उद्दित,
चित्त चकित अनुमान न पावति।
अति प्रकास निसि बिमल तिमिर छर,
कर मलि मलि निज पतिहि जगावति ॥ २ ॥
दरसन सुखी दुखी अति सोचति,
षट सुत सोक सुरति उर आवति।
सूरदास प्रभु होहु पराकृत,
यौं कहि भुज के चिन्ह दुरावति ॥ ३ ॥

(देवकीजी श्रीवसुदेवजीसे कहती हैं—) 'स्वामी ! यह अत्यन्त अद्भुत लीला तो देखो कि साक्षात् नारायण मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं, जिनके कमलके समान नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मनोहर मुख है, सुन्दर श्याम-वर्ण शरीर है, ज्योतिर्मय पीताम्बर पहने हैं, अत्यन्त अद्भुत (दिव्य) वनमाला शोभित हो रही है, मुकुटमें लगी नवीन मणियाँ अपनी प्रभा तीव्रतासे फैला रही हैं, जिससे देवकीजीका चित्त आश्चर्यमें पड़ गया है; (और) वे (कुछ भी) अटकल नहीं कर पा रही हैं (कि यह क्या हो गया है)। रात्रिके गाढ अन्धकारको नाश करता हुआ (भगवान्‌की ज्योतिका) अत्यन्त निर्मल प्रकाश (अपने निवास-गृहमें—कारागारमें) देखकर वे हाथ मल-मलकर (बार-बार हाथ हिलाकर) अपने पति (वसुदेवजी) को जगाती हैं। (श्रीहरिका) दर्शन करके तो वे सुखी हैं; किंतु (कंसद्वारा मारे गये अपने) छः पुत्रोंके वियोगकी स्मृति जब मनमें आती है, तब वे दुखी होकर अत्यधिक सोच करने लगती हैं (कि पता नहीं कंस इनके साथ कैसा व्यवहार करेगा)। सूरदासजी कहते हैं—(वे) यह कहती हुई कि 'भगवन् ! आप प्राकृत (साधारण मनुष्य-) बालकके समान बन जाओ' (उत्पन्न हुए बालककी चारों) भुजाओंके (शङ्ख-चक्रादि) चिह्नोंको छिपाती (छिपानेका प्रयत्न करती) हैं।

राग बिहागरौ

[३]

देवकी मन मन चकित भई ।
देखौ आइ पुत्र मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई ॥ १ ॥
सिर पै मुकुट, पीत उपरैना, भृगु पद उर, भुज चारि धरें ।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माग्यौ इहि भेष करें ॥ २ ॥
छोरे निगड़, सुआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघरयौ ।
तुरत मोहि गोकुल पहुँचावौ, यौं कहि कैं सिसु वेष धरयौ ॥ ३ ॥
तब बसुदेव उठे यह सुनतै, हरषवंत नँद भवन गए ।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आइ 'सूर' मधुपुरी ठए ॥ ४ ॥

देवकीजी मन-ही-मन चकित हुईं । (वे वसुदेवजीसे बोलीं—) 'पुत्रका मुख आकर क्यों नहीं देखते ? हे भगवान् ! ऐसा पुत्र होते तो कहीं नहीं देखा । इनके सिरपर मुकुट है, पीला उपरना (दुपट्टा) ओढ़े हैं, हृदयमें भृगुका चरणचिह्न है और चार भुजाएँ धारण किये हैं ।' तब श्रीहरिने पूर्वजन्मकी कथा* सुनाकर कहा—'तुमने इसी वेषमें मुझे (पुत्ररूपमें) माँगा था ।' भगवान्ने (अपनी मायासे वसुदेवजीकी) हथकड़ी-बेड़ी खोल दी, (कारागारके) पहरेदारोंको सुला दिया और द्वारके किवाड़ भी (अपने-आप) खुल गये । 'मुझे तुरंत गोकुल पहुँचा दो' यह कहकर (भगवान्ने) शिशुका रूप धारण कर

* भगवान्ने बताया कि पहले कल्पमें वसुदेवजी सुतपा नामके प्रजापति थे और देवकीजी उनकी पत्नी पृश्नि थीं । दोनोंने दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् नारायणको प्रसन्न किया । भगवान्के प्रकट होनेपर उन्होंने वरदान माँगा—'आपके समान ही हमारे पुत्र हो ।' भगवान्ने तीन बार 'एवमस्तु' कहा । इसलिये उस कल्पमें पृश्निगर्भ नामसे भगवान् उनके पुत्र हुए । दूसरी बार वे लोग जब कश्यप और अदिति हुए, तब भगवान् वामनरूपमें उनके पुत्र बने और यह उनका तीसरा जन्म है ।

लिया। (भगवान्की यह बात सुनते ही) वसुदेवजी उठे और हर्षित होकर (गोकुलमें) नन्द-भवनको चले गये। वहाँ अपने बालकको रखकर और (यशोदाजीकी कन्यारूपमें जन्मी) महामाया भगवतीको ले आकर— सूरदासजी कहते हैं—वसुदेवजी मथुरामें रहने लगे।

राग सारंग

[४]

ललन ! हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गुपाल ! लगौ इन नैननि रोग बलाइ तिहारी ॥ १ ॥
लट लटकनि, मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।
मनौ कमल दल सावक पेखत, उड़त मधुप छबि न्यारी ॥ २ ॥
लोचन ललित, कपोलन काजर, छबि उपजति अधिकारी।
सुख मैं सुख औरैं रुचि बाढ़ति, हँसत देत किलकारी ॥ ३ ॥
अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिं परत बिचारी।
बिकसति ज्योति अधर बिच, मानौ बिधु मैं बिज्जु उज्यारी ॥ ४ ॥
सुंदरता कौ पार न पावति रूप देखि महतारी।
'सूर' सिंधु की बूँद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी ॥ ५ ॥

(यशोदाजी कहती हैं—) 'लाल ! मैं तुम्हारी इस शोभापर न्यौछावर हूँ। मेरे बाल-गोपाल ! तुम्हारे जितने रोग और संकट हों, वे मेरे इन नेत्रोंको आ लगें।' (ललाटपर) अलकें लटक रही हैं, मनको मोहित करनेवाला कज्जलका बिन्दु (डिठौना) है तथा भाल (मस्तक) पर अत्यन्त सुखदायी तिलक लगा है, मानो एक भौंरेका बच्चा कमल-दलको (बैठा) देख रहा है और दूसरे भौंरे उड़ रहे हैं, जिसकी निराली ही शोभा है। सुन्दर नेत्र हैं, कपोलोंपर (रोनेसे—या दोनों हाथोंसे नेत्रोंको मीजनेके कारण) काजल लग गया है, इससे बहुत अधिक छटाका विस्तार हो रहा है। इस आनन्ददायी शोभामें (तब) और (भी) आनन्द तथा स्वाद बढ़ जाता है, (जब) किलकारी मारकर मोहन हँसते हैं। तुतलाकर बोलते समय छोटे-छोटे

दाँतोंकी उपमा बुद्धिद्वारा सोची नहीं जा सकती; फिर भी (हँसते समय) दाँतोंकी ज्योति ओष्ठोंके बीच इस प्रकार खिलती है मानो चन्द्रमामें विद्युत्का प्रकाश हो गया हो। माता इस रूपको देखकर उसकी सुन्दरताका पार नहीं पा रही है! सूरदासजी कहते हैं कि हमारी मति (बुद्धि), गति तथा दृष्टि तो (इस रूपको निहारकर) समुद्रकी बूँद हो गयी (उसमें सर्वथा लीन हो गयी)।

राग-जैतश्री

[५]

लाल! हौं वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि मन बिहँसनि,
भृकुटी बिकट ललित नैनन पर॥ १॥
दमकति दूध दँतुलियाँ बिहँसत,
मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु लघु लट सिर घूँघरवारी,
लटकन लटकि रह्यौ माथे पर॥ २॥
यह उपमा कापै कहि आवै,
कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव घन चंद रेख मधि राजत,
सुरगुरु सुक्र उदोत परस्पर॥ ३॥
लोचन लोल, कपोल ललित अति,
नासा के मुकता रदछद पर।
'सूर' कहा न्यौछावर करिए,
अपने लाल ललित लरखर पर॥ ४॥

(माता कहती हैं—) 'लाल! मैं तेरे मुखपर बलिहारी जाती हूँ। (इतना ही नहीं,) मैं तेरी घुँघराली अलकों, मनमोहनी बिहँसन (हँसी), टेढ़ी भौंहों और सुन्दर नेत्रोंपर भी न्यौछावर हूँ। (अरे!)

हँसते समय दूधकी दँतुलियाँ (छोटे दाँत) तो ऐसी चमकती हैं मानो मोतियोंने कमलपर निवास कर लिया हो। सिरपर छोटी-छोटी घुँघराली अलकों (के साथ) मस्तकपर लटकन झूल रहा है; भला, उसकी उपमाका वर्णन कौन कर सकता है। (फिर भी) कुछ कहती हूँ, यद्यपि मनमें संकोच हो रहा है; (क्योंकि वह) ऐसा लगता है मानो नवीन (सजल) मेघमें चन्द्रमाकी रेखाके बीच बृहस्पति तथा शुक्रकी ज्योति एक साथ प्रकाशित हो । चञ्चल नेत्र हैं । अत्यन्त सुन्दर कपोल हैं और ओठोंपर नासिकाका मोती झूल रहा है । सूरदासजीके शब्दोंमें माता कहती हैं कि 'अपने सुन्दर लालके लड़खड़ाने (उठकर गिरने) पर क्या न्यौछावर कर दूँ।'

राग आसावरी

[६]

घुटुरुन चलत स्याम मनि आँगन,
मातु-पिता दोउ देखत री।
कबहूँ किलकि तात मुख हेरत,
कबहुँ मातु मुख पेखत री ॥ १ ॥
लटकन लटकत ललित भाल पै,
काजर बिंदु भ्रुव ऊपर री।
यह सोभा नैनन भरि देखैं,
नहिं उपमा तिहुँ भू पर री ॥ २ ॥
कबहुँक दौरि घुटुरुवन लपकत,
गिरत, उठत, पुनि धावै री।
इत तैं नंद बुलाइ लेत हैं,
उत तैं जननि बुलावै री ॥ ३ ॥
दंपति होड़ करत आपुस मैं,
स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन
सुत हित करि दोउ लीन्हौ री ॥ ४ ॥

(कोई गोपी कहती है—) सखी ! श्यामसुन्दर मणिमय आँगनमें घुटनों चल रहे हैं और माता-पिता (यशोदाजी और नन्दजी) दोनों (उन्हें) देख रहे हैं। कभी किलकारी मारकर पिताका मुख देखते हैं और कभी माताके मुखकी ओर देखते हैं। सुन्दर ललाटपर लटकन लटक रहा है, भौंहके ऊपर काजलका विन्दु (डिठौना) लगा है, इस शोभाको हम भर नेत्र देखें (देखा ही करें), इसकी उपमा तीनों लोकोंमें नहीं है । कभी घुटनों दौड़कर लपकते हैं, गिर पड़ते हैं, (और) फिर उठकर दौड़ते हैं। इधरसे नन्दजी उन्हें बुला लेते हैं और उधरसे मैया बुलाती है। दम्पति (पिता-माता) परस्पर होड़ कर रहे हैं (कि मोहन किसके पास आता है) । श्यामसुन्दरको उन्होंने खिलौना बना लिया है । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी (साक्षात्) सनातन ब्रह्म हैं; किंतु दोनों (श्रीनन्द-यशोदा)ने अपने प्रेमसे उन्हें पुत्र बना लिया है ।

राग बिलावल

[७]

सोभित कर नवनीत लिएँ ।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किएँ ॥१॥
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिएँ ।
लट लटकनि मनौ मत्त मधुप गन माधुरि मधुहि पिएँ ॥२॥
कठुला कंठ, बज्र केहरि नख, राजत रुचिर हिएँ ।
धन्य 'सूर' एकौ पल यहि सुख, का सत कल्प जिएँ ॥३॥

(श्यामसुन्दर) हाथमें मक्खन (का लौंदा) लिये शोभित हो रहे हैं। घुटनोंके बल चलनेके कारण शरीर धूलिसे सनकर (बड़ा ही) भला लगता है और मुखपर दही पोत रखा है। सुन्दर कपोल हैं, चञ्चल नेत्र हैं और गोरोचनका तिलक लगाये हैं । अलकें ऐसी झूम रही हैं मानो भौंरोंका समूह (मुख-कमलके)सौन्दर्य-रूप मधु (पुष्परस) को पीकर मतवाला हो रहा हो । गलेका कठुला और हीरोंसे जड़ा बघनखा सुन्दर वक्षःस्थलपर शोभा दे रहा है।

सूरदासजी कहते हैं—इस शोभाके दर्शनका आनन्द एक पलको भी (जिसे) प्राप्त हो जाय, वह धन्य है, नहीं तो सौ कल्पतक जीवित रहनेसे भी क्या लाभ ?

राग कान्हरौ

[८]

आँगन खेलत घुटुवनि धाए।
नील जलद अभिराम स्याम तन,
निरखि जननि दोउ निकट बुलाए ॥ १ ॥
बंधुक सुमन अरुन पद पंकज,
अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर कलरव मनु हंसन सुत
रचे नीड़ दै बाहँ बसाए ॥ २ ॥
कटि किंकिनि बर हार ग्रीव दर,
रुचिर बाहु भूषन पहिराए।
उर श्रीबच्छ मनोहर हरि नख
हेम मध्य मनि गन बहु लाए ॥ ३ ॥
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका,
स्रवन, कपोल मोहि सुठि भाए।
भ्रुव सुंदर, करुना रस पूरन
लोचन मनहु जुगल जल जाए ॥ ४ ॥
भाल बिसाल ललित लटकन मनि,
बाल दसा के चिकुर सुहाए।
मानौ गुरु सनि कुज आगैं करि,
ससिहि मिलन तम के गन आए ॥ ५ ॥
उपमा एक अभूत भई तब,
जब जननी पट पीत उढ़ाए।
नील जलद पै उडुगन निरखत,
तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए ॥ ६ ॥

अंग अंग प्रति मार निकर मिलि,
छवि समूह लै लै मनु छाए।
सूरदास सो क्यों करि बरनै,
जो छवि निगम नेति करि गाए॥ ७॥

(श्यामसुन्दर) घुटनोंके बल दौड़ते हुए आँगनमें खेल रहे हैं। नीले मेघके समान सुन्दर शरीरवाले श्यामसुन्दरको देखकर दोनों माताओं (यशोदाजी और रोहिणीजी) ने पास बुलाया। पलाश-पुष्पके समान लाल-लाल चरणकमल हैं, जिनमें अङ्कुश आदि (अङ्कुश, वज्र, यव, कमल, ध्वजा आदि) चिह्न शोभा दे रहे हैं। नूपुरोंकी ध्वनि ऐसी है मानो— (अङ्ग-रूप) आश्रय देकर बसाये हुए हंसोंके बच्चे, रचे हुए नीडों (घोंसलों) में कलरव कर रहे हों। कमरमें घुँघुरूदार करधनी (बाजती) है, शङ्खके समान गलेमें श्रेष्ठ मोतियोंकी माला है, बाँहोंमें सुन्दर आभूषण पहनाये हुए हैं। हृदयपर श्रीवत्सचिह्न तथा सोनेमें बहुत-सी मणियोंके साथ जड़ा हुआ सुन्दर बघनखा है। मनोहर ठुड्डी, दाँत, ओठ, नाक, कान और कपोल मुझे बड़े प्रिय लगते हैं। सुन्दर भौंहें (और) करुणा-रस (कृपाकी माधुरी-) से पूर्ण नेत्र ऐसे हैं मानो दो कमल हों। विशाल ललाटपर सुन्दर मणिमय लटकन तथा बाल्यावस्थाके (गभुआरे, कोमल) केश (ऐसे) शोभा दे रहे हैं मानो बृहस्पति, शनि और मङ्गलको आगे करके अन्धकार (राहु) के दूतगण चन्द्रमासे मिलने आये हों। जब माताने पीताम्बर ओढ़ा दिया, तब तो एक अपूर्व उपमा सामने आ गयी। (वह यह कि) मानो नीले बादलपर तारागणोंको देखकर बिजलीने अपना (चञ्चल) स्वभाव छोड़कर (स्थिर बनकर) उन्हें छिपा लिया हो। (सखि ! ऐसा लगता है) मानो उनके अङ्ग-अङ्गपर कामदेवोंका समुदाय एकत्र हो अपने-अपने शोभा-समूहको ले-लेकर छा गया हो। सूरदासजी उस शोभाका कैसे वर्णन करें, जिसे वेद 'नेति-नेति' (वह ऐसा नहीं, ऐसा नहीं) कहकर गाते हैं।

राग धनाश्री

[९]

हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि, घुटुरुवन रेंगनि,
बोलनि बचन रसाल की ॥ १ ॥
छिटकि रहीं चहुँ दिसि जु लटुरियाँ,
लटकन लटकनि भाल की।
मोतिन सहित नासिका नथुनी
कंठ कमल दल माल की ॥ २ ॥
कछुक हाथ, कछु मुख माखन लै,
चितवनि नैन बिसाल की।
सूरदास प्रभु प्रेम मगन भइ,
ढिग न तजनि ब्रजबाल की ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है, मैं) छबीले (परम सुन्दर) लालकी धूलिसे लिपटी देह, घुटनोंके बल सरकने और रसपूर्ण (अत्यन्त मधुर) वाणी बोलनेपर बलिहारी जाती हूँ। (यही नहीं, उनके मुखपर) चारों ओर फैली हुई लटोंपर, ललाटपर लटकनेवाले लटकनपर, मोतियोंसे युक्त नासिकामें पड़ी हुई नथुनीपर, गलेमें (पहनी हुई) कमल-दलकी मालापर तथा कुछ मक्खन हाथमें और कुछ मुखमें लेकर विशाल नेत्रोंसे देखनेपर मैं बलिहारी हूँ। सूरदासजी कहते हैं—(वह) व्रजकी गोपी (श्यामसुन्दरकी शोभाको देखती हुई) प्रभुके प्रेममें मग्न हो गयी और (उनकी) समीपता छोड़ती ही नहीं। (उसके इस अनोखे प्रेमपर भी मैं न्योछावर हूँ।)

राग कान्हरौ

[१०]

आदर सहित बिलोकि स्याम मुख,
नंद अनंद रूप लिए कनियाँ।

सुंदर स्याम सरोज नील तन,
अँग अँग सुभग सकल सुखदनियाँ ॥ १ ॥
अरुन चरन नख जोति जगमगति,
रुन झुन करति पाइँ पैंजनियाँ।
कनक रतन मनि जटित रचित कटि
किंकनि कुनित, पीतपट तनियाँ ॥ २ ॥
पहुँची करनि, पदक उर हरि नख,
कठुला कंठ मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक द्विज अधर नासिका,
अति सुंदर राजति सुवरनियाँ ॥ ३ ॥
कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन,
कल कपोल की छबि न उपनियाँ।
भाल तिलक मसि बिंदु बिराजत,
सोभित सीस लाल चौतनियाँ ॥ ४ ॥
मन मोहिनी तोतरी बोलनि,
मुनि मन हरनि सु हँसि-मुसुकनियाँ।
बाल-सुभाव, बिलोल बिलोचन,
चोरति चितै चारु चितवनियाँ ॥ ५ ॥
निरखति ब्रज-जुबतीं सब ठाढ़ी,
नंद सुवन छबि चंदबदनियाँ।
सूरदास प्रभु निरखि मगन भईं,
प्रेम बिबस कछु सुधि न अपनियाँ ॥ ६ ॥

श्यामसुन्दरके मुखको आदरके साथ देखते हुए नन्दजीने उस आनन्दमूर्तिको गोदमें उठा लिया। उनका शरीर नीलकमलके समान श्यामवर्ण है और सभी अङ्ग मनोहर तथा समस्त सुखोंके दाता हैं। लाल-लाल चरणोंके नखोंकी ज्योति जगमग कर रही है और पैरोंमें नूपुर रुनझुन शब्द कर रहे हैं। सोनेकी बनी तथा रत्न एवं मणियोंसे जटित किङ्किणी कटिमें

झंकार कर रही है। पीताम्बरकी तनियाँ (बगलबंदी) पहिने हैं, हाथोंमें पहुँची है, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न तथा बघनखा है और गलेमें कठुला एवं गजमुक्ताकी सुन्दर माला पहिने हुए हैं। देखनेकी भूख बढ़ानेवाली ठुड्डी, दाँत, ओठ तथा नासिका अत्यन्त सुन्दर तथा उत्तम वर्ण होनेके कारण शोभा दे रहे हैं। टेढ़ी भौंहें हैं तथा मुख तो आनन्दका निधान ही है और सुन्दर कपोलोंकी छटाकी कोई उपमा नहीं। ललाटपर तिलक काजलकी बेंदी (डिठौने) के साथ विराजमान है तथा मस्तकपर लाल रंगकी चौकोर टोपी शोभित है। मनको मोहित करनेवाली तोतली बोली तथा हँसना और मुस्कराना (तो) मुनियोंके भी मनको हरण करनेवाला है। बालोचित (चपल) स्वभाव और चञ्चल नेत्र हैं; सुन्दर चितवन चित्तको चुराये लेती है। व्रजकी सब गोपियाँ श्रीनन्दनन्दनके चन्द्रमुखकी शोभा खड़ी-खड़ी देख रही हैं। सूरदासजी कहते हैं कि (वे) मेरे स्वामीको देखकर प्रेम-विवश होनेके कारण आनन्दमें विभोर हो गयी हैं, उन्हें अपनी कुछ भी सुधि नहीं है।

[११]

गोद लिऐं जसुधा नँद नंदै।
पीत झगुलिया की छबि छाजति,
बिज्जुलता सोहति मनु कंदै॥ १॥
बाजीपति अग्रज अंबा तेहिं,
अरक थान सुत माला गुंदै।
मानौ स्वर्गहि तैं सुरपति रिपु
कन्या सौति आइ ढरि सिंधै॥ २॥
आरि करत कर चपल चलावत,
नंद नारि आनन छ्वै मंदै।
मनौ भुजंग अमी रस लालच,
फिरि फिरि चाटत सुभग सुचंदै॥ ३॥

गूँगी बातनि यौं अनुरागत,
भँवर गुंजरत कमलन बंदै।
सूरदास स्वामी धनि तप किए,
बड़े भाग जसुधा औ नंदै ॥ ४ ॥

श्रीयशोदाजी नन्दनन्दनको गोदमें लिये हैं । (श्यामसुन्दरके शरीरपर) पीला झगला (बिना बाँहका कुर्ता) ऐसी शोभा पा रहा है, मानो मेघपर बिजली सुशोभित हो । काले रेशममें पिरोयी हुई मोतियों* की माला† धारण की हुई है, (जो ऐसी लगती है) मानो स्वर्गसे आकर गङ्गाजी‡ समुद्रमें मिल रही हैं । मचलते हुए चञ्चल हाथ चला-चलाकर श्रीनन्दरानीके मुखको धीरेसे (जाकर) छू लेते हैं; (उस समय ऐसा जान पड़ता है) मानो अमृतरसके लोभसे सर्प सुन्दर श्रेष्ठ चन्द्रमाको बार-बार चाटता हो । गूँगे-जैसे (अर्थरहित अस्पष्ट) शब्दोंसे ऐसा अनुराग उत्पन्न कर रहे हैं (ऐसे प्रिय लगते हैं) मानो कमलमें बंद हुए भ्रमर गुंजार कर रहे हों । सूरदासके ये स्वामी धन्य हैं, जिन्हें श्रीयशोदाजी और व्रजराज नन्दजीने बहुत तप करनेके बाद महान् भाग्यसे (पुत्र-रूपमें) पाया ।

राग धनाश्री

[१२]

कहाँ लौ बरनौं सुंदरताई ?
खेलत कुँवर कनक आँगन मैं नैन निरखि छबि पाई ॥ १ ॥
कुलहि लसत सिर स्यामसुँदर कैं, बहु बिधि सुरँग बनाई ।

---

* बाजीपति-अग्रज-अंबा=वाजिपति=समुद्रसे निकला अश्व (उच्चैःश्रवा), उसका बड़ा भाई ऐरावत, उसकी माता लक्ष्मी । लक्ष्मीका दूसरा नाम सिन्धुसुता=इस अर्थसे मोती ।

† अरक-थान-सुत=सूर्य-स्थान सुमेरु (पर्वत), उसका पुत्र राहु (श्यामवर्ण)

‡ सुरपति-रिपु-कन्या-सौति=इन्द्रशत्रु—पर्वतकी पुत्री पार्वतीकी सौत गङ्गाजी ।

मानौ नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई ॥ २ ॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराई।
मानौ प्रघट कंज मंजुल पै अलि अवली घिरि आई ॥ ३ ॥
नील, सेत औ पीत, लाल मनि लटकन भाल रुराई।
सनि गुरु असुर देवगुरु मिलि मनु भौमसहित समुदाई ॥ ४ ॥
दूध दंत दुति कहि न जाति कछु, अद्‌भुत उपमा पाई।
किलकत, हँसत, दुरति, प्रगटति मनु घन मैं बिज्जु छटाई ॥ ५ ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अलप अलप जल झाँई।
घुटुवन चलत, रेनु तन मंडित, सूरदास बलि जाई ॥ ६ ॥*

---

* सूरदासजीके इस पदके विविध पाठ हैं। हमारी अल्पमतिके अनुसार वही पाठ मान्य है, जो श्रीसूरके समयसे साम्प्रदायिक कीर्तन-पद्धतिमें अबतक चला आ रहा है, जैसे—

कहाँ लौं, बरनौं सुंदरताई।
खेलत कुँअर कनक आँगन में, नैनन अति सुखदाई ॥
सेत कुल्है सिर स्यामसुँदर के बहु विधि रँगन रँगाई।
मानौ नवघन ऊपर राजत मघवा धनुष चढाई ॥
अति सुदेस मन हरत कुटिल कच, मोहन मुख बगराई।
मानौ मंजुल कंज कोस पै अलि अवली घिरि आई ॥
नील सेत औ पीत लाल मनि लटकन भाल रुराई।
सनि, गुरु, असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई ॥
दूध दंत अधरन छबि की कछु एकै उपमा पाई।
किलकत, हँसत, दुरत, प्रघटत जनु घन में बिज्जु लताई ॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अलबल बोलनताई।
घुटुअन चलत, उठत प्रमुदित मन, सूरदास बलि जाई ॥

राग भी इसके अनेक हैं—कोई इसे रामकलीमें, कोई-कोई बिहाग और नटमें गाते हैं। यह शृङ्गार-समय कुल्है-वर्णनमें गाया जाता है।

(श्यामकी) सुन्दरताका कहाँतक वर्णन करूँ ? (श्रीनन्दबाबाके) स्वर्णमय आँगनमें खेलते हुए कुँवर (कन्हैया) की शोभाको मैं (अपने) नेत्रोंसे देख पायी हूँ। अनेक प्रकारके उत्तम रंगोंसे बनी कुलह— (एक प्रकारकी टोपी) श्यामसुन्दरके मस्तकपर (ऐसी) शोभा दे रही है, मानो नवीन मेघके ऊपर इन्द्र धनुष तानकर सुशोभित हो। मोहनके मुखके चारों ओर बिखरी हुई अत्यन्त सुन्दर और कोमल अलकें ऐसी मनोहर लगती हैं, मानो खिले हुए सुन्दर कमलपर भौंरोंका झुंड घिर आया हो। ललाटपर नीली (नीलम), श्वेत (हीरा), पीली (पुखराज) और लाल (पद्मराग) मणिसे बना लटकन ऐसा भला लग रहा है मानो शनि, शुक्र और बृहस्पति समुदाय बनाकर मङ्गलके साथ आ मिले हों। (उनके) दूधके दाँतोंकी ज्योतिका वर्णन तो हो नहीं सकता, उसने अद्भुत उपमा पा ली है। किलकारी लेकर हँसते समय वह ज्योति इस प्रकार छिपती और प्रकट होती है, मानो बादलोंमें विद्युत्की छटा हो। तनिक-तनिक बोलते हुए (उनके मुखसे) जो खण्डित वाणी (बिना वाक्यके कुछ शब्द) निकलती है, वह पूर्ण सुख देती है। घुटनों चल रहे हैं, शरीर धूलसे सुशोभित है, (इस शोभापर) सूरदास बलिहारी जाता है।

राग नटनारायन

[१३]

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज सोभा हरनि ॥ १ ॥
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिबरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥ २ ॥
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।

मनौ सुभग सिंगार सिसु तरु फर्‌यौ अद्‌भुत फरनि ॥ ३ ॥
चलत पद प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि ।
जलज संपुट सुभग छबि भरि लेति उर जनु धरनि ॥ ४ ॥
पुन्य फल अनुभवति सुतै बिलोकि कै नँद घरनि ।
'सूर' प्रभु की उर बसी किलकनि, ललित लरखरनि ॥ ५ ॥

श्रीहरिकी बालोचित शोभाको वर्णन करके कहता हूँ, जो सम्पूर्ण सुखोंकी सीमा तथा करोड़ों कामदेवोंकी शोभाको भी हरण करनेवाली है। उनकी (श्याम) भुजाओंने नागोंको, नेत्रोंने कमलोंको और मुखने चन्द्रमाको स्पर्धामें जीत लिया है, (जिससे) वे (सर्प) बिलोंमें, (कमल) पानीमें तथा (चन्द्रमा) आकाशमें चले गये तथा अन्य उपमाएँ भी भयसे छिप गयी हैं। सुहावना, श्यामवर्ण कोमल शरीर है और उसीके अनुकूल आभूषण-वस्त्र (ऐसे) सजे हैं, मानो सुन्दर श्रृङ्गार-रसका बालतरु (नवीन वृक्ष) अद्‌भुत फलोंसे फलवान् हो रहा हो। घुटनों तथा हाथोंके सहारे मणिमय आँगनमें चलते समय चरणोंका प्रतिबिम्ब ऐसा पड़ रहा है, मानो पृथ्वी कमलोंके सम्पुट (डिब्बों) में रखकर मनोहर शोभाको अपने हृदयमें भर रही हो। श्रीनन्दरानी अपने पुत्रको देखकर 'अपने पुण्योंका (यह) फल है' ऐसा अनुभव कर रही हैं। सूरदासके हृदयमें अपने स्वामीकी किलकनेकी तथा मनोहर लड़खड़ाकर गिरनेकी मनोहर छटा बस गयी है।

राग सूहा बिलावल

[१४]

मनिमय आँगन नंद कैं खेलत दोउ भैया ।
गौर स्याम जोरी बनी बलराम कन्हैया ॥ १ ॥
लटकति ललित लटूरियाँ, मसि बिंदु गोरोचन ।
हरि नख उर अति राजहीं संतनि दुख मोचन ॥ २ ॥

सँग सँग जसुमति रोहिनी हितकारिनि मैया।
चुटकी दै जु नचावहीं सुत जानि नन्हैया ॥ ३ ॥
नील पीत पट ओढ़नी देखत जिय भावै।
बाल बिनोद अनंद सौं 'सूरज' जन गावै ॥ ४ ॥

श्रीनन्दजीके मणिमय आँगनमें दोनों भाई खेल रहे हैं। गौरवर्ण बलराम तथा श्यामवर्ण कन्हैयाकी यह जोड़ी अच्छी सजी है। (दोनों भाइयोंके ललाटपर) मनोहर अलकें लटक रही हैं। काजलकी बेंदी (डिठौनेके रूपमें) तथा गोरोचनके तिलक हैं। वक्षपर बघनखे अत्यन्त शोभा पा रहे हैं, जो सत्पुरुषोंका दुःख दूर करनेवाले हैं। यशोदाजी और रोहिणीजी दोनों हितकारिणी माताएँ साथ-साथ हैं और पुत्रोंको शिशु समझकर चुटकी बजा-बजाकर नचा रही हैं। (बलरामजीके) नीले और (श्रीकृष्णके) पीले वस्त्रकी ओढ़नी है, जो देखनेपर हृदयको प्रिय लगती है। सेवक सूरदास आनन्दपूर्वक (दोनों भाइयोंकी) बालक्रीड़ाका गान करता है।

राग धनाश्री

[१५]

आँगन खेलै नंद के नंदा।
जदुकुल कुमुद सुखद बर चंदा ॥ १ ॥
संग संग बल मोहन सोहैं।
सिसु भूषन भुव कौ मन मोहैं ॥ २ ॥
तन दुति मोर चंद जिमि झलकै।
उमँगि उमँगि अँग अँग छबि छलकै ॥ ३ ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजै।
पंकज पानि पहुँचिया राजै ॥ ४ ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके।
नैन सरोज मैन सरसी के ॥ ५ ॥
लटकति ललित ललाट लटूरी।
दमकति दूध दतुरियाँ रूरी ॥ ६ ॥

मुनि मन हरन मंजु मसि बिंदा।
ललित बदन बल बालगुबिंदा ॥ ७ ॥
कुलही चित्र विचित्र झँगूली।
निरखि जसोदा रोहिनि फूली ॥ ८ ॥
गहि मनि खंभ डिंभ डग डोलै।
कलबल बचन तोतरे बोलै ॥ ९ ॥
निरखत झुकि झाँकत प्रतिबिंबहि।
देत परम सुख पितु अरु अंबहि ॥ १० ॥
व्रज जन निरखत हियँ हुलसाने।
'सूर' स्याम महिमा को जाने ॥ ११ ॥

श्रीनन्दनन्दन आँगनमें खेल रहे हैं। यदुकुलरूपी कुमुदिनीको सुख देनेवाले ये श्रेष्ठ चन्द्रमा हैं। बलराम और श्याम साथ-साथ शोभित हो रहे हैं, उनके बालकोचित आभूषण पृथ्वीभर (सारे संसार) के मनको मोहित कर रहे हैं। (श्यामसुन्दरके) शरीरकी शोभा मयूरकी-सी और (बलरामकी) चन्द्रमाके समान झलमला रही है, दोनोंके अङ्ग-अङ्गसे सुन्दरता उमड़-उमड़कर छलकती है। कमरमें किङ्किणी और चरणोंमें नूपुर बज रहे हैं, कमल-करोंमें पहुँची शोभित है। गलेमें कठुला और सुन्दर बघनखा है; नेत्र ऐसे हैं मानो कामदेवकी बावलीके कमल हों। ललाटपर मनोहर घुँघराली लटुरियाँ (छोटी-छोटी लटें) लटक रही हैं। सुन्दर दूधकी दँतुलियाँ (छोटे-छोटे दाँत) चमक रही हैं। मुनियोंका भी मन हरण करनेवाली मनोहर काजलकी बेंदी (भालपर) है, बलराम और छोटे-से श्यामके मुख अत्यन्त सुन्दर हैं। अनेक रंगोंकी कुलह (एक प्रकारकी टोपी) तथा झगुली (ढीला अँगरखा) पहिने हैं, माता यशोदा और रोहिणीजी देख-देखकर प्रफुल्लित हो रही हैं। मणि-खंभेको पकड़कर छोटे बच्चेकी भाँति डगमगाते हुए चल रहे हैं, तोतली वाणीमें अस्पष्ट वचन बोलते हैं। झुककर देखते तथा अपने प्रतिबिम्बको निहारते हुए माता-पिताको आनन्द दे रहे हैं। व्रजके

लोगोंके हृदय (दोनों भाइयोंको) देख-देखकर उल्लसित हो रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरका माहात्म्य भला, कौन जान सकता है।

राग नटनारायण

[१६]

बलि गइ बालरूप मुरारि।
पाइँ पैंजनि रटति रुनझुन, नचावति नँद नारि ॥ १ ॥
कबहुँ हरि कौं लाइ अँगुरी चलन सिखवति ग्वारि।
कबहुँ हृदै लगाइ हित करि, लेति अंचल डारि ॥ २ ॥
कबहुँ हरि कौं चितै चूमति, कबहुँ गावति गारि।
कबहुँ लै पीछैं दुरावति, ह्याँ नहीं बनवारि ॥ ३ ॥
कबहुँ अँग भूषन बनावति, राइ-नोन उतारि।
'सूर' सुर नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि ॥ ४ ॥

श्रीनन्दपत्नी बालवेषधारी श्यामपर बलिहारी जाती हैं, वे उन्हें नचाती हैं, (जिससे मोहनके) चरणोंके नूपुर रुनझुन शब्द कर रहे हैं। कभी व्रजरानी हरिको अँगुली पकड़ाकर चलना सिखलाती हैं और कभी प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लेती हैं तथा अञ्चलसे ढक लेती हैं। कभी मोहनको देखकर चूमती हैं, कभी गाली गाती हैं, कभी पकड़कर पीछे छिपा देती हैं (और गोपियोंसे हँसती हुई कहती हैं—) 'वनमाली यहाँ नहीं है।' कभी अङ्गोंमें आभूषण सजाकर राई-नोन उतारती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि (भगवान् श्रीकृष्णका) यह रूप देखकर सभी देवता एवं मनुष्य मोहित हो जाते हैं।

राग सूहौ

[१७]

आँगन स्याम नचावहीं जसुमति नँदरानी।
तारी दै दै गावहीं मधुरी मृदु बानी ॥ १ ॥
पाइन नूपुर बाजहीं, कटि किंकिनि कूजै।

नान्ही एड़ियनि अरुनता फल बिंब न पूजै ॥ २ ॥
जसुमति गान सुनैं स्रवन, तब आपुन गावैं।
तारि बजावत देखहीं, पुनि आपु बजावैं ॥ ३ ॥
केहरि नख उर पर रुरैं सुठि सोभाकारी।
मनौ स्याम घन मध्य मैं नव ससि उजियारी ॥ ४ ॥
गभुआरे सिर केस हैं बर घूँघरवारे।
लटकन लटकत भाल पै, बिधु मधि गन तारे ॥ ५ ॥
कठुला कंठ चिबुक तरैं, मुख दसन बिराजैं।
खंजन बिच सुक आनि कैं मनु परयौ दुराजैं ॥ ६ ॥
जसुमति सुतै नचावहीं, छबि देखति जिय तैं।
सूरदास प्रभु स्याम कौ मुख टरत न हिय तैं ॥ ७ ॥

नन्दरानी यशोदाजी श्यामसुन्दरको आँगनमें नचा रही हैं और (साथ-साथ) ताली बजा-बजाकर मधुर कोमल स्वरमें गा रही हैं। (मोहनके) चरणोंमें नूपुर बज रहे हैं तथा कमरमें किङ्किणी शब्द कर रही है। नन्ही-नन्ही एड़ियोंमें इतनी लालिमा है कि (पका हुआ) बिम्बफल भी उसकी समता नहीं कर पाता। मैया यशोदाजीका गान जब कानोंसे सुनते हैं, तब वे स्वयं भी गाने लगते हैं और उन्हें ताली बजाते देख स्वयं भी ताली बजाते हैं। (नाचनेके कारण) अत्यधिक शोभा देनेवाला बघनखा वक्षःस्थलपर (इस प्रकार) झूल रहा है मानो श्याम मेघोंके बीचमें नवीन (द्वितीयाका) चन्द्रमा प्रकाश फैला रहा हो। मस्तकपर सुन्दर गर्भ-समयके (कोमल) घुँघराले केश हैं और ललाटपर लटकन इस प्रकार लटक रहा है जैसे चन्द्रमाके बीचमें तारागण हों। ठुड्डीके नीचे गलेमें कठुला है तथा मुखमें दाँत शोभा दे रहे हैं। (नेत्रोंके मध्यमें नासिका ऐसी शोभा पा रही है) मानो दो खञ्जन पक्षियोंके बीचमें आकर तोता (इस) दुविधामें पड़ गया है (कि वह उड़े या बैठा रहे)। यशोदाजी अपने पुत्रकी इस शोभाको हृदयसे (ध्यानसे) देखती हुई (उन्हें) नचा रही हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी श्यामसुन्दरका (उस समयवाला) मुख हृदयसे हटता नहीं (सदा उसका स्मरण बना रहता है)।

राग आसावरी

[१८]

अद्भुत इक चितयौ हौं सजनी, नंद महर कैं आँगन री।
सो मैं निरखि अपनपौ खोयौ, गई मथानी मागन री ॥ १ ॥
बाल दसा मुख कमल बिलोकत, कछु जननी सौं बोलैं री।
प्रघटति हँसत दँतुलि मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलैं री ॥ २ ॥
सुंदर भाल तिलक गोरोचन मिलि मसि बिंदुका लाग्यौ री।
मनु मकरंद अँचै रुचि कै अलि सावक सोइ न जाग्यौ री ॥ ३ ॥
कुंडल लोल कपोलन झलकत, मनु दरपन मैं झाईं री।
रही बिलोकि बिचारि चारु छबि, परमिति कहूँ न पाई री ॥ ४ ॥
मंजुल तारन की चपलाई, चित चतुराई करषै री।
मनौ सरासन धरैं काम कर भौंह चढ़ै सर बरषै री ॥ ५ ॥
जलधि थकित जनु काग पोत कौ कूल न कबहूँ आयौ री।
ना जानौं किहिं अंग मगन मन, चाहि रही नहिं पायौ री ॥ ६ ॥
कहँ लगि कहौं बनाइ बरनि छबि, निरखत मति गति हारी री।
'सूर' स्याम के एक रोम पै देउँ प्रान बलिहारी री ॥ ७ ॥

(कोई गोपी दूसरी गोपीसे कहती है—) 'सखी ! (जब) मैं (नन्दरानीसे) मथानी माँगने गयी, तब वहाँ नन्दजीके आँगनमें एक अद्भुत दृश्य देखा और उसे देखकर मैंने अपनापन ही खो दिया (अपने-आपको ही भूल गयी)। (माता) अपने पुत्रके बाल्यभावयुक्त मुखकमलको जब देखती थी, तब मोहन (भी) मातासे कुछ (अस्पष्ट) बोलते थे। हँसते समय दँतुलियाँ इस प्रकार प्रकट होकर छिप जाती थीं मानो मोती चमककर फिर कमलदलकी आड़में छिप गये हों। सुन्दर ललाटपर गोरोचनके तिलकसे सटकर (ही) कज्जलकी बेंदी लगी थी। वह ऐसी लगती थी मानो रुचिपूर्वक (कमलका) मकरन्द पीकर भौंरेका बच्चा सोया हो, अभी जगा न हो। कपोलोंपर चञ्चल कुण्डल ऐसे झलकते थे जैसे

दर्पणमें रत्नका प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो। उस सुन्दर छटाको देखकर मैं सोचती रह गयी, परंतु उस (शोभा) की थाह कहीं मिलती ही न थी। मञ्जुल नेत्रोंके गोलकोंकी चपलता चित्तकी चतुरता (चञ्चलता) को खींचे लेती थी। (साथ ही) तनी हुई भौंहोंको देखकर ऐसा लगता था मानो कामदेव धनुष हाथमें ले, डोरी चढ़ाकर बाणोंकी वर्षा कर रहा हो। जैसे समुद्रपर उड़ते हुए जहाजके कौवेको थक जानेपर कभी किनारा नहीं मिलता, वैसे ही मेरे मनका पता नहीं (कि वह श्यामके) किस अङ्गमें मग्न (लीन) हो गया; उसे मैं ढूँढकर हार गयी, पर पा न सकी। उस शोभाका विस्तारसे कहाँतक वर्णन करूँ, उसे तो देखते ही बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। श्यामसुन्दरके एक रोमपर मैं अपने प्राण न्यौछावर कर देना चाहती हूँ।'

[१९]

आजु गई हौं नंद भवन मैं, कहा कहौं गृह चैन री।
चहूँ ओर चतुरंग लच्छमी, कोटिक दुहियत धेन री ॥ १ ॥
घूमि रहीं जित तित दधि मथनीं, सुनत मेघ धुनि लाजै री।
बरनौं कहा सदन की सोभा, बैकुंठौ तैं राजै री ॥ २ ॥
बोलि लई नव बधू जानि जहँ खेलत कुँवर कन्हाई री।
मुख देखत मोहिनी सो लागी, रूप न बरन्यो जाई री ॥ ३ ॥
लटकन लटकि रह्यौ भ्रू ऊपर, रँग-रँग मनि-गन पोहे री।
मानो गुरु सनि सुक्र एक ह्वै, लाल भाल पै सोहे री ॥ ४ ॥
गोरोचन कौ तिलक, निकटहीं काजर-बिंदुका लाग्यौ री।
मनौ कमल कौ पी पराग अलि सावक सोइ न जाग्यौ री ॥ ५ ॥
बिधु आनन पै दीरघ लोचन, नासा लटकत मोती री।
मानौ सोम संग करि लीने, जानि आपने गोती री ॥ ६ ॥
सीपज माल स्याम उर सोहै, बिच बघनह छबि पावै री।
मनौ द्वैज ससि नखत सहित है उपमा कहत न आवै री ॥ ७ ॥

सोभा सिंधु अंग अंगनि प्रति बरनत नाहिन ओर री।
जित देखौं मन भयौ तहीं कौ, मनौ भरे कौ चोर री॥ ८॥
बरनौं कहा अंग अँग सोभा, भरी भाव जल रास री।
लाल गुपाल बाल छबि बरनत कबि कुल करिहैं हास री॥ ९॥
जो मेरी अँखियनि रसना होती, कहती रूप बनाइ री।
चिर जीवै जसुधा कौ ढोटा, सूरदास बलि जाइ री॥१०॥

(कोई गोपी कहती है—सखी !) आज मैं नन्द-भवनमें गयी थी, सो उस घरके आनन्दका क्या वर्णन करूँ ? वहाँ चारों ओर चारों प्रकारकी लक्ष्मी (सम्पत्ति, सुन्दरता, कीर्ति और अनुकूल स्वजन) दीख पड़ती थी और करोड़ों गायें दुही जा रही थीं। जहाँ-तहाँ दहीकी मथानियाँ घूम रही थीं, जिनका शब्द सुनकर मेघ-गर्जना भी लज्जित हो जाती है। उस भवनकी शोभाका क्या वर्णन करूँ, वह तो वैकुण्ठसे भी अधिक शोभित था। (यशोदाजीने मुझे) नयी बहू समझकर वहाँ बुला लिया, जहाँ कुवँर कन्हाई खेल रहे थे। उनका मुख देखते ही मुझे तो मोहिनी-सी लग गयी (मैं मुग्ध हो गयी, जिससे) उस रूपका वर्णन नहीं हो सकता। भौंहतक लटकन लटक रहा था, जिसमें अनेक रंगोंकी मणियाँ पिरोयी हुई थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो लाल (कुँवर) के ललाटपर बृहस्पति, शनि और शुक्र एकत्र होकर शोभा दे रहे हों। गोरोचनके तिलकके पास ही कज्जलका बिन्दु (डिठौना) लगा था मानो कमलका पराग चाटकर भौंरेका बच्चा सो गया है और अभी जगा नहीं है। चन्द्रमुखपर बड़े-बड़े नेत्र हैं; नाकमें मोतियोंकी बाली झूल रही है मानो चन्द्रमाने अपने सम्बन्धी (अपने पिता समुद्रसे उत्पन्न छोटे भाई) समझकर उन्हें साथ ले लिया हो। श्यामके वक्षः-स्थलपर मोतियोंकी माला शोभित है और उसके बीचमें बघनखा (ऐसी) शोभा दे रहा है मानो द्वितीयाका चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ हो; किंतु (उसकी) यह उपमा भी ठीक नहीं कही जा सकती। अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा समुद्रके समान अपार होनेके कारण (उसका) वर्णन करते हुए अन्त नहीं मिलता। जहाँ देखती थी, मन वहींका हो जाता था मानो मरे

(धन-धान्यसे पूर्ण) घरका चोर हो (जो एकसे एक बढ़कर वस्तुओंको अदल-बदल करनेके कारण कुछ भी चुरा न सके)। अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभाका क्या वर्णन करूँ मानो भाव (प्रेम) की जलराशि भरी हो। गोपाललालकी बालोचित शोभाका वर्णन करनेमें तो कवि-कुलका उपहासपात्र बनना होगा (कि अवर्णनीयके वर्णनका मैंने दुस्साहस किया है)। यदि मेरी आँखोंको जिह्वा होती तो अवश्य उस रूपका भलीभाँति वर्णन कर सकती थी (क्योंकि देखा तो नेत्रोंने है। मैं तो इतना ही कहती हूँ–) यशोदाका (वह) लाल चिरजीवी हो ! (जिसपर) सूरदास बलिहारी जाता है।

राग बिलावल

[२०]

(माधौ) तनक सौ बदन, तनक से चरन भुज,
तनक से कर पर तनक सौ माखन।
तनक सी बात कहै, तनक तनकि रहै,
तनक सौ रीझि रहै, तनक से साधन ॥ १ ॥
तनक कपोल, तनक सी दँतुली,
तनक हँसनि पै हरत सबनि मन।
तनकै तनक जु 'सूर' निकट आवै,
तनक कृपा कै दीजै तनकै सरन ॥ २ ॥

श्यामसुन्दरका छोटा-सा मुख, छोटे-छोटे चरण और भुजाएँ हैं और छोटे-से हाथपर तनिक-सा मक्खन लिये हैं। (वे) छोटे-छोटे वाक्य बोलते हैं, तनिक-सी बातपर रूठ जाते हैं, (देखनेमें) छोटे-से तो वे हैं ही, तनिक-से साधनसे प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे-से (उनके) कपोल हैं, छोटी-छोटी दँतुलियाँ हैं (और) तनिक-से हँसनेपर सबका मन हरण कर लेते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभु ! यदि तनिकमें भी तनिक (मैं) आपके पास आ (सम्मुख हो) जाऊँ तो तनिक कृपाकर तनिक-सी शरण दे दीजियेगा।

राग ललित

[२१]

छोटी-छोटी गुड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख ज्योती मोती मानौ कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलै, ठुमुक ठुमुक डोलै,
झुनुक झुनुक बोलै पैंजनी मृदु मुखर ॥ १ ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटि,
मृदु कर कमलन पहुँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी,
बालक दामिनि मानौ ओढ़ैं बारौ बारिधर ॥ २ ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि बुंदा मुनि मन हर।
अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै,
मुख सोभा पर वारौं अमित असमसर ॥ ३ ॥
चुटुकी बजावति नचावति जसोधा रानी,
बाल केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
सूरदास मन बसैं तोतरे बचन बर ॥ ४ ॥

छोटे-छोटे चरण (तथा) सुन्दर नन्ही अँगुलियोंकी नख-ज्योति ऐसी है मानो कमलदलोंपर मोती हों । सुन्दर आँगनमें खेलते हुए ठुमुक-ठुमुक चलते हैं, (जिससे) मुखरित नूपुरोंकी कोमल ध्वनि रुनझुन करती बोल रही है। कमरमें रत्नजटित स्वर्णकी मनोहर किङ्किणी और कोमल कर-कमलोंमें सुन्दर श्रेष्ठ पहुँची है। पोलो पतली पिछौरी ओढ़े हैं; जिसके लिये दूसरी कोई उपमा सरस नहीं हो सकती; ऐसा लगता है मानो मेघ-शिशुने बालक बिजली ओढ़ रखी हो। वक्षःस्थलपर बघनखा, गलेमें कठुला, झँडूले (गर्भावस्थाके) केश हैं; चोटीका लटकना तथा कज्जलका बिन्दु (डिठौना) तो मुनियोंके भी मनको हरण करनेवाला है। अञ्जन-लगे लोचनोंसे

देखना चित्तको चुराये लेता है और मुखकी शोभापर तो अपार कामदेवोंको न्यौछावर कर दूँ। व्रजरानी यशोदा चुटकी बजाकर (मोहनको) नचाती हुई प्रेममें भरकर (श्यामकी) बालक्रीड़ाका गान करती तथा (उन्हें) पुचकारती जाती हैं । (मोहन भी) किलकारी मार-मारकर हँसते हैं, जिससे (ऊपर-नीचेकी) दो-दो दँतुलियाँ चमकती हैं । सूरदासके मनमें (मोहनके) वे श्रेष्ठ तोतले शब्द बस जायँ ।

राग बिलावल

[२२]

(माधौ) तनक चरन औ तनक तनक भुज,
तनक बदन बोलै तनक सौ बोल ।
तनक कपोल, तनक सी दँतियाँ,
तनक हँसनि पै लेत हैं मोल ॥ १ ॥
तनक करन पर तनक माखन लिएँ,
देखत तनक जाकैं सकल भुवन ।
तनक सुनैं सुजस पावत परम गति,
तनक कहत तासौं नँद के सुवन ॥ २ ॥
तनक रीझ पै देत सकल तन,
तनक चितै चित बित के हरन ।
तनकै तनक, तनक करि आवै 'सूर',
तनक कृपा कै दीजै तनक सरन ॥ ३ ॥

(श्यामसुन्दरके) छोटे-छोटे चरण एवं छोटी-छोटी भुजाएँ हैं, छोटे-से मुखसे थोड़ी-सी बात कहते हैं। छोटे-छोटे कपोल एवं छोटी-सी दँतुलियाँ हैं, जो तनिकसे हँसनेपर (देखनेवालेको) मोल ले लेते हैं । (वे श्यामसुन्दर) छोटे-से हाथोंपर तनिक-सा मक्खन लिये हैं; उनके तनिक-सा दृष्टिपात करते ही समस्त लोकोंकी सृष्टि हो जाती है। इनका तनिक-सा सुयश सुननेसे ही (प्राणी) परमपद पा जाता है, इसीलिये ये नन्दनन्दन छोटे-से कहे जाते

हैं। तनिक-सा प्रसन्न होते ही ये अपने-आपको दे देते हैं तथा तनिक देखकर ही चित्तरूपी धनको हरण कर लेनेवाले हैं। थोड़ी-से-थोड़ी कृपा करनेसे प्रभो! यह सूरदास आपके तनिक पास आ जायगा, अतः तनिक-सी कृपा करके इसे तनिक शरण दे दीजिये।

राग गौरी

[२१]

मेरौ माई, स्याम मनोहर जीवन।
निरखि नैन भूले जु बदन छबि, मधुर हँसन पै पीवन ॥ १ ॥
कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव, नैन बिलोकनि बंक।
सुधा सिंधु तैं निकसि नयौ ससि राजत मनु मृग अंक ॥ २ ॥
सोभित सुवन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम।
मनौ नछत्र समेत इंद्र धनु, सुभग मेघ अभिराम ॥ ३ ॥
परम कुसल कोबिद लीला नट मुसुकनि मन हरि लेत।
कृपा कटाच्छ कमल कर फेरत 'सूर' जननि सुख देत ॥ ४ ॥

(माता अथवा सखी कहती है—) 'माई! यह श्यामसुन्दर मेरा जीवन है। मधुर हँसीके साथ दूध पीते समय इसके मुखकी शोभा देखकर (मेरे) नेत्र (अपनी चञ्चलता) भूल जाते हैं। घुँघराली अलकें हैं, (कानोंमें) मकराकृत कुण्डल हैं तथा टेढ़ी भौंहें और तिरछे नेत्रोंसे देखना ऐसा लगता है मानो सुधाके समुद्रसे निकला हुआ नया चन्द्र मृगको अङ्कमें लिये हो। नील-कमलके समान श्याम शरीरवाले श्रीकृष्णके मस्तकपर श्याम मयूर-शावकके पंखकी चन्द्रिका (इस प्रकार) शोभित है मानो तारागणोंके साथ इन्द्रधनुष सुन्दर मेघ (पर) शोभित हो। (इन) अत्यन्त चतुर एवं निपुण लीलानटका मुसकराना मनको हर लेता है। सूरदासजी कहते हैं—(वे) कृपाकटाक्षपूर्वक कर-कमल फिराते हुए माताको आनन्द प्रदान कर रहे हैं।

राग सारंग

[२४]

हरि हर संकर, नमो नमो ।
अहिसाई, अहि अंग बिभूषन, अमित दान, बल बिष हारी ।
नीलकंठ, वर नील कलेवर, प्रेम परस्पर कृतहारी ॥ १ ॥
चंद्रचूड, सिखि चंद सिरोरुह जमुनाप्रिय, गंगाधारी ।
सुरभि रेनु तन, भस्म बिभूषित, वृष बाहन, बन वृष-चारी ॥ २ ॥
अज अनीह अनिरुद्ध एकरस, यहै अधिक ए अवतारी ।
सूरदास सम रूप नाम गुन अंतर अनुचर अनुसारी ॥ ३ ॥

कल्याण करनेवाले भगवान् हरि तथा शंकरजी (दोनोंको) बार-बार नमस्कार। एक शेषनागपर सोते हैं तो दूसरे शरीरमें सर्पोंका आभूषण धारण करते हैं, दोनों ही असीम दानी एवं बलके विष (गर्व) को हरण करनेवाले हैं। एक (अपने) कण्ठमें (विषकी) नीलिमाको धारण किये हैं तो दूसरेका (समूचा) शरीर ही सुन्दर नीलवर्ण है; दोनोंने प्रेमवश एक दूसरेको अपने गलेका हार बना रखा है। एक (अपने) जटाजूटपर चन्द्रमा (और) दूसरे (अपने) बालोंमें मयूरपिच्छकी चन्द्रिका धारण करते हैं। एक यमुनाकान्त और दूसरे गङ्गाधर हैं। एकके शरीरमें गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलि लगी है तो दूसरेके अङ्ग भस्मसे विभूषित हैं। एक बैलपर चढ़ते हैं तो दूसरे (गाय-) बैलोंको वनमें चराते हैं। दोनों अजन्मा हैं, इच्छारहित हैं, स्वतन्त्र (मुक्त) हैं, एकरस हैं; किंतु इतनी अधिकता श्यामसुन्दरमें है कि वे अवतार धारण करनेवाले हैं। सूरदासजी कहते हैं—दोनों रूप, नाम और गुणोंमें समान हैं; दोनोंमें जो अन्तर जान पड़ता है, वह भक्तोंके हृदयकी भावनाके अनुसार है।

बाल-छवि-वर्णन

राग बिलावल

[२५]

बरनौं बालवेष मुरारि ।
थकित जित तित अमर मुनि गन, नंदलाल निहारि ॥ १ ॥

केस सिर बिन बपन के, चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु रूप कियौ त्रिपुरारि ॥ २ ॥
तिलक ललित ललाट केसर बिंदु सोभाकारि।
रोष अरुन तृतीय लोचन रह्यौ जनु रिपु जारि ॥ ३ ॥
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि ॥ ४ ॥
कुटिल हरिनख हिऍं हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि ॥ ५ ॥
सदन रज तन स्याम सोभित सुभग इहिं अनुहारि।
मनौ अंग बिभूति राजित संभु सो मधुहारि ॥ ६ ॥
त्रिदस पति पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि।
सूरदास बिरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि ॥ ७ ॥

मैं श्रीमुरारिके बालरूपका वर्णन करता हूँ। श्रीनन्दनन्दनको देखकर देवता तथा मुनिगण जहाँ-के-तहाँ थकित (स्तम्भित) हो रहे हैं। मुण्डन-रहित (अर्थात् कोमल) केश-कलाप (इस प्रकार) मस्तकपर चारों ओर फैले झूम रहे हैं, मानो मस्तकपर जटा धारण किये शंकरजीने शिशुरूप बना लिया हो। सुन्दर ललाटपर केसरकी बेंदी (ऐसी) सुन्दर लग रही है मानो क्रोधसे लाल हुआ (शंकरजीका) तीसरा नेत्र अपने शत्रु कामदेव-को भस्म कर रहा हो। गलेमें नीलमणिका कठुला तथा कमलकी माला (इस भाँति) सँवारी गयी है मानो कण्ठमें विष धारण करनेवाले (नीलकण्ठ) तथा वक्षःस्थलपर मुण्डमाला पहिननेवाले मदन-अरि (शंकर) इस रूपमें हो गये हों। गोपियाँ श्यामके वक्षःस्थलपर टेढ़े बघनखाको हर्षित होकर देख रही हैं मानो शंकरजीने ललाटसे उतारकर चन्द्रमाको (अपने) वक्षः-स्थलपर रख लिया हो। मधु दैत्यके नाशक (श्यामसुन्दर) के श्याम शरीरमें भवनकी धूलि (लगकर) इस प्रकार शोभित और भली लग रही है मानो वे भस्मविभूषित देहवाले (साक्षात्) शंकर ही हों। सूरदासजी कहते हैं कि

जिनके नामका जप ब्रह्माजी अपने चारों मुखोंसे करते रहते हैं, वे ही श्याम मातासे चन्द्रमा*को खानेके लिये अत्यन्त मचल रहे हैं।

[२६]

सखि री, नंद नंदन देखु।
धूरि धूसर जटा जुटली, हरि किऐं हर भेषु ॥ १ ॥
नील पाट पिरोइ मनि गन फनिग धोखैं जाइ।
खुनखुना कर हँसत हरि, हर नचत डौंरु बजाइ ॥ २ ॥
जलज माल गुपाल पहिरैं, कहा कहौं बनाइ।
मुंड माला मनौ हर गर ऐसी सोभा पाइ ॥ ३ ॥
स्वाति सुत माला बिराजत स्याम तन इहिं भाइ।
मनौ गंगा गौरि डर हर लई कंठ लगाइ ॥ ४ ॥
केहरी नख निरखि हिरदैं रहीं नारि बिचारि।
बाल ससि मनु भाल तैं लै उर धर्यौ त्रिपुरारि ॥ ५ ॥
देखि अंग अनंग झिझक्यौ, नंद सुत हर जान।
'सूर' के हिरदैं बसौ नित स्याम सिव कौ ध्यान ॥ ६ ॥

(कोई गोपी कहती है—) सखी ! नन्दनन्दनको देखो ! धूलिसे मटमैले और जटाके समान उलझी लटोंवाले श्रीहरि ऐसे लगते हैं मानो उन्होंने शंकरजीका वेष धारण किया हो। नीले रेशम (के धागे) में मणियाँ पिरोकर पहनायी गयी हैं, जो भ्रमसे सर्प-सी प्रतीत होती हैं। हाथमें खुनखुना (झुनझुना) लिये श्याम हँस रहे हैं मानो शंकरजी डमरू बजाकर नाचते हों। गोपालने गलेमें कमलोंकी माला पहिन रखी है; उसे भलीभाँति कैसे वर्णन करूँ। वह ऐसी शोभा दे रही है मानो शिवके गलेमें मुण्डोंकी माला हो। मोतियोंकी† माला श्यामके वक्षःस्थलपर इस प्रकार सुशोभित

* संस्कृतमें त्रिदश कहते हैं देवताओंको, उनके पति हुए इन्द्र और इन्द्रके भी पति चन्द्रमा हैं। पुराणोंमें कथा आती है कि एक बार चन्द्रमा त्रिलोकीके और त्रिलोकेश इन्द्रके भी स्वामी हो गये थे।

† स्वाति-सुत=मोती।

है मानो पार्वतीके भयसे (भीत) गङ्गाजीको शंकरजीने गले लगा लिया हो। (मोहनके) हृदयपर बघनखा देखकर गोपियाँ (इस प्रकार) सोच रही हैं मानो शंकरजीने बाल (द्वितीयाके) चन्द्रमाको ललाटसे उतारकर हृदयपर रख लिया हो। नन्दनन्दनके अङ्गोंको देख और उन्हें शंकर समझकर कामदेव भी झिझक गया (संकुचित हो गया) है। सूरदासके हृदयमें इस श्याम (साँवले) शंकरका ध्यान नित्य निवास करे।

[२७]

देखौ माई ! दधि सुत मैं दधि जात।
एक अचंभौ देखि सखी री, रिपु मैं रिपु जु समात ॥ १ ॥
दधि पै कीर, कीर पै पंकज, पंकज के द्वै पात।
यह सोभा देखत पसु पालक फूले अंग न मात ॥ २ ॥
बारंबार बिलोकि सोचि चित नंद महर मुसुक्यात।
यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ सूरदास बलि जात ॥ ३ ॥

(कोई गोपी कहती है—) 'सखी ! श्रीहरिके चन्द्र-मुख*में दधि† (पुत्रके अंदर पिताको) जाते देखो। दूसरा आश्चर्य यह देखो कि शत्रु (चन्द्र)में शत्रु (राहु) प्रवेश कर रहा है (मुख-चन्द्रमें श्यामवर्ण हाथ-रूप राहु समा रहा है)। दधि (दही-सने मुख) पर तोता (नासिका), तोतेपर (दो) कमल (नेत्र) और उन कमलोंके दो पत्ते (कान) हैं। यह शोभा देखते हुए गोप इतने प्रफुल्लित हो रहे हैं कि शरीरमें उमंग समाती नहीं। बार-बार देख और चित्तमें (अपने लालकी छटाका) विचार करके व्रजराज नन्दजी मुसकरा रहे हैं।' सूरदासजी श्यामसुन्दरके इसी रूपका चित्तमें ध्यान लाकर उनपर बलिहारी जाते हैं।

राग नटनारायण

[२८]

बिहरत बिबिध बालक संग।
डगनि डगमग पगनि डोलत धूरि धूसर अंग ॥ १ ॥
चलत मग, पग बजति पैंजनि, परसपर किलकात।
मनौ मधुर मराल छौना बोलि बैन सिहात ॥ २ ॥

---

* (उ) दधिसुत=चंद्र। † दधि=दही।

तनक कटि पै कनक करधनि छीन छबि चमकाति।
मनौ कनक कसौटिया पर लीक सी लपटाति ॥ ३ ॥
दुर दमंकत सुभग स्रवनन जलज जुग डहडहत।
मनौ बासव बलि पठाए जीव कबि कछु कहत ॥ ४ ॥
ललित लट छिटकाति मुख पै, देति सोभा दून।
मनु मयंकै अंक लीन्हौ सिंहिका कैं सून ॥ ५ ॥
कबहुँ द्वारैं दौरि आवत, कबहुँ नंद निकेत।
'सूर' प्रभु कर गहति ग्वालिनि चारु चुंबन हेत ॥ ६ ॥

अनेक बालकोंके साथ (श्याम) खेल रहे हैं। (वे) डगमग (लड़खड़ाती) चालसे पाँव-पाँव चल रहे हैं, परंतु ठीकसे चल नहीं पाते। शरीर धूलि (लगने)से मटमैला हो गया है। मार्गमें चलते समय चरणोंके नूपुर बजनेपर एक दूसरेको देख (कुछ इस भाँति) किलकारी मारते हैं मानो हंसशावक मधुर वाणी बोलकर प्रसन्न हो रहे हों। छोटी-सी कमरमें सोनेकी किङ्किणी पतली-सी शोभा लिये (इस तरह) चमक रही है मानो (काली) कसौटीपर स्वर्ण-रेखा-सी लिपटी हो। दो पूर्ण विकसित कमल मनोहर कानोंके पीछे छिपे (खोंसे) हुए (इस प्रकार) चमक रहे हैं मानो इन्द्रने (राजा) बलिके (पास) कुछ कहनेको बृहस्पति और शुक्राचार्यको भेजा हो। सुन्दर अलकें मुखपर बिखरी दूनी शोभा दे रही हैं मानो राहु*ने चन्द्रमाको गोदमें लिया हो। कभी दरवाजेतक दौड़ आते हैं और कभी नन्द-भवनमें चले जाते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि गोपियाँ सुन्दर चुम्बनके लिये मेरे स्वामीका हाथ पकड़ लेती हैं।

राग सूहौ बिलावल

[२९]

देखि माई, हरि जू की लोटनि।
यह छबि निरखि रही नँदरानी,
अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि ॥ १ ॥

* सिंहिकासूनु=राहु।

परसत आनन मनु रवि-कुंडल,
अंबुज स्रवत सीप सुत जोटनि ।
चंचल अधर, चरन कर चंचल,
मंचल अंचल गहत चकोटनि ॥ २ ॥
लेति छुड़ाइ महरि कर सौं कर,
दूरि भई देखति दुरि ओटनि ।
सूर निरखि मुसुकाइ जसोधा
मधुर मधुर बोलति मुख होटनि ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! श्यामसुन्दरका (रिसियाकर) लोटना तो देखो, श्रीनन्दरानी इस शोभाको निहार रही हैं । (मोहनके) नेत्ररूपी प्यालोंसे आँसू ढुलक-ढुलक पड़ते हैं मानो कुण्डलरूपी दो सूर्य-बिम्ब मुखको छूनेपर एक जोड़ी—दो (नेत्ररूपी) कमल मोती टपका रहे हैं । ओठ चञ्चल हैं, चरण और हाथ (भी) चञ्चल हैं, और मचलते हुए माताका अञ्चल दाँतोंसे खींचते हैं । व्रजरानी अपना हाथ उनके हाथसे छुड़ा दूर जाकर आड़में छिपकर देखती हैं (कि अब उनका लाल क्या करता है) । सूरदासजी कहते हैं—यशोदाजी (पुत्रको रोते तथा लोटते) देखकर मुस्कराती हुई मुख और ओठोंमें ही (बहुत धीरे-धीरे) कुछ मधुर-मधुर शब्द बोलती हैं ।

राग बिलावल

[३०]

भोर भएँ निरखत हरि कौ मुख
प्रमुदित जसुमति, हरषित नंद ।
दिनकर किरन कमल ज्यौं बिकसत
निरखत उर उपजत आनंद ॥ १ ॥
बदन उघारि जगावति जननी,
जागौ, बलि गइ, आनँद कंद ।

मनौ मथत सुर सिंधु, फेन फटि
दयौ दिखाई पूरन चंद ॥ २ ॥
जाकौं ईस सेष ब्रह्मादिक
गावत नेति नेति स्रुति छंद ।
सो गुपाल ब्रज मैं सुनि सूरज
प्रघटे पूरन परमानंद ॥ ३ ॥

प्रातःकाल होनेपर श्यामसुन्दरका मुख देखते हुए यशोदाजी आनन्दित और नन्दजी (उसी प्रकार) हर्षित हो रहे हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंसे कमलको खिला देखकर हृदयमें आनन्द होता है। माता मुख खोलकर जगाती हुई कह रही हैं —'आनन्दकन्द ! मैं तुमपर बलिहारी जाती हूँ, जागो।' (उस समय ऐसी शोभा होती है) मानो सुरोंद्वारा समुद्र-मन्थनके समय फेन फट जानेपर पूर्ण चन्द्रमा दिखलायी पड़ा हो। जिसके गुण शंकरजी, शेषनाग और ब्रह्मादि देवता गाते हैं तथा वेदोंके मन्त्र 'नेति-नेति' (ऐसा नहीं, वैसा नहीं) कहकर (निषेधमुखसे) वर्णन करते हैं, सूरदासजी कहते हैं, सुना है व्रजमें वे ही पूर्ण परमानन्द गोपालके रूपमें प्रकट हुए हैं।

[३१]

नंद कौ लाल उठत जब सोइ ।
निरखि मुखारबिंद की सोभा
कहि, काकैं मन धीरज होइ ? ॥ १ ॥
मुनि मन हरत जुवति जन केतिक,
रतिपति मान जात सब खोइ ।
ईषद हास दंत दुति बिगसति,
मानिक-मोती धरे जनु पोइ ॥ २ ॥
नागर नवल कुँवर बर सुंदर,
मारग जात लेत मन गोइ ।
सूरदास प्रभु मोहनि मूरति
ब्रजबासी मोहे सब लोइ ॥ ३ ॥

श्रीनन्दनन्दन जब सोकर उठते हैं, तब उनके मुख-कमलकी शोभा देखकर बताओ तो, किसके मनमें धैर्य रह सकता है (किसका मन अपने हाथमें रह सकता है) । (वह) मुनियोंके मनको भी हरण कर लेती है, व्रजयुवतियोंकी बिसात ही क्या है । (और तो और) कामदेवका भी सारा गर्व (उस शोभाको देखकर) गल जाता है । मन्द हास्यसे (लाल-लाल मसूड़ोंसे युक्त) दाँतोंकी ज्योति इस प्रकार प्रकट होती है मानो माणिक और मोती पिरोकर रखे हों । नवलनागर परम सुन्दर नन्दकुमार रास्ते चलतोंका मन चुरा लेते हैं । सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी मोहिनी मूर्तिने व्रजमें बसनेवाले सभी लोगोंको मोह लिया है ।

राग नट

[३२]

हरि के बाल चरित अनूप ।
निरखि रहिं व्रजनारि इकटक, अंग अँग प्रति रूप ॥ १ ॥
बिथुरि अलकैं रहीं मुख पै बिनहिं बपन सुभाइ ।
देखि कंजनि चंद के बस मधुप करत सहाइ ॥ २ ॥
सजल लोचन, चारु नासा परम रुचिर बनाइ ।
जुगल खंजन करत अबिनति, बिच कियौ बनराइ ॥ ३ ॥
अरुन अधरनि दसन झाईं कहौं उपमा थोरि ।
नील पुट बिच मनौ मोती धरे बंदन बोरि ॥ ४ ॥
सुभग बाल मुकुंद की छबि बरनि कापै जाइ ।
भृकुटि पै मसि बिंदु सोहै सकै सूर न गाइ ॥ ५ ॥

श्रीहरिके बालचरित्र अनुपम हैं । व्रजकी नारियाँ इकटक—निर्निमेष नेत्रोंसे उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा देख रही हैं । मुण्डन-संस्कार न होनेके कारण स्वाभाविक ही बढ़ी हुई अलकें मुखपर चारों ओर (इस भाँति) फैल रही हैं मानो (नेत्ररूपी) कमलोंको चन्द्रमाके वशमें पड़े देखकर सहायता करने भौंरे आ गये हों । लावण्ययुक्त नेत्र और सुन्दर नासिका (कुछ ऐसी) अत्यन्त मनोहर बनी

है मानो परस्पर झगड़ा कर रहे दो (नेत्ररूपी) खञ्जन पक्षियोंकी मध्यस्थता तोतेने की हो। लाल-लाल ओठोंकी दाँतोंपर आभा पड़ रही है, जिसके लिये एक छोटी-सी उपमा कहता हूँ। (वह तो ऐसी लगती थी) मानो नीले सम्पुट (डिब्बे) के मध्यमें सिन्दूरमें डुबाकर मोती रख दिये गये हों। (उन) मनोहर बालमुकुन्दकी (पूरी) शोभाका वर्णन भला, किससे हो सकता है। सूरदासजी कहते हैं—मोहनकी भृकुटीपर जो कज्जलका बिन्दु शोभित है, मैं तो उसी (की छटा) का वर्णन नहीं कर पाता।

[३३]

खेलत स्याम अपने रंग।
नंदलाल निहारि सोभा निरखि थकित अनंग॥ १॥
चरन की छबि देखि डरप्यौ अरुन गगन छिपाइ।
जानु करभा की सबै छबि, निदरि, लई छुड़ाइ॥ २॥
जुगल जंघन खंभ रंभा नाहिं समसरि ताहि।
कटि निरखि केहरि लजाने, रहे बन घन चाहि॥ ३॥
हृदैं हरि नख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ।
मनौ बालक बारिधर नव चंद दियौ दिखाइ॥ ४॥
मुक्त माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ।
मनौ तारा गननि बेष्टित गगन निसि रह्यौ छाइ॥ ५॥
अधर अरुन, अनूप नासा निरखि जन सुखदाइ।
मनौ सुक, फल बिंब कारन, लैन बैठ्यौ आइ॥ ६॥
कुटिल अलक बिना बपन के मनौ अलि सिसु जाल।
'सूर' प्रभु की ललित सोभा, निरखि रहिं ब्रजबाल॥ ७॥

श्यामसुन्दर अपनी धुनमें खेल रहे हैं। नन्दनन्दनकी इस शोभाको देख (तो सही), इसे निरखकर कामदेव भी थकित (मुग्ध) हो जाता है। चरणोंकी शोभा देखकर अरुण (अरुणोदयके अधिष्ठाता देवता) आकाशमें छिप गये। जाँघोंने हाथीके बच्चेकी सूँड़का अनादर कर उसकी समस्त शोभा छीन ली है। दोनों पिंडलियाँ ऐसी हैं कि केलेके खंभे (भी) उनकी

समता करने योग्य नहीं हैं। कमर देखकर सिंह लज्जित हो गये और घने वनोंको ढूँढ़कर उनमें रहने लगे। वक्षःस्थलपर बघनखा बहुत ही फब रहा है, जिसकी छटाका वर्णन नहीं हो सकता। जान पड़ता है मानो शिशु मेघमें नया(द्वितीयाका) चन्द्रमा दिखायी पड़ रहा हो। विशाल वक्षःस्थलपर मोतियोंकी मालाकी कुछ उपमा कहता हूँ—ऐसा लगता है मानो रात्रिमें तारागणोंसे घिरा आकाश शोभा दे रहा हो। लाल-लाल अधर तथा भक्तोंको सुख देनेवाली अनुपम नासिका देखनेसे ऐसा लगता है मानो बिम्ब फलको लेनेके लिये तोता आ बैठा हो। मुण्डन न होनेके कारण कोमल घुँघराली अलकें ऐसी बिखरी हैं मानो भौंरोंके बच्चोंकी मण्डली (मँडराती) हो। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी इस मनोहर शोभाको व्रजकी गोपियाँ (मुग्ध होकर) देख रही हैं।

गो-चारण-माधुरी

राग सोरठ

[३४]

गोबिंद चलत देखियत नीके।
मध्य गुपाल मंडली राजत काँधैं धरि लए सींके ॥१॥
बछरा बृंद घेरि आगैं करि जन-जन सृंग बजाए।
जनु बन कमल सरोवर तजि कैं मधुप उनींदे आए ॥२॥
बृंदाबन प्रबेसि अघ मारयौ, बालक जसुमति! तेरे।
सूरदास प्रभु सुनत जसोधा चितै बदन प्रभु केरे ॥३॥

गोविन्द चलते (वन जाते) समय बड़े सुन्दर दिखायी देते हैं। गोपबालकोंकी मण्डलीके मध्यमें वे शोभित हैं; कंधेपर (भोजन-सामग्रीसे भरे) छींके रख लिये हैं। बछड़ोंको घेरकर और आगे करके सबोंने सींग बजाये मानो सरोवरके कमलवनको छोड़कर उनींदे (बिना निद्रा भरे आलसयुक्त) भौंरे आ गये हों। 'यशोदाजी! वृन्दावनमें जाकर तुम्हारे पुत्रने (आज) अघासुरको मारा है।' सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीके

सम्बन्धकी यह (अघासुर-वधकी) बात सुनते ही यशोदाजी मेरे नाथका मुख देखने लगीं (कि मेरा यह सुकुमार लाल दैत्यको कैसे मार सका)।

राग बिलावल

[३५]

कन्हैया, हेरी दै ।
सुभग साँवरे गात की मैं सोभा कहत लजाउँ ।
मोर पंख सिर मुकुट की, मुख मटकनि की बलि जाउँ ॥ १ ॥
कुंडल लोल कपोलन झाईं बिहँसनि चितै चुरावै ।
दसन दमक, मोतिन लर ग्रीवा सोभा कहत न आवै ॥ २ ॥
उर पर पदक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजै ।
चित्रित बाहँ पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै ॥ ३ ॥
कटि पट पीत मेखला मुखरित, पाँइन नूपुर सोहै ।
आस पास बर ग्वाल मंडली, देखत त्रिभुवन मोहै ॥ ४ ॥
सब मिलि आनँद प्रेम बढ़ावत, गावत गुन गोपाल ।
यह सुख देखत स्याम संग कौ सूरदास सब ग्वाल ॥ ५ ॥

(गोपबालक कहते हैं—) 'कन्हाई, हेरी दो (गायोंको पुकारो) !' सूरदासजी कहते हैं—मनोहर श्यामशरीरकी (उस—गाय बुलानेकी) शोभाका वर्णन करते मुझे लज्जा आती है (मैं पूरा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ) । मस्तकपरके मयूरपिच्छवाले मुकुटकी और मुखको (नाना भङ्गियोंसे) मटकानेकी मैं बलिहारी जाता हूँ। दर्पणके समान स्वच्छ कपोलोंपर पड़ रही चञ्चल कुण्डलोंकी परछाईं और हास्य चित्तको चुराये लेता है तथा दन्तावलिकी चमककी और गलेमें (सुशोभित) मोतियोंकी लड़ीकी शोभाका (तो) वर्णन ही नहीं हो पाता। वक्षःस्थलपर पदक (जड़ाऊ चौकी), फूलोंसे रचित वनमाला तथा (भुजाओंमें) अङ्गद (बाजूबंद) अत्यन्त शोभा दे रहे हैं; (वनधातुओंसे) चित्रित भुजाओंमें पहुँची धारण की हुई है और हाथमें वंशी शोभा दे रही है । कमरमें (बँधे) पीताम्बर (के ऊपर) शब्द करती हुई किङ्किणी तथा चरणोंमें नूपुर शोभित हैं; आस-पास श्रेष्ठ

गोपबालकोंकी मण्डली है, (जिसे) देखकर त्रिभुवन मोहित हो रहा है। सब (बालक) मिलकर आनन्द-प्रेम बढ़ाते हुए (उमंगपूर्वक) गोपालका गुण गा रहे हैं। श्यामसुन्दरके साहचर्यका यह आनन्द (केवल) सब गोपबालक ही देख पाते हैं (अन्य नहीं)।

राग कल्यान

[३६]

सुंदर स्याम, सुँदर वर लीला,
सुंदर बोलत बचन रसाल।
सुंदर चारु कपोल बिराजत,
सुंदर उर जु बनी बनमाल ॥ १ ॥
सुंदर चरन, सुँदर हैं नख मनि,
सुंदर कुंडल हेम जराल।
सुंदर मोहन नैन चपल किऐं,
सुंदर ग्रीवा बाहु बिसाल ॥ २ ॥
सुंदर मुरली मधुर बजावत,
सुंदर हैं मोहन गोपाल।
सूरदास जोरी अति राजति,
ब्रज कौं आवत सुंदर चाल ॥ ३ ॥

श्याम सुन्दर हैं, उनकी लीला (भी) परम सुन्दर है; वे रसमय सुन्दर वाणी बोलते हैं। उनके अत्यन्त मनोहर सुन्दर कपोल चमक रहे हैं, सुन्दर वक्षःस्थलपर वनमाला सजी है। चरण सुन्दर हैं, उनमें मणिके समान नख बड़े ही भले लगते हैं; (कानोंमें) स्वर्णके जड़ाऊ कुण्डल अतीव सुन्दर हैं; सुन्दर मोहनने अपने नेत्र चपल कर रखे हैं, गर्दन सुन्दर है और भुजाएँ लंबी हैं। वे सुन्दर मुरलीको मधुर स्वरमें बजाते हैं, मोहन (मोहनेवाले) गोपाल (स्वयं बड़े ही) सुन्दर हैं। सूरदासजी कहते हैं—(दोनों भाइयोंकी) जोड़ी अत्यन्त शोभित हो रही है, जो सुन्दर गतिसे व्रजकी ओर (वनसे) आ रहे हैं।

[३७]

सुंदर स्याम, सखा सब सुंदर, सुंदर बेष धरैं गोपाल।
सुंदर पथ, सुंदर गति आवन, सुंदर मुरली सब्द रसाल॥१॥
सुंदर लोग, सकल ब्रज सुंदर, सुंदर हलधर, सुंदर चाल।
सुंदर बचन, बिलोकनि सुंदर, सुंदर गुन सुंदर बनमाल॥२॥
सुंदर गोप, गाइ अति सुंदर, सुंदरि गन सब करति बिचार।
सूर स्याम सँग सब सुख सुंदर, सुंदर भक्त हेत अवतार॥३॥

श्यामसुन्दर तो सुन्दर हैं ही, (उनके) सभी सखा सुन्दर हैं और इतने सौन्दर्यपर भी उन्होंने गोपाल (ग्वालिये) का वेष धारण कर रखा है। सुन्दर मार्ग, सुन्दर गतिसे आना, सुन्दर मुरली, जिसके शब्द रसमय हैं। व्रजके सभी लोग सुन्दर हैं, पूरा व्रज सुन्दर है, श्रीवलराम सुन्दर हैं और उनकी गति भी सुन्दर है। वाणी सुन्दर, देखनेकी छटा सुन्दर, सुन्दर सूतमें गुथी वनमाला सुन्दर है। गोप सुन्दर तथा गायें अत्यन्त सुन्दर हैं, व्रजकी सुन्दरियोंका समुदाय (श्यामकी इसी सुन्दरताका) विचार किया करता है। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके साथ (ही) सब (प्रकारके) सुख सुन्दर हैं (और) सुन्दर भक्तोंके लिये ही उनका (यह) सुन्दर अवतार है।

राग बिलावल

[३८]

सुंदर ढोटा कौन कौ, सुंदर मृदु बानी।
कहि समुझायौ ग्वालिनी, जायौ नँदरानी॥१॥
सुंदर मूरति देखि कैं घन घटा लजानी।
सुंदर नैनन हरि लियौ कमलन कौ पानी॥२॥
सुंदरता तिहु लोक की जसुमति ब्रज आनी।
सूरदास पुर मैं भई सुंदर रजधानी॥३॥

(किसी गोपीने पूछा—) 'यह सुन्दर पुत्र किसका है, जिसकी वाणी (इतनी) कोमल तथा सुन्दर है ?' तब एक गोपीने (भली प्रकार) वर्णन करके

समझाया कि इन्हें श्रीनन्दरानीने जन्म दिया है। (यह सुनकर प्रश्न करनेवाली गोपी कहने लगी—'अरी!) इनके सुन्दर स्वरूपको देखकर बादलोंकी घटा (समूह) भी लज्जित हो गयी, (और इनके) सुन्दर नेत्रोंने कमलोंकी शोभा भी हरण कर ली है। तीनों लोकोंकी सुन्दरता यशोदाजीने व्रजमें लाकर एकत्र कर दी है। सूरदासजी कहते हैं कि इसीसे (इस) नगरमें सुन्दर राजधानी हुई है।

राग गौरी

[३९]

देखि सखी! बन तैं जु बने व्रज आवत हैं नँदनंदन।
सिखी सिखंड सीस, मुख मुरली, बन्यौ तिलक, उर चंदन ॥१॥
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मनु द्वै खग खंजन बँधे आइ उड़ि फंदन ॥२॥
अरुन अधर छबि दसन बिराजत, जब गावत कल मंदन।
मुक्ता मनौ नीलमनिमयपुट, धरे भुरकि बर बंदन ॥३॥
गोप बेष गोकुल गो चारत हैं हरि असुर निकंदन।
सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति स्रुति छंदन ॥४॥

(गोपिका कहती है—) 'सखी, देखो! नन्दनन्दन वनसे सजे हुए व्रज आ रहे हैं। (उनके) मस्तकपर मयूरपिच्छ है, मुखसे मुरली लगी है, बड़ा सुन्दर तिलक है और वक्षःस्थल चन्दनचर्चित है। मुखपर कुटिल—टेढ़ी अलकें बिथुरी हुई हैं, चञ्चल नेत्र हैं, जो देखते ही अत्यधिक आनन्द देनेवाले हैं। ऐसा लगता है मानो कमलके बीचमें दो खञ्जन पक्षी उड़ते हुए आकर जालके फंदेमें बँध गये हैं। जब (श्यामसुन्दर) सुन्दर मन्दस्वरमें गाने लगते हैं, तब (आपके) लाल-लाल ओठोंकी दाँतोंपर पड़ती हुई आभा ऐसी भली लगती है मानो नीलमणि (नीलम) के सम्पुट (डिब्बे) में सिन्दूर छिड़ककर मोती रखे गये हों। सूरदासजी कहते हैं कि जो श्रीहरि गोपका वेष धारण करके गोकुलमें गायें चरा रहे हैं, वे ही असुरोंके

विनाशक (भी) हैं। (यही नहीं,) वेद मेरे उन स्वामीका सुयश मन्त्रों-द्वारा 'नेति-नेति' (ऐसे नहीं, वैसे नहीं) कहकर वर्णन करते हैं।

राग सारंग

[४०]

सीतल छैयाँ स्याम हैं ठाढ़े,
जानि भोजन की बिरियाँ।
बाम भुजाहि सखा अँस दीन्हें,
दच्छिन कर द्रुम डरियाँ॥ १॥
गाइनि घेरि, टेरि बलरामै,
ल्यावौ करत अबिरियाँ।
सूरदास प्रभु बैठि कदम तर,
खात दूध की खिरियाँ॥ २॥

भोजनका समय जानकर श्यामसुन्दर शीतल छायामें खड़े हैं। बायीं भुजा सखाके कंधेपर रखे और दाहिने हाथसे वृक्षकी डाल पकड़े हैं। (सखाओंसे वे कहते हैं—) 'गायोंको घेरकर (एकत्र करके) भैया बलरामजीको पुकारकर (साथ) ले आओ; तुमलोग (तो) देर कर रहे हो।' सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी कदम्बवृक्षके नीचे बैठकर दूधसे बनी खीर खा रहे हैं।

राग गौरी

[४१]

मेरे नैन निरखि सुख पावत।
संझा समै गोप गोधन सँग, बन तैं बनि ब्रज आवत॥ १॥
उर गुंजा बनमाल, मुकुट सिर, बेनु रसाल बजावत।
कोटि किरनि मनि मुख परकासित, उड़पति कोटि लजावत॥ २॥
नटवर रूप अनूप छबीलौ, सबहिनि कैं मन भावत।
गोप सखा सब बदन निहारत, उर आनँद न समावत॥ ३॥

चंदन खौर, काछनी काछें, देखत ही मन भावत।
सूर स्याम नागर नारिनि कौ बासर बिरह नसावत ॥ ४ ॥

(जब) संध्याके समय गोपकुमारों तथा गायोंके साथ श्यामसुन्दर वनसे सजकर व्रजमें आते हैं, (तब उनको) देखकर मेरे नेत्र सुखी होते हैं। वक्षःस्थलपर गुञ्जाहार और वनमाला तथा मस्तकपर मुकुट धारण किये रसमय मुरली बजाते हैं, तब उनका करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान मुख करोड़ों चन्द्रोंको भी लज्जित करता है। अनुपम शोभामय नटवर वेष समीके मनको भाता है; (जब) सब गोपकुमार सखा (मोहनके) मुखको निहारते हैं, तब उनके हृदयमें आनन्द समाता नहीं। चन्दनकी खौर लगाये तथा कछनी बाँधे हुए वे देखते ही मनको प्रिय लगते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दर गोकुल नगरकी स्त्रियोंके दिनभरका वियोग नष्ट करते हुए आते हैं।

[४२]

साँवरौ मन मोहन माई।
देखि सखी ! बन तैं ब्रज आवत
सुंदर नंदकुमार कन्हाई ॥ १ ॥
मोर पंख सिर मुकुट बिराजत,
मुख मुरली धुनि सुभग सुहाई।
कुंडल लोल, कपोलनि की छबि
मधुरी बोलनि बरनि न जाई ॥ २ ॥
लोचन ललित, ललाट भृकुटि बिच,
तकि मृगमद की रेख बनाई।
मनु मरजाद उलंघि अधिक बल
उमँगि चली अति सुंदरताई ॥ ३ ॥
कुंचित केस सुदेस कमल पर,
मनु मधुपनि माला पहिराई।
मंद मंद मुसुक्यानि, मनौ घन,

दामिनि दुरि दुरि देति दिखाई ॥ ४ ॥
सोभित सूर निकट नासा के,
अनुपम अधरनि की अरुनाई।
मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब फल
चाखन कारन चौंच चलाई ॥ ५ ॥

(गोपी कहती है—) 'सखी ! श्यामसुन्दर मनको मोह लेनेवाले हैं। सखी ! (उधर) देख तो ! सुन्दर नन्दकुमार कन्हाई वनसे व्रज आ रहे हैं। मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट विराजमान है और मुखसे वंशीकी सुन्दर सुहावनी ध्वनि हो रही है। चञ्चल कुण्डलयुक्त कपोलोंकी शोभा और मधुर बोलीका वर्णन नहीं किया जा सकता है। नेत्र (बड़े ही) सुन्दर हैं और ललाटमें भौंहोंके मध्यसे प्रारम्भ होकर देखो कस्तूरीकी रेखा (कैसी) सजी है मानो महान् सुन्दरता सीमाका उल्लङ्घन करके अत्यन्त वेगपूर्वक उमड़ चली हो। (मस्तकके) घुँघराले केश (मुखको घेरे हुए) ऐसे भले लग रहे हैं मानो कमलको भौंरोंकी माला पहना दी गयी हो। मन्द-मन्द मुस्कराहट ऐसी है मानो बादलोंमें बिजली छिप-छिपकर बार-बार दिखायी दे जाती हो। सूरदासजी कहते हैं—नासिकाके पास अनुपम अधरोंकी लालिमा ऐसी शोभा दे रही है मानो लाल (पके) बिम्बफलको देखकर तोतेने उसे चखनेके लिये चोंच चलायी हो।

राग पूर्वी

[४३]

तरु तमाल तरैं त्रिभंगी कान्ह
कुँवर ठाढ़े हैं साँवरे सुबरन।
मोर मुकुट, पीतांबर, बनमाला
राजत उर ब्रज जन मन हरन ॥ १ ॥
सखा-अंसु पैर भुज दीन्हें,
लीन्हें मुरलि अधर मधुर बिस्व भरन।

सूरदास कमल नैन को न
किए बिलोकि गोबरधन धरन ॥ २ ॥

साँवले सुन्दर रंगवाले कुँवर कन्हाई तमाल वृक्षके नीचे त्रिभंगी भावसे खड़े हैं। मयूरपिच्छका मुकुट है, पीताम्बर पहिने हैं और व्रजके लोगोंका मन हरण करनेवाली वनमाला वक्षःस्थलपर शोभित है। सखाके कंधेपर भुजा रखकर अपने मधुर स्वरसे विश्वको पूरित करनेवाली मुरली अधरोंपर रखे हैं। सूरदासजी कहते हैं—इन गोवर्धनधारी कमललोचनने केवल देखकर किसे अपना नहीं बना लिया। (जिसे ये देख लेते हैं, वही इनका हो जाता है।)

राग बिलावल

[४४]

स्याम हृदै बर मोतिनि माला।
बिथकित भई निरखि व्रजबाला ॥ १ ॥
स्रवन थके सुनि बचन रसाला।
नैन थके दरसन नँदलाला ॥ २ ॥
कंबु कंठ, भुज नैन बिसाला।
कर केयुर कंचन नग जाला ॥ ३ ॥
पल्लव हस्त मुद्रिका भ्राजै।
कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै ॥ ४ ॥
रोमावली बरनि नहिं जाई।
नाभिस्थल की सुंदरताई ॥ ५ ॥
कटि किंकिनी चंद्रमनि-संजुत।
पीतांबर कटि तट छबि अद्भुत ॥ ६ ॥
जुगल जंघ की पटतर को है।
तरुनी मन धीरज कौं जोहै ॥ ७ ॥
जानि जानु की छबि न सम्हारै।

नारि निकर मन बुद्धि बिचारै ॥ ८ ॥
रतन जटित कंचन कल नूपुर ।
मंद-मंद गति चलत मधुर सुर ॥ ९ ॥
जुगल कमल पद नख मनि आभा ।
संतन मन संतत यह लाभा ॥ १० ॥
जो जिहिं अंग सु तहाँ भुलानी ।
सूर स्याम गति काहुँ न जानी ॥ ११ ॥

श्यामसुन्दरके हृदयपर श्रेष्ठ मोतियोंकी माला (की शोभा) देखकर व्रजकी गोपियाँ अत्यन्त मुग्ध हो गयीं। उनके कान रसमय वचन सुनकर मोहित हो गये और नेत्र नन्दके लालको देखकर थकित हो रहे। शङ्खके समान कण्ठ, भुजाएँ और नेत्र बड़े-बड़े तथा बाहुओंमें अङ्गद हैं, जो स्वर्णके बने एवं मणियोंसे जड़े हैं। पल्लवके समान हाथोंमें मुँदरियाँ शोभा दे रही हैं तथा वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि फब रही है। (उदरपरकी) रोमावली तथा नाभिदेशकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता। कमरमें चन्द्रकान्त मणियोंसे युक्त किङ्किणी तथा कटिदेशमें बँधे पीताम्बरकी अद्भुत ही शोभा है। (भला,) दोनों जङ्घाओंकी तुलना-योग्य कौन है, वे तो (मानो) युवतियोंके मनके धैर्यको देखते हैं (किसमें कितना धैर्य है)। पिंडलियोंकी छटाको समझकर व्रजकी नारियोंका समूह मन तथा बुद्धिसे विचार करता है (अर्थात् धैर्य रखना चाहता है) किंतु अपनी सम्हाल रह नहीं पाती। (चरणोंमें पहिने जब वे) मन्द-मन्द चालसे चलते हैं, उस समय उनके रत्नजटित सोनेके सुन्दर नूपुरोंसे बड़ी मधुर झंकार होती है। दोनों चरण-कमलोंके नखोंकी कान्ति मणियोंके समान है, सत्पुरुषोंका मन निरन्तर इनका (इन चरणनखोंके ध्यानका) लाभ चाहता है। जो (गोपी) जिस अङ्गपर दृष्टि डालती है, वह वहीं भूल जाती (उसीको देखनेमें तल्लीन हो जाती) है। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरकी गति (लीला-रहस्य) को किसीने जाना नहीं।

राग गौरी

[४५]

नंद नँदन मुख देखौ माई !
अंग अंग छबि मनौ उए रबि, ससि अरु समर लजाई ॥ १ ॥
खंजन, मीन, भृंग, वारिज, मृग पर दृग अति रुचि पाई ।
स्रुति मंडल कुंडल मकराकृत बिलसत मदन सदाई ॥ २ ॥
नासा कीर, कपोत ग्रीव, छबि दाड़िम दसन चुराई ।
द्वै सारँग बाहन पर मुरली आई देति दुहाई ॥ ३ ॥
मोहे थिर, चर, बिटप, बिहंगम, ब्योम बिमान थकाई ।
कुसुमांजलि बरषत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—)सखी ! नन्दनन्दनके मुखको (तो)देखो । अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा ऐसी है, मानो सूर्य उदय हो गया है और चन्द्रमा तथा कामदेव दोनों लज्जित हो रहे हैं । (इनके) नेत्रोंने खञ्जन, मछली, भौंरे, कमल और हरिणके नेत्रोंसे भी अधिक शोभा प्राप्त की है; कानोंके घेरेमें मकराकृत कुण्डलके रूपमें (मानो साक्षात् मीनकेतु) कामदेव सदा क्रीड़ा किया करता है। नासिकाने तोते, कण्ठने कबूतर और दाँतोंने अनारके दानोंकी शोभा चुरा ली है और यह वंशी तो दो (भुजाओंरूपी) नागोंके वाहनपर विजय-घोषणा करती हुई आ रही है । इसने स्थिर-चर, वृक्ष-पक्षी—सबको मोह लिया है और आकाशके विमान स्तम्भित हो गये हैं। ऊपरसे देवता पुष्पाञ्जलिकी वर्षा कर रहे हैं । सूरदास (इस शोभापर) बलिहारी जाता है ।

राग केदारौ

[४६]

देखि री देखि आनंद कंद ।
चित्त चातक प्रेम घन, लोचन चकोरन चंद ॥ १ ॥
चलित कुंडल गंड मंडल झलक ललित कपोल ।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त इंदु डह डह डोल ॥ २ ॥

सुभग कर आनन समीपै मुरलिका इहिं भाइ।
मनु उभै अंभोज भाजन लेत सुधा भराइ ॥ ३ ॥
स्याम देह दुकूल दुति मिलि लसति तुलसी माल।
तड़ित घन संजोग मानौ स्रेनिका सुक जाल ॥ ४ ॥
अलक अबिरल, चारु हास बिलास, भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग ॥ ५ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! देख, आनन्दकन्दको देख तो ! ये चित्तरूपी चातकके लिये प्रेमसे बने हुए मेघ और नेत्ररूपी चकोरोंके लिये चन्द्रमा हैं। गण्डस्थल (कानोंके नीचेके भाग) पर हिल रहे कुण्डलोंकी झलक सुन्दर कपोलोंपर पड़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो अमृतके सरोवरमें (दो) मगरोंको खेलते देखकर (उनके भयसे) चन्द्रमा थर-थर काँप रहा हो। मुखके पास मनोहर हाथोंमें मुरली इस प्रकार सुशोभित है मानो दो कमलके बर्तनोंमें (वह) अमृत भरवा रही हो। श्याम शरीर तथा पीताम्बरकी कान्तिसे मिलकर तुलसीकी माला इस प्रकार शोभित है मानो बिजलीसे युक्त मेघमें तोतोंके समूहकी पंक्ति बाँध रखी हो। घनी अलकें, बड़ा सुन्दर विलासपूर्वक हँसना और टेढ़ी (धनुषाकार) भौंहें हैं। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामकी (यह) शोभा देखकर मनकी गति पङ्गु हो गयी (मन निश्चल हो गया)।

राग मलार

[४७]

देखौ, माई, सुंदरता कौ सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत,
मगन होत मन नागर ॥ १ ॥
तन अति स्याम अगाध अंबुनिधि,
कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति,
भँवर परति सब अंग ॥ २ ॥

नैन मीन, मकराकृत कुंडल,
भुज सरि सुभग भुजंग।
मुक्ता माल मिलीं मानौ द्वै
सुरसरि एकै संग॥ ३॥
कनक खचित मनिमय आभूषन,
मुख स्रम कन सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगट कियौ ससि
श्री अरु सुधा समेत॥ ४॥
देखि सरूप सकल गोपी जन,
रहीं बिचारि बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न सोभा,
रहीं प्रेम पचि हारि॥ ५॥

(गोपी कहती है—) सखी! (श्यामसुन्दरके इस) सौन्दर्यरूप सागरको देखो, बुद्धिमानोंका मन भी (अपनी) बुद्धिके विचार-बलसे (इसका) पार (किनारा) न पाकर (उस सौन्दर्य-सागरमें) मग्न हो (डूब) जाता है। (आपका) अगाध समुद्रकी भाँति अत्यन्त श्याम शरीर है, कटिदेशका पीताम्बर तरंग है, जिस समय (चारों ओर) देखते हुए चलते हैं, उस समय उनके प्रति अधिकाधिक अनुराग उत्पन्न होता है। उनका इस प्रकार चलना ही सागरके सम्पूर्ण अङ्गोंमें पड़ते हुए भँवर हैं। नेत्र मछलियाँ हैं, कुण्डल मगरके समान हैं और सुन्दर भुजाएँ सर्पोंकी समता कर रही हैं तथा मोतियोंकी माला ऐसी लगती है मानो दो गङ्गाकी धाराएँ एक साथ मिल रही हों। सोनेके संयोगसे बने हुए मणिमय आभूषण और मुखपर पसीनेकी बूँदें इस प्रकार आनन्द दे रही हैं मानो समुद्र-मन्थन करके लक्ष्मी और अमृतके साथ चन्द्रमा प्रकट किया गया हो। सूरदासजी कहते हैं—सभी गोपियाँ (मोहनके) स्वरूपको देखकर बार-बार विचार करके तथा प्रेमपूर्वक प्रयत्न करके थक गयीं, तो भी उस शोभाका किनारा न पा सकीं (उसीमें मुग्ध होकर निमग्न हो गयीं)।

राग भैरवी

[४८]

जैसी जैसी बातैं करै कहत न आवै री।
सावरौ सुंदर कान्ह अति मन भावै री॥ १॥
मदन मोहन बेनु मृदु, मृदुल बजावै री।
तान की तरंग रस, रसिक रिझावै री॥ २॥
जंगम थावर करै, थावर चलावै री।
लहरि भुअंग त्यागि सनमुख आवै री॥ ३॥
ब्योम यान फूल अति गति बरसावै री।
कामिनि धीरज धरै, को सो कहावै री॥ ४॥
नंदलाल ललना ललचि ललचावै री।
सूरदास प्रेम हरि हियैं न समावै री॥ ५॥

(गोपी कहती है—) सखी ! साँवला सुन्दर कन्हाई हृदयको अत्यन्त प्रिय लगता है। वह जैसी-जैसी बातें करता है, उनका वर्णन नहीं हो सकता। वह मदनमोहन अत्यन्त मृदुल स्वरमें वंशी बजाता है और (उसकी) तान-तरङ्गोंके रससे रसिकोंको रिझाता—प्रसन्न करता है। चर (पशु-पक्षी आदि) को जड (के समान निश्चेष्ट) और जड (वृक्षादि) को चला देता (द्रवित कर देता) है। सर्प भी लहर (विष तथा कुटिल गति) छोड़कर (उनके) सम्मुख आ जाता है। आकाशसे (देवताओं-के) विमान अत्यन्त वेगसे पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। ऐसी कौन-सी नारी है, जो (मोहनको देखकर) धैर्य रख सके और धैर्यधारिणी कहला सके। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दर व्रजकी गोपियोंपर (स्वयं) मुग्ध होकर उन्हें भी मोहित करते हैं, (जिससे) उनके हृदयमें मोहनका प्रेम समाता नहीं।

राग कल्यान

[४९]

बने बिसाल अति लोचन लोल।
चितै चितै हरि चारु बिलोकनि

मानौ माँगत है मन ओल ॥ १ ॥
अधर अनूप, नासिका सुंदर,
कुंडल ललित, सुदेस कपोल।
मुख मुसुक्यात महा छबि लागति,
स्त्रवन सुनत सुठि मींठे बोल ॥ २ ॥
चितवति रहति चकोर चंद ज्यौं
नैकु न पलक लगावति डोल।
सूरदास प्रभु कैं बस ऐसैं,
दासी सकल भई बिनु मोल ॥ ३ ॥

श्रीहरिके विशाल एवं चञ्चल नेत्र बहुत ही भले लगते हैं, सुन्दर चितवनसे देख-देखकर वे मानो मनको जमानतके रूपमें माँग रहे हैं। अनुपम ओठ, सुन्दर नाक, मनोहर कुण्डल, सुघर कपोल, मुस्कराते समय मुखकी बड़ी शोभा होती है तथा उनके शब्द कानोंसे सुननेपर बहुत ही मीठे लगते हैं। जैसे चकोर चन्द्रमाको बिना हिले-डुले अपलक देखता रहता है, सूरदासजी कहते हैं, उसी प्रकार गोपियाँ मेरे स्वामीके वशमें हो गयी हैं मानो सब-की-सब उनकी बिना मूल्यकी दासी हों।

राग धनाश्री

[५०]

ब्रज जुबती हरि चरन मनावैं।
जे पद कमल महामुनि दुरलभ, सपनेहूँ नहिं पावैं ॥ १ ॥
तन त्रिभंग, जुग जानु एक पग ठाढ़े, इक दरसाऐं।
अंकुस कुलिस ध्वजा जौ परघट, तरुनी मन भरमाऐं ॥ २ ॥
वह छबि देखि रहीं इकटकहीं, मन मन करत बिचार।
सूरदास मनु अरुन कमल पै सुषमा करति बिहार ॥ ३ ॥

जो चरण-कमल महामुनियोंको भी दुर्लभ हैं, स्वप्नमें भी जिन्हें वे नहीं पाते, व्रज-युवतियाँ (उन्हीं) श्रीहरिके चरणोंको मनाती (सामने देख रही) हैं।

शरीरको (घुटने, कमर तथा गर्दन—) तीन स्थानोंसे टेढ़ा करके दोनों पिंडलियोंको सटाकर एक चरणपर खड़े तथा दूसरे चरणतलके अङ्कुश, वज्र, ध्वज तथा यवादि चिह्न प्रत्यक्ष दिखाते हुए (व्रजकी) युवतियोंका मन मोहित कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि इस शोभाको वे एकटक देख रही हैं और मन-ही-मन विचार (उत्प्रेक्षा) करती हैं कि मानो अरुण कमलपर साक्षात् सुषमा (सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री देवी) ही क्रीड़ा कर रही हो।

राग बिलावल

[५१]

देखि, सखी, हरि अंग अनूप।
जानु जुगल जुग जंघ बिराजत, को बरनै यह रूप॥ १॥
लकुट लपेटि लटकि भए ठाढ़े, एक चरन धर धारे।
मनौ नील मनि खंभ काम रचि एक लपेटि सुधारे॥ २॥
कबहुँ लकुट तें जानु फेरि लै अपनें सहज चलावत।
सूरदास मानहुँ करभा कर बारंबार डुलावत॥ ३॥

(गोपी कह रही है—) सखी! श्यामके अनुपम अङ्गोंको तो देखो। दोनों पिंडलियाँ और दोनों जाँघें कैसी सुन्दर लगती हैं, इस रूपका वर्णन कौन कर सकता है। एक चरणको लाठीसे लिपटाकर झुके पृथ्वीपर दूसरा चरण टिकाये (इस प्रकार) खड़े हैं मानो कामदेवने नीलमणिके दो खंभे बनाकर उन्हें एक-दूसरेसे लिपटाकर सजा दिया हो। कभी लाठीसे अपनी पिंडलीको लिपटाकर (लाठीके सहारे लटकाकर) स्वाभाविक ढंगसे (इस प्रकार) हिलाते हैं, मानो हाथीका बच्चा बार-बार सूँड़ हिला रहा हो।

राग नटनारायन

[५२]

कटि तट पीत बसन सुदेस।
मनौ नव घन दामिनी तजि रही सहज सुबेस॥ १॥
कनक मनि मेखला राजत सुभग स्यामल अंग।

मनौ हंस अकास पंगति नारि बालक संग ॥ २ ॥
सुभग कटि कछनी सु राजति जलज केसर खंड ।
सूर प्रभु अँग निरखि माधुरि मदन तन पर्‍यौ दंड ॥ ३ ॥

कमरमें बँधा पीताम्बर ऐसा सुन्दर लग रहा है मानो विद्युत् अपना चञ्चलतारूप स्वाभाविक बाना छोड़कर नवीन मेघपर स्थिर हो गयी हो। मनोहर साँवले शरीरपर मणिजटित सोनेकी किङ्किणी (ऐसी) सुशोभित है मानो (अपनी) मादाओं एवं बच्चोंके साथ हंसोंकी पंक्ति आकाशमें शोभित हो। कमलकी केसरके समूहके समान (पीताम्बरकी) मनोहर काछनी कमरमें शोभित है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी अङ्ग-माधुरीको देखकर मानो कामदेवके शरीरपर डंडा पड़ गया हो (वह इस रूपमाधुरीके सम्मुख पराजित हो गया हो)।

राग नट

[५३]

तरुनी निरखि हरि प्रति अंग ।
कोउ निरखि नख इंदु भूली, कोउ चरन जुग रंग ॥ १ ॥
कोउ निरखि नूपुर रही थकि, कोउ निरखि जुग जानु ।
कोउ निरखि जुग जंघ सोभा करति मन अनुमान ॥ २ ॥
कोउ निरखि कटि पीत कछनी, मेखला रुचिकारि ।
कोउ निरखि हृद नाभि की छबि डार्‍यौ तन मन वारि ॥ ३ ॥
रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस ।
मनौ अलि स्रेनी बिराजति बनी एकैं भेस ॥ ४ ॥
रहीं इकटक नारि ठाढ़ी करति बुद्धि बिचार ।
सूर आगम कियौ नभ तैं जमुन सूच्छम धार ॥ ५ ॥

श्यामके अङ्ग-प्रत्यङ्गको देखकर कोई व्रजयुवती (उनके) चन्द्रमाके समान (चरण-) नखोंको और कोई दोनों चरणतलोंकी ललाई

देखकर (अपने-आपको) भूल गयी । कोई नूपुरोंको और कोई दोनों पिंडलियोंको ही देखकर मुग्ध हो रही तथा कोई दोनों जाँघोंकी शोभा देखकर मन-ही-मन कुछ विचार कर रही है । कोई कमरमें बँधी पीताम्बरकी कछनी तथा मनभावनी (सुन्दर) करधनी देखकर और कोई नाभिकुण्डकी छटा देखकर अपना तन-मन न्यौछावर कर रही है। श्रीहरिके सुन्दर उदरपर मनोहर रोमावली ऐसी भली लगती है मानो एक ही वेशमें सजी भौंरोंकी श्रेणी विराजमान हो । सूरदासजी कहते हैं कि गोपियाँ खड़ी-खड़ी एकटक (अपलक) देखती हुई बुद्धिसे विचार कर रही हैं कि यह आकाशसे यमुनाजीकी पतली (नीली) धारा (तो नहीं) उतर रही है।

[५४]

राजति रोम राजी रेख।
नील घन मनु धूम धारा रही सूच्छम सेष ॥ १ ॥
निरखि सुंदर हृदै पर भृगु पाद परम सुलेख।
मनौ सोभित अभ्र अंतर संभु भूषन बेष ॥ २ ॥
मुक्त माल नछत्र गन सम अर्ध चंद बिसेष।
सजल उज्ज्वल जलद मलयज प्रबल बलिनि अलेख ॥ ३ ॥
केकि कच सुर चाप की छबि दसन तड़ित सुपेख।
सूर प्रभु की निरखि सोभा तजे नैन निमेष ॥ ४ ॥

(श्यामके उदरपर) रोमावलीकी रेखा (ऐसी) सुशोभित है मानो नीले मेघपर धुएँकी पतली शेष—बची हुई धारा (रेखा) हो। सुन्दर हृदयपर भृगुका चरण-चिह्न (इस प्रकार) अत्यन्त उत्तम अङ्कित दीख पड़ता है मानो बादलोंके बीचमें चन्द्रमा शिवजीके भूषणरूपमें (बालरूपमें) शोभित हो । मोतियोंकी माला तारागणोंके समान अर्द्धचन्द्रके आकार (अर्द्धवृत्तके रूप) में सजी है (तारागणोंके समान बिखरी नहीं है) और अङ्गमें लगा चन्दन उज्ज्वल जलपूर्ण बादलों-जैसा है तथा उदरकी गहरी त्रिवली तो अनुपमेय है (उसकी उपमा देना शक्य नहीं)। बालोंमें लगा मयूरपिच्छ इन्द्र-धनुषकी छटा दिखा रहा है

और दाँतोंकी कान्ति विद्युत्के समान सुन्दर दीख पड़ती है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी शोभा देखकर नेत्र पलक गिराना छोड़ देते (एकटक देखते रहते) हैं।

राग गौरी

[५५]

हरि प्रति अंग नागरि ! निरखि।
दृष्टि रोमावली पर रहि, बनत नाहीं परखि ॥ १ ॥
कोउ कहति यह काम सरनी, कोउ कहति नहिं जोग।
कोउ कहति अलि बाल पंगति जुरी एक सँजोग ॥ २ ॥
कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु।
स्याम रोमावली की छवि सूर नाहिं निबाहु ॥ ३ ॥

श्यामके अङ्ग-प्रत्यङ्गको देख (व्रजकी) चतुर स्त्रियोंकी दृष्टि रोमावलीपर स्थिर हो गयी है, उसका परीक्षण (उपमाके साथ वर्णन) करते बनता नहीं। कोई कहती है—'यह कामदेवके चलनेका मार्ग है' तो दूसरी कहती है—'यह उपमा तो उचित नहीं।' कोई कहती है—'(यह) भौंरोंके बच्चोंकी पंक्ति एकमें एक सटी एकत्र हो गयी है।' कोई कहती है—'कामदेवद्वारा भेजा गया यह सर्प है, जो किसीको डस (काट) न ले।' सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरकी रोमावलीकी शोभाका वर्णन करनेमें (हमारा) निर्वाह (गति) नहीं है (उसका ठीक वर्णन हमसे नहीं हो सकता)।

राग आसावरी

[५६]

चतुर नारि सब कहति बिचारि।
रोमावली अनूप बिराजति जमुना की अनुहारि ॥ १ ॥
उर कलिंद तैं धँसि जल धारा उदर धरनि परवाह।
जाति चली धारा ह्वै अध कौं नाभी ह्रद अवगाह ॥ २ ॥

भुजा दंड तट, सुभग घाट घट, बनमाला तरु कूल ।
मोतिन माल दुहूधा मानौ फेन लहरि रस फूल ॥ ३ ॥
सूर स्याम रोमावलि की छबि देखत करति बिचार ।
बुद्धि रचति तरि सकति न सोभा प्रेम बिबस ब्रजनार ॥ ४ ॥

सब चतुर स्त्रियाँ (रोमावलीके सम्बन्धमें) विचार करके कहती हैं—'यह अनुपम रोमावली तो यमुनाजीके समान विराजमान है । (यह) जल-धारा वक्षःस्थलरूपी कलिन्द पर्वतसे गिरकर उदररूपी पृथ्वीपर प्रवाहित हो नीचे नाभिरूपी अथाह कुण्डमें (गिरनेके लिये) चली जा रही है । दोनों भुजदण्ड (इसके) किनारे हैं, हृदय मनोहर घाट है, वनमाला किनारेके वृक्ष और मोतियोंकी माला, मानो दो भागोंमें बँटी रससे फूली फेनोंकी लहर (श्रेणी) है ।' सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरकी रोमावलीकी शोभा देखकर (व्रजकी) स्त्रियाँ विचार करती हैं, वे बुद्धिद्वारा (अनेक प्रकारकी) कल्पना करती हैं, पर उस शोभाका पार न पा प्रेममें विभोर हो जाती हैं ।

राग कल्यान

[५७]

रोमावली रेख अति राजति ।
सूच्छम बेष धूम की धारा नव घन ऊपर भ्राजति ॥ १ ॥
भृगु पद रेख स्याम उर सजनी ! कहा कहौं ज्यौं छाजति ।
मनौ मेघ भीतर दुतिया ससि कोटि काम दुति लाजति ॥ २ ॥
मुक्ता माल नंद नंदन उर अर्ध सुधा धर भ्राजति ।
तनु श्रीखंड मेघ उज्ज्वल अति देखि महाबलि साजति ॥ ३ ॥
बरही मुकुट इंद्र धनु मानौ तड़ित दसन छबि लाजति ।
इकटक रहीं बिलोकि सूर प्रभु, निमिषन की कह हाजति ॥ ४ ॥

(गोपियाँ कहती हैं—) रोमावलीकी रेखा अत्यन्त सुशोभित है, (वह ऐसी लगती है) जैसे नवीन मेघके ऊपर धुएँकी पतली-सी धारा (रेखा) शोभा दे रही हो । सखी ! श्यामसुन्दरके हृदयपर

जो भृगुके चरण-चिह्नकी रेखा है, उसका क्या वर्णन करूँ कि वह कैसी छटा दे रही है। ऐसा लगता है मानो बादलोंके भीतर द्वितीयाका चन्द्रमा करोड़ों कामदेवोंकी कान्तिको भी लज्जित कर रहा हो। नन्दनन्दनके वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला अर्द्धचन्द्राकार शोभा दे रही है, अत्यन्त उज्ज्वल मेघके समान शरीरमें चन्दन लगा है और देखो तो, महान् त्रिवली कैसी सजी है। मयूरपिच्छका मुकुट मानो इन्द्रधनुष है। दाँतोंकी कान्ति विद्युत्को भी लज्जित करती है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीको वे एकटक देख रही हैं; फिर भला, पलक गिरानेकी आवश्यकता ही क्या है।

राग सारंग

[५८]

मुख छबि कहौं कहाँ लगि माई !
भानु उदै ज्यौं कमल प्रकासित
रबि ससि दोऊ जोति छपाई ॥ १ ॥
अधर बिंब, नासा ऊपर, मनु
सुक चाखन कौं चौंच चलाई।
बिकसत बदन, दसन अति चमकत,
दामिनि दुति दुरि देति दिखाई ॥ २ ॥
सोभित अति कुंडल की डोलन,
मकराकृत श्री सरस बनाई।
निसि दिन रटति सूर के स्वामिहि,
ब्रज बनिता देहै बिसराई ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! श्यामके मुखकी शोभाका कहाँ-तक वर्णन करूँ, मानो सूर्यके उदय होनेसे कमलने खिलकर सूर्य-चन्द्र दोनोंकी ज्योति छिपा ली हो। बिम्बफलके समान अधरोंके ऊपर नासिका ऐसी है मानो तोतेने (बिम्बफल) चखनेके लिये चोंच चला दी हो। (हँसते समय) मुख खिल उठता है, जिससे दाँत इस प्रकार

तीव्र कान्तिसे चमकते हैं मानो बिजलीकी ज्योति बार-बार छिपकर फिर दिखलायी दे जाती हो। रसपूर्ण मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा उनके हिलनेसे बड़ी ही सुन्दर लग रही है। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीकी चर्चा (इस प्रकार) रात-दिन करती हुई इन व्रजकी गोपियोंने अपनी देह-दशा (सुधि-बुधि) तक बिसरा दी है (इन्हें आपने शरीरका भान तक नहीं है)।

राग केदारौ

[५९]

सखी री ! सुंदरता कौ रंग।
छिन छिन माहिं परति छबि औरैं कमल नैन कैं अंग ॥ १ ॥
परमिति करि राख्यौ चाहति हैं, लागी डोलति संग।
चलत निमेष बिसेष जानियत, भूलि भई मति भंग ॥ २ ॥
स्याम सुभग के ऊपर वारौं आली ! कोटि अनंग।
सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा गति पंग ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! (श्यामसुन्दरके) सौन्दर्यका यह रंग (विचित्रता) है। उन कमललोचनके अङ्गोंकी छटा क्षण-क्षणमें और ही (नित्य नवीन) होती रहती है। (सभी) सखियाँ उसे शोभाकी परम अवधिके रूपमें रखना चाहती हैं, इसीसे साथ-साथ लगी घूमती हैं। किंतु पलक पड़ते ही वह शोभा कुछ विशेष बढ़ी हुई जान पड़ती है, इसीसे बुद्धि भूलकर (भ्रमित होकर) भंग हो जाती है—थक जाती है। सखी ! श्याम-सुन्दरके ऊपर करोड़ों कामदेवोंको न्यौछावर कर दूँ। सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरकी शोभा (उन गोपियोंसे) कहते नहीं बनती, उनकी वाणीकी गति पङ्गु (कुण्ठित) हो जाती है।

राग बिहागरौ

[६०]

स्याम भुजनि की सुंदरताई।
चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छबि कही न जाई ॥१॥

बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत अधमुख रह्यौ झुलाई ॥२॥
रतन जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुंदर भारी।
सूर मनौ फनि सिर मनि सोभित,फन फन की छबि न्यारी ॥३॥

श्यामसुन्दरकी भुजाओंके सौन्दर्यका पार नहीं। (उनपर) जो चन्दन-का अनुपम लेप शोभित है, उसकी छटाका वर्णन नहीं हो सकता। घुटनोंको छूती हुई अत्यन्त विशाल भुजाओंके लिये एक उपमा मनमें आयी है—मानो नीचा मुख करके झूलते हुए दो महासर्प आकाशसे उतर रहे हों। हाथोंमें रत्नजटित 'पहूँची' शोभा दे रही हैं और अँगुलियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं। सूरदासजी कहते हैं—वे ऐसी लगती हैं मानो उन सर्पोंके मस्तकपर मणि शोभित हो और उसके प्रत्येक फणकी विलक्षण शोभा हो।

राग धनाश्री

[६१]

गोपी तजि लाज संग स्याम रंग भूली।
पूरन मुख चंद देखि नैन कोइँ फूली॥ १ ॥
कैधौं नव जलद स्वाति चातक मन लाए।
कैधौं बारि बूँद सीप हृदैं हरष पाए॥ २ ॥
रबि छबि कैधौं निहारि पंकज बिकसाने।
कैधौं चक्रवाकि निरखि पतिहिं रति माने॥ ३ ॥
कैधौं मृग जूथ जुरे, मुरली धुनि रीझे।
सूर स्याम मुख मंडल छबि कैं रस भीजे॥ ४ ॥

गोपियाँ लज्जा छोड़कर श्यामसुन्दरके रंग (प्रेम) में (अपने आपको) भूल उनके संग हो गयीं और (उनके) पूर्णचन्द्रके समान मुखको देखकर उनके नेत्ररूपी कुमुदिनियाँ फूल (खिल) उठीं। ऐसा लगता था मानो स्वाती नक्षत्रके नवीन मेघमें चातकोंने अपना चित्त लगा लिया हो अथवा (स्वातीकी) वर्षाका बिन्दु पाकर मुक्ता-सीप मनमें हर्षित हो उठे हों, अथवा

सूर्यकी शोभा देखकर कमल विकसित हो गये हों, अथवा चकईने अपने पतिको देखकर आनन्द मनाया हो, अथवा वंशीकी ध्वनिपर रीझकर मृगोंका दल एकत्र हो गया हो । सूरदासजी कहते हैं कि वे (सब इस प्रकार) श्यामसुन्दरके मुखमण्डलकी शोभाके आनन्दमें निमग्न हो गयीं ।

राग सोरठ

[६२]

बड़ौ निठुर बिधना यह देख्यौ ।
जब तैं आजु नंदनंदन छबि बार-बार करि पेख्यौ ॥ १ ॥
नख, अँगुरी, पग, जानु, जंघ, कटि रचि कीन्हौ निरमान ।
हृदै, बाहु, कर, अंस अंग अँग, मुख सुंदर अति बान ॥ २ ॥
अधर, दसन, रसना रस बानी, स्रवन, नैन अरु भाल ।
सूर रोम प्रति लोचन देतौ, देखत बनत गुपाल ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ आपसमें कह रही हैं—सखी ! जबसे आज बार-बार नन्दनन्दनकी शोभा देखी है, तबसे यह विधाता बड़ा निष्ठुर दिखायी पड़ रहा है । उसने मोहनके नख, अंगुलियाँ, चरण, पिंडलियाँ, जाँघें एवं कमरका निपुणताके साथ निर्माण किया; वक्षःस्थल, भुजाएँ, हाथ, कंधे, मुख तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े ही सुन्दर और सुडौल, ओठ, दाँत, जिह्वाकी रसभरी वाणी, कान, नेत्र और ललाट (सब सुन्दर) रचे । किंतु हमारे प्रत्येक रोममें वह आँखें (भी) देता, तब (कहीं) (ऐसे सुन्दर) गोपालको देखते बनता । (दो आँखें तो जिस अङ्ग-पर लगती हैं, वहींकी हो जाती हैं । पूरा शरीर देखनेको मिलता ही नहीं ।)

राग गूजरी

[६३]

स्याम अँग जुबती निरखि भुलानी ।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिं माझ बिकानी ॥ १ ॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौं पानी ।

देह गेह की सुधि नहिं काहू, हरषति कोउ पछितानी ॥२॥
कोउ निरखति रहि ललित नासिका, यह काहूँ नहिं जानी।
कोउ निरखति अधरनि की सोभा, फुरति नहीं मुख बानी ॥३॥
कोउ चकित भई दसन चमक पै, चकचौंधी अकुलानी।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बितानी ॥४॥

व्रजकी युवतियाँ श्यामके अङ्गको देखकर (अपने-आपको) भूल गयीं। कोई कुण्डलकी कान्ति देख इतनेमें ही बिक गयी है (मोहित हो गयी है)। कोई मनोहर कपोल देखकर स्तब्ध हो ऐसी द्रवित हो गयी जैसे जल हो। किसीको शरीरका और भवनका स्मरण ही नहीं है, कोई आनन्दित हो रही है और कोई (पूरा श्रीअङ्ग न देख पानेपर) पश्चात्ताप कर रही है। कोई सुन्दर नाक ही देखती रह गयी, इसका किसीको पता ही नहीं लगा। कोई ओठोंकी शोभा देखती थी; पर उसके मुखसे (उनके वर्णन करनेके लिये) शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे। कोई दाँतोंकी चमकपर ही चकित हो उसकी चकाचौंधसे व्याकुल हो उठी है, कोई सुन्दर ठुड्डीकी कान्ति देख रही है। सूरदासजी कहते हैं कि सभी व्रजयुवतियाँ (प्रेमसे) बेचैन हो रही हैं।

राग सारंग

[६४]

ऐसौ गोपाल निरखि तन मन धन वारौं।
नव किसोर, मधुर मुरति, सोभा उर धारौं ॥ १ ॥
अरुन तरुन कमल नैन, मुरली कर राजै।
व्रज जन मन हरन बेनु मधुर मधुर बाजै ॥ २ ॥
ललित बर त्रिभंग सु तनु बनमाला सोहै।
अति सुदेस कुसुम पाग उपमा कौं को है ॥ ३ ॥
चरन रुनित नूपुर, कटि किंकिनि कल कूजै।
मकराकृत कुंडल छबि सूर कौन पूजै ॥ ४ ॥

(कोई सखी कहती है, सखि !) ऐसे गोपालको देखकर उनपर तन, मन और धन—सर्वस्व न्यौछावर कर इन नवीन किशोरकी मधुर मूर्तिकी शोभा हृदयमें रख लूँ । (उस मधुर मूर्तिके) पूर्ण विकसित लाल कमलके समान नेत्र हैं, हाथमें मुरली शोभित है। व्रजके लोगोंका चित्त हरण करनेवाली (वह) वंशी अत्यन्त मधुर स्वरसे बज रही है। उस सुन्दर श्रेष्ठ त्रिभङ्गयुक्त शरीरपर वनमाला शोभित है, अत्यन्त सुन्दर कुसुंभी पगड़ीकी उपमायोग्य कौन-सा पदार्थ है । चरणोंमें नूपुर रुनझुन करते हैं, कमरमें किङ्किणी सुन्दर ध्वनि कर रही है। सूरदासजी कहते हैं कि (उनके) मकराकृत कुण्डलोंकी छटाको कौन पहुँच सकता है।

[६५]

सुंदर मुख की बलि बलि जाउँ ।
लावनिनिधि, गुन निधि, सोभा निधि,
निरखि निरखि जीवत सब गाउँ ॥ १ ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी,
प्रघटति रस रुचि ठावहिं ठाउँ ।
तामैं मृदु मुसुक्यानि मनोहर,
न्याइ कहत कबि मोहन नाउँ ॥ २ ॥
नैन सैन दै दै जब हेरत,
ता छबि पर बिनु मोल बिकाउँ ।
सूरदास प्रभु मदनमोहन छबि
सोभा की उपमा नहिं पाउँ ॥ ३ ॥

(मोहनके) सुन्दर मुखकी शोभापर बार-बार बलिहारी जाती हूँ । उस लावण्यकी निधि, गुणोंकी निधि तथा शोभाकी निधिको देख-देखकर ही सारा गोकुल गाँव जी रहा है। अङ्ग-प्रत्यङ्गका अपार माधुर्य स्थान-स्थानपर सरस रुचि उत्पन्न कर रहा है, उसमें भी (उनकी) मनोहर मन्द मुसुकानके कारण कविगण इनका 'मोहन' नाम यथार्थ ही कहते हैं ।

आँखोंसे संकेत करके जो देखते हैं; उस शोभापर तो बिना मूल्यके बिक जाती हूँ। सूरदासजी कहते हैं—(मैं अपने) स्वामी मदनमोहनकी छटा एवं सौन्दर्यकी (कहीं) उपमा नहीं पाता हूँ।

राग सूहौ

[६६]

मैं बलि जाउँ स्याम मुख छबि पै।
बलि बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे,
बलि भृकुटी लिलाट पै ॥ १ ॥
बलि बलि जाउँ चारु अवलोकनि,
बलि बलि कुंडल रबि की।
बलि बलि जाउँ नासिका सुललित,
बलिहारी वा छबि की ॥ २ ॥
बलि बलि जाउँ अरुन अधरनि की,
बिद्रुम बिंब लजावन।
मैं बलि जाउँ दसन चमकन की,
वारौं तड़ितनि सावन ॥ ३ ॥
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पै,
बलि मोतिन की माल।
सूर निरखि तन मन बलिहारौं,
बलि बलि जसुमति लाल ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) श्यामके मुखकी शोभापर मैं बलिहारी जाती हूँ। बिथुरे घुँघराले बालोंपर बार-बार बलिहारी जाती हूँ, भृकुटि और ललाटपर (भी) बलिहारी (जाती हूँ)। मनोहर चितवनपर मैं बार-बार न्यौछावर हूँ तथा बार-बार न्योछावर हूँ सूर्यके समान कुण्डलोंपर। अत्यन्त मनोहर नासिकापर बार-बार बलिहारी जाती हूँ, उस शोभाकी भी बलिहारी है। (मैं उन) अरुण ओठोंपर बार-बार बलिहारी जाती हूँ, (जो) मूँगेकी तथा पक्व बिम्बफलकी कान्ति

(लालिमा) को भी लज्जित करनेवाले हैं । दाँतोंकी चमकपर (मैं) न्यौछावर हूँ, उनपर श्रावणकी बिजलियोंको भी न्यौछावर किये देती हूँ । सुन्दर ठुड्डीपर मैं बलिहारी जाती हूँ और मोतियोंकी मालापर (भी) मैं बलिहारी हूँ। सूरदासजी कहते हैं कि यशोदाके लालको देखकर (उनपर) तन-मन न्यौछावर करती हूँ, (और) बार-बार बलिहारी जाती हूँ ।

राग कान्हरौ

[६७]

अलकनि की छबि अलि-कुल गावत ।
खंजन, मीन, मृगज लज्जित भए, नैननि गति नहिं पावत ॥१॥
मुख मुसुक्यानि आनि उर अंतर अंबुज बुधि उपजावत ।
सकुचत अरु बिगसत वा छबि पै, अनुदिन जनम गँवावत ॥२॥
पूजत नाहिं सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत ।
बसन समान होत नहिं हाटक, अगिनि झाँप दै आवत ॥३॥
मुक्ता दाम बिलोकि बिलखि करि, अवलि बलाक बनावत ।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी, मनमथ-मनहि लजावत ॥४॥

(मोहनकी) अलकोंकी शोभाका गान भौंरोंके समूह करते हैं । खञ्जन, मछलियाँ तथा हरिनोंके बच्चे नेत्रोंकी तुलना न कर सकनेके कारण लज्जित हो गये । मुखकी मुसकानको हृदयमें लाकर कमल विचार करता है (कि) उस शोभाको देखकर (मैं) बार-बार संकुचित हो और खिलकर दिन-प्रतिदिन (असमर्थ होकर) जीवन खो देता हूँ (फिर भी उनकी तुलना नहीं कर पाता) । यद्यपि बादल दौड़ते हैं, फिर भी मनोहर साँवले शरीरकी समतामें नहीं पहुँच पाते । सोना बार-बार अपनेको अग्निमें तपाकर आता है किंतु (उनके) वस्त्र (पीताम्बर) के समान नहीं हो पाता । मोतियोंकी मालाको देखकर और (तुलना न कर पानेके कारण) दुखी होकर बगुले अपना झुंड बनाते हैं (कि कदाचित् सामूहिकरूपमें तुलना कर सकें) । सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी ललित त्रिभङ्गी शोभा कामदेवके मनको भी लज्जित करती है ।

राग गौरी

[६८]

आवत बन तैं साँझि देख्यौ मैं गाइनि माँझि
काहू कौ ढोटा री जाकैं सीस मोरपखियाँ।
अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन,
मानौ रिस भरि कैं लरति जुग झषियाँ॥ १॥
केसर की खौरि किएँ, गुंजा बनमाल हिएँ,
उपमा न कहि आवै जेती नखियाँ।
राजति पीत पिछौरी, मुरली बजावै गौरी;
धुनि सुनि भई बौरी, रही तकि अँखियाँ॥ २॥
चल्यौ न परत पग, गिरि परी सूधैं मग,
भामिनी भवन ल्याई कर गहैं कँखियाँ।
सूरदास प्रभु चित चोरि लियौ मेरैं जान,
और न उपाउ दाउ, सुनौं मेरी सखियाँ॥ ३॥

(गोपी कहती है—) सखी! संध्याके समय किसीके लड़केको गायोंके मध्य वनसे आते हुए मैंने देखा, जिसके मस्तकपर मयूरपिच्छ था। (उसका) अलसीके फूलके समान शरीर था, विशाल चञ्चल नेत्र (ऐसे) थे मानो क्रोधमें भरकर दो मछलियाँ लड़ रही हों। केसरकी खौर लगाये तथा वक्षःस्थलपर गुञ्जाकी माला और वनमाला पहिने हैं। उनके इस वेषकी उपमा कहनेमें नहीं आती; जितनी भी सामने आती हैं, सभी परास्त हो जाती हैं। पीला पटुका शोभा दे रहा था, वंशीमें गौरी राग बजा रहा था, जिसके स्वर सुनकर मैं पगली हो गयी और मेरी आँखें उसे देखती ही रह गयीं। एक पद भी चलते नहीं बना, सीधे मार्गमें मैं गिर पड़ी, सखियाँ मेरा हाथ अपनी बगलमें दबा (पकड़) कर मुझे घर ले आयीं। मेरी सखियो, सुनो! मेरी समझसे सूरदासके स्वामीने मेरा चित्त चुरा लिया है, (अब) न तो (उसके लिये) कोई उपाय है और न कोई युक्ति है।

श्रीकृष्णका व्रजागमन

[६९]

नटवर भेष धरैं व्रज आवत।
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल,
कुटिल अलक मुख पै छबि पावत ॥ १ ॥
भ्रुकुटी बिकट, नैन अति चंचल,
इहि छबि पै उपमा इक धावत।
धनुष देखि खंजन बिबि डरपत,
उड़ि न सकत, उड़िबे अकुलावत ॥ २ ॥
अधर अनूप मुरलि सुर पूरत,
गौरी राग अलापि बजावत।
सुरभी बृंद गोप बालक सँग,
गावत अति आनंद बढ़ावत ॥ ३ ॥
कनक मेखला कटि पीतांबर,
निरतत मंद मंद सुर गावत।
सूर स्याम प्रति अंग माधुरी
निरखत व्रज जन के मन भावत ॥ ४ ॥

मोहन श्रेष्ठ नट-जैसा वेष धारण किये व्रज आ रहे हैं। मयूर-पिच्छका मुकुट, मकराकृत कुण्डल और घुँघराली अलकें मुखपर शोभा पा रही हैं। टेढ़ी भौंहें और अत्यन्त चञ्चल नेत्र हैं, इस शोभापर (तुलना करनेके लिये) एक उपमा दौड़ती (सूझती) है कि धनुष देखकर खञ्जनका जोड़ा डरकर उड़नेके लिये व्याकुल होते हुए भी उड़ न पाता हो। अनुपम ओठ वंशीमें सुर भरते हुए आलाप लेकर गौरी राग बजा रहे हैं, गायोंके झुंड और गोप-बालकोंके साथ गाते हुए अत्यन्त आनन्द बढ़ाते (बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते) हैं। कमरमें सोनेकी करधनी और पीताम्बर पहिने नाचते एवं अत्यन्त मन्द (कोमल) स्वरमें गाते

हैं। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके प्रत्येक अङ्गका माधुर्य ऐसा (आकर्षक) है कि उसे देखना व्रजवासियोंके मनको (अतिशय) प्रिय लगता है।

राग कल्यान

[७०]

व्रज जुवती सब कहति परसपर,
बन तैं स्याम बने व्रज आवत।
ऐसी छबि मैं कबहुँ न पाई,
सखी सखी सौं प्रघट दिखावत॥ १॥
मोर मुकुट सिर, जलज माल उर,
कटि तट पीतांबर छबि पावत।
नव जलधर पर इंद्र चाप मनु,
दामिनि छबि, बलाक घन धावत॥ २॥
जिहिं जो अंग अवलोकन कीन्हौ,
सो तन मन तहँहीं बिरमावत।
सूरदास प्रभु मुरलि अधर धरैं,
आवत राग कल्यान बजावत॥ ३॥

व्रजकी सब युवतियाँ आपसमें कह रही हैं—'श्याम वनसे सजे हुए व्रजमें आ रहे हैं। ऐसी शोभा तो मैंने कभी देखी नहीं।' इस प्रकार एक सखी दूसरीको प्रत्यक्ष (वर्णन तथा संकेत करके) दिखलाती है। मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट है, वक्षःस्थलपर कमलकी माला और कटिभागमें पीताम्बर शोभा दे रहा है। यह वेष ऐसा फब रहा है मानो नवीन मेघपर इन्द्रधनुष हो, बिजली कौंध रही हो और बगुले मेघके समीप दौड़ रहे हों। जिसने जिस अङ्गको देखा, उसने (अपने) शरीर तथा मनको वहीं विरमा लिया (स्तम्भित हुआ उसीको देखता रहा)। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी ओठपर वंशी रखे कल्याण राग बजाते आ रहे हैं।

राग गुन-सारंग

[७१]

मेरे नैन निरखि सचु पावैं।
बलि बलि जाउँ मुखारबिंद की, बन तैं बनि व्रज आवैं ॥ १ ॥
गुंजा फल अवतंस, मुकुट मनि, बेनु रसाल बजावैं।
कोटि किरन मनि मंजु प्रकासित, उड़पति बदन लजावैं ॥ २ ॥
नटवर रूप अनूप छबीले, सबहिनि के मन भावैं।
सूरदास प्रभु चलत मंद गति, बिरहिनि ताप नसावैं ॥ ३ ॥

मेरे नेत्र उस शोभाको देखकर (बड़े) हर्षित होते हैं; मोहनके मुखकमलपर बार-बार बलिहारी जाती हूँ, जब वे वनसे सजे हुए व्रज लौटते हैं। गुञ्जाफलों (घुँघचियों) का हार तथा मणियोंका मुकुट धारण किये बड़ी रसमय वंशी बजाते हैं। करोड़ों सूर्योंके समान सुन्दर प्रकाशमान अपने मुखसे चन्द्रमाके बिम्बको भी लज्जित करते हैं। वे शोभामय अनुपम नटवरका साज सजे सभीके मनको अच्छे लगते हैं। सूरदासजी कहते हैं— मेरे स्वामी मन्द गतिसे चलते हुए वियोगियोंके (दिनभरसे वियुक्त व्रजवासियोंके) संताप (वियोग-दुःख) को दूर करते हैं।

राग गौरी

[७२]

बलि बलि मोहनि मूरति की, बलि
बलि कुंडल, बलि नैन बिसाल।
बलि भ्रकुटी, बलि तिलक बिराजत,
बलि मुरली, बलि सब्द रसाल ॥ १ ॥
बलि कुंतल, बलि पाग लटपटी,
बलि कपोल, बलि उर बनमाल।
बलि मुसुकानि महामुनि मोहति,
बलि उपरैना गिरिधर लाल ॥ २ ॥

बलि भुज सखा अंस पर मेलें,
निरखत मगन भई ब्रज बाल।
बलि दरसन ब्रह्मादिक दुरलभ,
सूरदास बलि चरन गुपाल ॥ ३ ॥

इस मोहिनी मूर्तिपर बार-बार बलिहारी, बार-बार बलिहारी (इन) कुण्डलोंपर और बलिहारी (इन) बड़े-बड़े नेत्रोंपर। भृकुटिपर मैं बलिहारी, सुशोभित तिलकपर बलिहारी, मुरलीपर बलिहारी और (उसके) रसमय शब्दपर बलिहारी हूँ। केशराशिपर बलिहारी, लटपटी (अनियमित ढंगसे लपेटी हुई) पगड़ीपर बलिहारी, कपोलोंपर बलिहारी और वक्षःस्थलकी वनमालापर (भी) बलिहारी हूँ। महामुनियोंको मोहित करनेवाली मुस्कराहटपर बलिहारी और गिरिधरलालके पटुकेपर बलिहारी। सखाके कंधेपर भुजा रखे हुए प्रभुकी उस (बाँकी) अदापर बलिहारी, जिसे देखकर व्रजकी स्त्रियाँ (प्रेम) मग्न हो जाती हैं। उस दर्शनपर बलिहारी, जो ब्रह्मादि देवताओंको भी दुर्लभ है, सूरदास गोपालके चरणोंपर बलिहारी है।

राग जैतश्री

[७३]

ए रे सुंदर साँवरे, तैं चित लियौ चुराइ।
संग सखा संझा समै द्वारैं निकस्यौ आइ ॥ १ ॥
देखि रूप अदभुत तेरौ, रहे नैन उरझाइ।
पाग ऊपर गोसमावल, रँग रँग रची बनाइ ॥ २ ॥
अति सुंदर सुक नासिका, राजत लोल कपोल।
रत्न जटित कुंडल मनौ झष सर करत कलोल ॥ ३ ॥
कटि तट काछनि राजई, पीतांबर छबि देत।
अमृत बचन मुख भाषई, तन मन बस करि लेत ॥ ४ ॥
भौंह धनुष बर नैन द्वै मनौ मदन सर साँधि।
जाहि लगै सो जानई, संग लेत बल बाँधि ॥ ५ ॥

अंग अंग पै बलि गई, मुरली नैकु बजाइ।
सुनि पावैं सचु गोपिका, सूरदास बलि जाइ ॥ ६ ॥

(गोपी कहती है—) 'अरे श्यामसुन्दर ! तूने मेरा चित्त चुरा लिया है। संध्याके समय सखाओंके साथ तू मेरे द्वारकी ओरसे आ निकला था, उस समय तेरे अद्‌भुत रूपको देखकर मेरे नेत्र उसीमें उलझ गये। पगड़ीके ऊपर गोसमावल (कलँगी) रंग-बिरंगी बनाकर सजायी गयी है। अत्यन्त सुन्दर तोतेकी ठोर-जैसी तेरी नासिका है तथा कपोलोंपर चञ्चल रत्न-जड़े कुण्डल ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सरोवरमें मछलियाँ क्रीड़ा करती हों। कमरमें कछनी (बहुत) भली लग रही है तथा पीताम्बरका पटुका शोभा दे रहा है। मुखसे ऐसी अमृतके समान वाणी बोलते हो कि तन-मन (दोनों) वशमें कर लेते हो। भौंहें श्रेष्ठ धनुषके समान हैं और दोनों नेत्र ऐसे हैं मानो कामदेवने बाण चढ़ा रखे हों। ये (नेत्र-बाण) जिसे लगते हैं, (चोटको) वही समझता है; बलपूर्वक ये उसे (अपने) साथ बाँध लेते हैं। तेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गपर मैं न्यौछावर हो गयी हूँ; तनिक वंशी बजाओ, जिसे सुनकर गोपियाँ (सखियाँ) सुखी हों।' सूरदास (इस शोभा-पर) बलिहारी जाता है।

राग बिलावल

[७४]

स्याम कछु मो तन हीं मुसुकात।
पहरि पितंबर, चरन पाँवरी, ब्रज बीथिनि मैं जात ॥ १ ॥
अद्‌भुत बिंद चँदन, नख-सिख लौं सौंधे भीने गात।
अलकावली अधर, मुख बीरा, लिऐं कर कमल फिरात ॥ २ ॥
धन्य भाग या ब्रज के सखि री, धनि धनि जननी तात।
धनि जे सूरदास प्रभु निरखत लोचन नाहिं अघात ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) 'सखि ! श्याम कुछ मेरी ओर देखकर ही मुसकरा देते हैं। (उस दिन) पीताम्बर और चरणोंमें जूतियाँ पहिनकर ब्रजकी गलियोंमें

जा रहे थे। (ललाटपर) चन्दनकी अद्भुत बेंदी लगी थी। नखसे शिखातक अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुगन्धित तथा सौन्दर्यरससे भीगा (सौन्दर्यमय) था। अलकें झूम रही थीं, मुखमें पानका बीड़ा था और हाथमें कमल लिये घुमा रहे थे। अरी सखी ! इस व्रजके धन्य भाग्य हैं, इनकी माता और पिता (परम) धन्य हैं और इन सूरदासके स्वामीको जो देखते हैं, किंतु जिनके नेत्र तृप्त नहीं होते, वे भी धन्य हैं।'

राग अड़ानौ

[७५]

स्याम सुँदर आवत बन तैं बने भावत,
आजु देखि देखि छबि नैन रीझे।
सीस पै मुकुट डोल, श्रवन कुंडल लोल,
भ्रकुटि धनुष, नैन खंज खीझे॥ १॥
दसन दामिनि ज्योति, उर पर माल मोति,
ग्वाल बाल संग आवैं रंग भींजे।
सूर प्रभु राम स्याम, संतनि के सुखधाम,
अंग अंग प्रति छबि देखि जीजै॥ २॥

श्यामसुन्दर आज वनसे शृङ्गार किये आते हुए बड़े प्रिय लग रहे हैं, उनकी शोभा देख-देखकर मेरे नेत्र रीझ (मुग्ध हो) गये। मस्तकपर हिलता हुआ (मयूर-पिच्छका) मुकुट, कानोंमें चञ्चल कुण्डल और भौंहरूपी धनुषको देखकर नेत्ररूपी खञ्जन (कुछ) अप्रसन्न (-से) हो रहे (कुछ लाल हो गये) हैं। दाँतोंकी कान्ति बिजलीके समान है, वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला है, आनन्दमें भीगे (आनन्दमग्न) हुए ग्वालबालोंके साथ आ रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी बलराम-श्याम संतोंके आनन्दधाम हैं, जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा देखकर (ही) जीवन धारण करना चाहिये। (जीवनका फल इस शोभाका दर्शन ही है।)

राग कान्हरौ

[७६]

राजत री बनमाल गरैं हरि आवत बन तैं।
फूलनि सौं लाल पाग, लटकि रही बाम भाग,
सो छबि लखि सानुराग, टरति न मन तैं ॥ १ ॥
मोर मुकुट सिर सिखंड, गोरज मुख मंजु मंड,
नटवर बर बेष धरैं आवत छबि तैं।
सूरदास प्रभु की छवि ब्रज ललना निरखि थकित
तन मन न्यौछावर करैं, आँनद बहु तैं ॥ २ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! गलेमें वनमाला पहिने श्याम-सुन्दर वनसे आते हुए बड़ी शोभा पा रहे हैं। फूलोंसे सजी लाल पगड़ी बायीं ओर लटक रही है, इस शोभाको प्रेमपूर्वक देखनेके बाद यह मनसे हटती ही नहीं। मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट है, मुख गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे सुशोभित है, श्रेष्ठ नट-जैसा उत्तम वेष बनाये बड़ी छटासे आ रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीकी (यह) शोभा देखकर व्रजकी स्त्रियाँ मुग्ध हो अत्यन्त आनन्दसे (उनपर) अपना तन-मन न्यौछावर कर देती हैं।

राग गौरी

[७७]

ब्रज कौं, देखि, सखी ! हरि आवत।
कटि तट सुभग पीतपट राजत, अद्भुत भेष बनावत ॥ १ ॥
कुंडल तिलक चिकुर रज मंडित, मुरली मधुर बजावत।
हँसि मुसुकानि, बंक अवलोकनि, मनमथ कोटि लजावत ॥ २ ॥
पीरी, धौरी, धूमरि, गोरी लै लै नाउँ बुलावत।
कबहूँ गान करत अपनी रुचि करतल तार बजावत ॥ ३ ॥
कुसुमित दाम मधुप कुल गुंजत, संग सखा मिलि गावत।
कबहुँक नृत्य करत कौतूहल, सप्तक भेद दिखावत ॥ ४ ॥

मंद-मंद गति चलत मनोहर, जुवतिनि रस उपजावत ।
आनँद कंद जसोधा नंदन सूरदास मन भावत ॥ ५ ॥

(गोपी कहती है—) 'सखी ! देख, श्यामसुन्दर व्रज आ रहे हैं । कमरमें मनोहर पीताम्बर सुशोभित है, विचित्र वेष बना रखा है । कानोंमें कुण्डल हैं, ललाटपर तिलक है, केश धूलिसे भूषित हैं और मधुर स्वरमें वंशी बजा रहे हैं । इनका मुस्कराकर हँसना तथा तिरछे देखना तो करोड़ों कामदेवोंको लज्जित कर रहा है । 'पीली ! धौरी (उजली) ! धूमरी (मटमैली) ! गोरी (लाल) !' आदि नाम ले-लेकर गायोंको बुलाते हैं । कभी अपनी रुचिसे गाते और हथेलियोंसे ताल देते हैं । फूलोंकी मालापर भौंरोंका झुंड गुंजार कर रहा है, साथके सखा मिलकर गा रहे हैं । कभी विनोदसे नाचने लगते हैं और सातों स्वरोंके (मन्द्र, मध्य और तार—तीनों) भेद दिखलाते हैं । अत्यन्त मनोहर मन्द-मन्द चालसे चलते हुए युवतियोंमें प्रेमका संचार करते हैं । सूरदासजी कहते हैं—(ये) आनन्दकन्द श्रीयशोदानन्दन मेरे चित्तको अत्यन्त प्रिय लगते हैं ।

[७८]

कमल मुख सोभित सुंदर बैनु ।
मोहन राग बजावत गावत, आवत चारैं धैनु ॥ १ ॥
कुंचित केस सुदेस बदन पै, जनु साज्यौ अलि सेनु ।
सहि न सकत मुरली मधु पीवत, चाहत अपनौ ऐनु ॥ २ ॥
भ्रकुटि मनौ कर चाप आप लै भयौ सहायक मैनु ।
सूरदास प्रभु अधर सुधा लगि उपज्यौ कठिन कुचैनु ॥ ३ ॥

कमल-मुखपर सुन्दर वंशी शोभा दे रही है । मनोमुग्धकारी राग बजाते, गाते हुए श्यामसुन्दर गायें चराकर आ रहे हैं । मुखपर घुँघराले केश (झूमते हुए) सुशोभित हो रहे हैं मानो भौंरोंकी सेना सजी हो । वे (भ्रमर मानो) यह नहीं सह पा रहे हैं कि मुरली ही (मुखकमलका)

मधु पीती रहे; अपना निवासस्थान (मुखरूपी कमल) वे पा लेना चाहते हैं। भौंहें ऐसी हैं मानो स्वयं हाथमें धनुष लेकर कामदेव (अलकरूपी भौंरोंका) सहायक हो गया है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी अधर सुधाके लिये (इस प्रतिद्वन्द्विता को देखकर) मेरे मनमें भी (उसे पानेके लिये) बड़ी बेचैनी हो गयी है।

राग केदारौ

[७९]

नैननि निरखि हरि कौ रूप।
चित्त दै मुख चितै, माई ! कमल ऐन अनूप ॥ १ ॥
कुटिल केस सुदेस अलिगन, नैन सरद सरोज।
मकर कुंडल किरन की छबि दुरत फिरत मनोज ॥ २ ॥
अरुन अधर, कपोल, नासा, सुभग ईषद हास।
दसन दामिनि, लजत नव ससि, भ्रकुटि मदन बिलास ॥ ३ ॥
अंग अंग अनंग जीते, रुचिर उर बनमाल।
सूर सोभा हृदै पूरन देत सुख गोपाल ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! हरिके रूपको आँखोंसे देख। अरी, ध्यान लगाकर उस मुखको देख, जो अनुपम कमल-कोषके समान है। सुन्दर घुँघराली अलकें ऐसी लगती हैं जैसे भौंरोंका समूह हो; नेत्र शरद्ऋतुमें खिले कमलके समान हैं तथा मकरके समान कुण्डलोंकी किरणोंकी शोभा देखकर कामदेव भी (लज्जित होकर) छिपता फिरता है। लाल-लाल ओठ हैं, सुन्दर कपोल और मनोहर नासिका है, मन्द-मन्द मुसकराते हैं। दाँतोंकी कान्ति बिजलीके समान है, जिसे देखकर नवीन चन्द्रमा भी लज्जित होता है; और उनकी भृकुटी कामका क्रीडास्थल है। (उनके) अङ्ग-अङ्गने कामदेवको जीत लिया है। सुन्दर वक्षःस्थलपर वनमाला है। सूरदासजी कहते हैं कि गोपाल अपनी शोभासे हृदयको पूर्ण आनन्द दे रहे हैं।

[८०]

हरि कौ बदन रूप निधान ॥
दसन दाड़िम-बीज राजत, कमल कोष समान।
नैन पंकज रुचिर द्वै दल, चलन भौंहनि बान ॥ १ ॥
मध्य स्याम सुभाग मानौ अली बैठ्यौ आन।
मुकुट कुंडल किरन करननि, किएँ किरन की हान ॥ २ ॥
नासिका, मृग तिलक ताकत चिबुक चित्त भुलान।
सूर के प्रभु निगम बानी, कौन भाँति बखान ॥ ३ ॥

श्यामका मुख रूपका खजाना (कोष) है। उसमें दन्तावलियाँ इस प्रकार शोभित हैं, जैसे कमलके कोष (बीच) में अनारके दाने रखे हों। नेत्र कमलकी दो सुन्दर पँखुड़ियोंके समान हैं और भौंहोंके साथ उनका चलना बाणकी भाँति है। (उन) नेत्रोंके मध्यका सुन्दर श्याम भाग (पुतलीरूप) जो है, वह ऐसा लगता है मानो वहाँ भौंरा आकर बैठ गया हो। मुकुट और कानोंके कुण्डलोंने अपनी किरणोंसे सूर्यकी किरणोंको भी तुच्छ बना दिया (उनको अपनी कान्तिमें लुप्त ही कर दिया) है। नासिका, कस्तूरीका तिलक तथा ठुड्डीको देखते ही चित्त वहीं भूल (ठिठक) जाता है। (ऐसे) सूरदासके स्वामीका वेदकी वाणी भी किस प्रकार वर्णन कर सकती है। (अर्थात् वे वेदोंके लिये भी अवर्णनीय हैं, तब दूसरा उनके वर्णनमें समर्थ हो कैसे सकता है।)

राग नट

[८१]

माधौ जू के बदन की सोभा।
कुटिल कुंतल कमल प्रति मनु मधुप रस लोभा ॥ १ ॥
भ्रकुटि इमि नव कंज पर जनु सरत चंचल मीन।
मकर कुंडल छबि किरन रबि परसि बिगसित कीन ॥ २ ॥
सुरभि रेनु पराग रंजित, मुरलि धुनि अलि गुंज।
निरखि सुभग सरोज मुदित मराल सम सिसु पुंज ॥ ३ ॥

दसन दामिनि बीच मिलि मनु जलद मध्य प्रकास।
निगम बानी नेति क्यौं कहि सकै सूरजदास ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) श्रीमाधवजीके मुखकी शोभा इस प्रकार है—घुँघराली अलकें ऐसी लगती हैं मानो भौंरे कमलको रसके लोभसे घेरे हों। (नेत्रोंपर) भौंहें ऐसी शोभित हैं, मानो (दो) नवीन कमलोंपर चञ्चल मछलियाँ चल रही हों और मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा सूर्यकी किरणोंके समान है, जिन्होंने स्पर्श करके नेत्ररूप कमलोंको प्रफुल्लित किया है। श्यामसुन्दरका मुख-कमल गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिरूप परागसे सुशोभित है तथा मुरलीकी ध्वनि भौंरोंकी गुंजार है। उस (श्यामसुन्दरके मुखरूपी) मनोहर कमलको देखकर हंसोंके समान गोपबालकोंका समूह आनन्दित हो रहा है। विद्युत्के समान दाँतोंकी कान्ति मध्यमें मिलकर ऐसी लगती है मानो बादलमें (विद्युत्का) प्रकाश हो। जिनके प्रति वेदवाणी भी 'नेति-नेति' कहती है, उनका वर्णन सूरदास कैसे कर सकता है।

[८२]

देखि री देखि मोहन ओर।
स्याम सुभग सरोज आनन चारु चित के चोर ॥ १ ॥
नील तनु मनु जलद की छबि, मुरलि सुर घन घोर।
दसन दामिनि लसति बसननि, चितवनी झकझोर ॥ २ ॥
स्रवन कुंडल, गंड मंडल उदित ज्यौं रबि भोर।
बरहि मुकुट बिसाल माला, इंद्र धनु छबि थोर ॥ ३ ॥
धातु चित्रित भेष नटवर, मुदित नवल किसोर।
सूर स्याम सुभाइ आतुर, चितै लोचन कोर ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—) 'देख, सखी ! मोहनके मुखकी ओर देख। मनोहर नील कमलके समान सुन्दर मुखवाले श्यामसुन्दर चित्तके चोर हैं। नील

शरीरकी मेघके समान आभा है (और उनकी) मुरलीका शब्द मेघगर्जन-जैसा है, दाँतों और पीताम्बरके रूपमें मानो विद्युत्का प्रकाश हो रहा है (तथा आपकी) चितवन ही मानो उस बिजलीके झटके या धक्केके समान है। कानोंके कुण्डल गण्डस्थलपर ऐसे शोभित हैं मानो प्रातःकालका सूर्य उदित हुआ हो; और मयूरपिच्छके मुकुट तथा लंबी (घुटनोंतक लटकती) वनमालाके सामने तो इन्द्रधनुषकी शोभा भी कम ही है । (गेरू आदि) धातुओंसे चित्रित श्रेष्ठ नटके समान वेषमें ये नवलकिशोर आनन्दपूर्वक आ रहे हैं । सूरदासजी कहते हैं कि गोपियाँ श्यामसुन्दरके ऐसे रूपको आँखोंकी कोरसे स्वाभाविक रूपमें ही आतुर (अधीर) होकर देखती हैं ।

राग कल्यान

[८३]

माधौ जू के तन की सोभा कहत नहीं बनि आवै।
अँचवत सादर दुहुँ लोचन पुट, मन नाहीं तृपितावै ॥ १ ॥
सघन मेघ अति स्याम सुभग बपु, तड़ित बसन, बनमाल।
सिर सिखंड, बन धातु बिराजत सुमन सुरंग प्रवाल ॥ २ ॥
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति गोरज मंडित केस।
अंबुज रुचि पराग पर मानौ राजत मधुप सुदेस ॥ ३ ॥
कुंडल लोल कपोल किरन गन, नैन कमल दल मीन।
अधर मधुर मुसुकानि मनोहर, करत मदन मन हीन ॥ ४ ॥
प्रति प्रति अंग अनंग कोटि छबि, सुनि सखि परम प्रबीन।
सूर दृष्टि जहँ जहाँ परति, तहँ तहीं रहति ह्वै लीन ॥ ५ ॥

(गोपी कहती है–) माधवजीके शरीरकी शोभाका वर्णन करते नहीं बनता; दोनों नेत्ररूपी दोनेसे आदरपूर्वक उसका पान करनेपर भी मन तृप्त नहीं होता। घने मेघके समान अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, विद्युत्के समान वस्त्र है, वनमाला धारण किये हैं । मस्तकपर मयूरपिच्छ है, (शरीरमें) वनकी धातुएँ घिसकर लगायी गयी हैं, जो बहुत ही भली लगती हैं। उत्तम रंगके पुष्प

तथा कोमल लाल-लाल किसलय (अङ्गोंपर) विराज रहे हैं। (मुखपर) गायोंके खुरोंसे उड़ी धूलिसे विभूषित अत्यन्त कमनीय घुँघराले घने केश कुछ ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो कमलके परागपर रुचि रखनेवाले (परागके लिये लालायित) भौंरे उत्तम ढंगसे मँडराते शोभा दे रहे हों। चञ्चल कुण्डलोंकी किरणोंका समूह कपोलोंपर पड़ रहा है, कमलकी पँखुड़ियों तथा मछलियोंके समान नेत्र हैं, अधरोंकी मनोहर मधुर मुस्कराहट कामदेवके भी मनको छोटा बना देनेवाली है (उस मुस्कराहटको देखकर कामदेव भी लजा जाता है)। अरी परम प्रवीण सखी ! सुन, उनके अङ्ग-अङ्गपर करोड़ों कामदेवकी शोभा खेल रही है। सूरदासजी कहते हैं कि (गोपियोंकी) दृष्टि जिस-जिस अङ्गपर पड़ती है, वहीं-वहीं निमग्न हो रहती है।

राग हमीर

[८४]

चितवनि मैं, कि चंद्रिका मैं, किधौं मुरली माझि ठगौरी।
देखत, सुनत मोहें जिहि सुर, नर, मुनि, मृग और खगौ री ॥१॥
जब तैं दृष्टि परे मन मोहन, गृह मेरौ मन न लगौ री।
सूर स्याम बिनु छिनु न रहौं मैं, मन उन हाथ पगौ री ॥२॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! (न जाने) उनकी चितवनमें या चन्द्रिकामें अथवा मुरलीमें (कौन-सी ऐसी) मोहिनी है, जिसके देखते-सुनते सुर, नर, मुनि, मृग और पक्षी मोहित हो जाते हैं। मनमोहन जबसे दृष्टि पड़े हैं, तभीसे मेरा मन घरमें कभी नहीं लगा है। सूरदासके (इष्ट) श्यामसुन्दरके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकती, मेरा मन उनके हाथ पग गया (उनमें ही अनुरक्त हो गया) है।

राग कल्यान

[८५]

लाल की रूप माधुरी, निरखि नैकु सखी री।
मनसिज मन हरनि हाँसि, साँवरौ सुकुमार रासि,
नख सिख अँग-अंग निरखि सोभा सींव नखी री ॥ १ ॥

रँगमँगि सिर सुरँग पाग, लटकि रही वाम भाग,
चंपकली कुटिल अलक बीच-बीच रखी री।
आयत दृग अरुन लोल, कुंडल मंडित कपोल,
अधरं दसन दीपति छवि क्यौंहुँ न जाति लखी री ॥ २ ॥
अभयद भुजदंड मूल, पीन अंस सानुकूल,
कनक मेखला दुकूल दामिनी धरषी री।
उर पै मंदार हार, मुक्ता लर वर सुढार,
मत्त द्विरद गति तियनि की देह-दसा करषी री ॥ ॥
मुकुलित बय नव किसोर, वचन रचन चितै चोर,
माधुरी प्रकास मंजरी अनूप चखी री।
सूर स्याम अति सुजान, गावत कल्यान तान,
सप्त सुरनि कल तिहि पर मुरलिका बरषी री ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! तनिक गोपाल लालकी रूपमाधुरी तो देख। कामदेवका भी मन हरण करनेवाला हास्य है, (यह) साँवला सुकुमारताकी राशि है, नखसे चोटीतक देख तो, इसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग शोभाकी सीमाको पार कर गया है। मस्तकपर नारंगी (नारंगी-जैसे रंगवाली) पगड़ी बायीं ओर लटक रही है तथा घुँघराली अलकोंके बीच-बीचमें चम्पाकी कलियाँ सजायी गयी हैं। बड़े-बड़े अरुनारे चञ्चल नेत्र हैं, कपोल कुण्डलोंसे शोभित हो रहे हैं; (लाल-लाल) ओठोंकी आभा दाँतोंपर इस प्रकार पड़ रही है कि उनकी शोभा किसी भी प्रकारसे समझी नहीं जा सकती। भुजदण्डका मूल भाग (कंधेसे मिला हुआ अंश) अभयका स्थान (सबको अभय देनेवाला) और मोटे कंधे बड़े सुडौल (अङ्गके अनुरूप) तथा सोनेकी करधनी और पीताम्बरका पटुका विद्युत्‌को भी कान्तिहीन करनेवाले हैं। वक्षःस्थलपर पारिजातके पुष्पोंकी माला तथा सुडौल मोतियोंकी उत्तम माला है तथा (उनकी) मतवाले हाथीकी-सी चाल व्रजस्त्रियोंकी देहकी सुधिको खींच लेनेवाली (उन्हें मोहित कर लेनेवाली) है। खिलती हुई नयी किशोरावस्था, चित्तको चुरानेवाली वाक्य-रचना

(बोलनेकी शैली), रूप-माधुर्यकी प्रकाशमान अनुपम मञ्जरीका स्वाद तो ले। सूरदासजी कहते हैं कि अत्यन्त चतुर श्यामसुन्दर कल्याणराग गा रहे हैं, उसकी तानपर वंशी सातों स्वरोंकी सुन्दर वर्षा कर रही है।

[८६]

आवत मोहन धेनु चराएँ।
मोर मुकुट सिर, उर बनमाला,
हाथ लकुट, गो रज लपटाएँ॥ १॥
कटि कछनी किंकिनि धुनि बाजति,
चरन चलत नूपुर रव लाएँ।
ग्वाल मंडली मध्य स्याम घन,
पीत बसन दामिनी लजाएँ॥ २॥
गोप सखा आवत गुन गावत,
मध्य स्याम हलधर छबि छाएँ।
सूरदास प्रभु असुर सँघारें
ब्रज आवत मन हरष बढ़ाएँ॥ ३॥

(सखी कहती है —) मोहन गायें चराकर आ रहे हैं। मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट है, वक्षःस्थलपर वनमाला है, हाथमें छड़ी है और गायोंके खुरसे उड़ी धूलि लिपटाये हुए हैं। कमरमें कछनीके ऊपर किङ्किणी मधुर ध्वनिसे बज रही है तथा चलते समय चरणोंमें नूपुरका शब्द हो रहा है। गोपबालकोंकी मण्डलीके बीच मेघके समान श्यामसुन्दर पीताम्बरके द्वारा बिजलीको भी लज्जित कर रहे हैं। गोप-सखा गुणगान करते आ रहे हैं, बीचमें श्याम और बलराम सुशोभित हैं। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी (वनमें) असुर मारकर मनमें प्रसन्नताको बढ़ाते हुए व्रज आ रहे हैं।

राग कल्यान

[८७]

ए लखि आवत मोहनलाल ।
स्याम सुभग घन, तड़ित बसन, बग पंगति, मुक्ता माल ॥ १ ॥
गो पद रज मुख पै छबि लागति, कुंडल नैन बिसाल ।
बल मोहन बन तैं बने आवत, लीन्हें गैया जाल ॥ २ ॥
ग्वाल मंडली मध्य बिराजत, बाजत बेनु रसाल ।
सूर स्याम बन तैं ब्रज आए, जननि लए अँकमाल ॥ ३ ॥

देखो ! ये मोहनलाल आ रहे हैं । मेघके समान मनोहर श्याम शरीर है, बिजलीके समान पीताम्बर है, मोतियोंकी माला बगुलोंकी पंक्तिके समान है । गायोंके खुरसे उड़कर मुखपर लगी धूलि सुहावनी लग रही है, (कानोंमें) कुण्डल हैं (और) बड़े-बड़े नेत्र हैं, गायोंका समूह साथ लिये बलराम और श्याम वनसे सजे हुए आ रहे हैं । (दोनों भाई) गोपोंकी मण्डलीके मध्यमें विराजमान हैं, रसमयी वंशी बज रही है । सूरदासजी कहते हैं कि (जब) श्याम वनसे व्रजमें आये, (तब) माताने उन्हें गोदमें ले लिया ।

राग कान्हरौ

[८८]

हम देखे इहि भाँति कन्हाई ।
सीस सिखंड, अलक बिथुरीं मुख, कुंडल स्रवन सुहाई ॥ १ ॥
कुटिल भृकुटि, लोचन अनियारे, सुभग नासिका राजत ।
अरुन अधर दसनावलि की दुति दाड़िम कन तन लाजत ॥ २ ॥
ग्रीव हार मुकुता, बनमाला, बाहु दंड गज सुंड ।
रोमावली सुभग बग पंगति, जाति नाभि ह्रद झुंड ॥ ३ ॥
कटि पट पीत, मेखला कंचन, सुभग जंघ, जुग जानु ।
चरन कमल नख चंद नहीं सम, ऐसे सूर सुजानु ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—सखि !) हमने कन्हाईको इस प्रकार देखा । मस्तक-पर मयूरपिच्छ, मुखपर बिखरी अलकें, कानोंमें कुण्डल शोभा दे रहे हैं। टेढ़ी भौंहें, नुकीले नेत्र, मनोहर छटा देती नासिका, लाल ओठ और दन्तपंक्तियोंकी ऐसी कान्ति कि अनारके दाने भी अपने शरीरसे लजा जायँ ! गलेमें मोतियोंकी माला तथा वनमाला, हाथीकी सूँड़की भाँति भुज-दण्ड, झुंड बनाकर नाभिरूपी सरोवरको जाती हुई बगुलोंकी पंक्तिके समान मनोहर रोमावली, कमरमें पीताम्बर और सोनेकी करधनी, मनोहर जाँघें और दोनों पिंडलियाँ, कमलके समान चरणके नखोंकी समता चन्द्रमा भी नहीं कर सकते । सूरदासजी कहते हैं—ऐसे सुजान (श्यामसुन्दर) हैं, जिन्हें हमने देखा ।

राग बिलावल

[८९]

बने बिसाल कमल दल नैन ।
ताहू मैं अति चारु बिलोकनि,
गूढ़ भाव सूचति सखि सैन ॥ १ ॥
बदन सरोज निकट कुंचित कच,
मनौ मधुप आए मधु लैन ।
तिलक तरुन ससि, कहत कछुक हँसि,
बोलत मधुर मनोहर बैन ॥ २ ॥
मदन नृपति कौ देस महा मद,
बुधि बल बसि न सकत उर चैन ।
सूरदास प्रभु दूत दिनहिं दिन,
पठवत चरित चुनौती दैन ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) बड़े-बड़े नेत्र कमलदलके (कमलकी पंखड़ीके) समान सजे हैं । सखी ! उसमें भी देखनेकी अत्यन्त सुन्दर भङ्गी (रीति) संकेतसे गूढ़ भाव सूचित करनेवाली है । कमलके समान मुखके चारों ओर घुँघराले बाल ऐसे लगते हैं मानो भौंरे मधु लेने आये हों । पूर्ण चन्द्रमाके समान

तिलक लगा है, हँसकर कुछ कह रहे हैं और मनोहर वचन बोल रहे हैं। (इनका यह रूप तो) मानो महान् गर्विष्ठ कामदेवरूपी राजाका देश है, (जहाँ) अपने बुद्धि-बलसे (विचार करके भी) हृदयकी शान्ति नहीं बस सकती (इन्हें देखकर चित्त चञ्चल हुए बिना रह नहीं सकता)। सूरदासके स्वामी (इतनेपर भी) अपने चरितरूपी दूत दिनोंदिन (रोज-रोज) चुनौती देने भेज देते हैं। (ऐसे-ऐसे चरित करते हैं मानो चुनौती दे रहे हैं कि देखें कौन कबतक धैर्य रख सकता है और मोहित नहीं होता।)

राग धनाश्री

[९०]

ऐसे हम देखे नँद नंदन।
स्याम सुभग तनु पीत बसन, जनु
नील जलद पै तड़ित सुछंदन॥ १॥
मंद मंद मुरली रव गरजनि,
सुधा दृष्टि बरषति आनंदन।
बिबिध सुमन बनमाला उर, मनु
सुरपति धनुष नए ही छंदन॥ २॥
मुक्तावली मनौ बग पंगति,
सुभग अंग चरचित छबि चंदन।
सूरदास प्रभु नीप तरोवर
तर ठाढ़े सुर नर मुनि बंदन॥ ३॥

(सखी सखीसे कहती है—) हमने नन्दनन्दनको इस वेषमें देखा— मनोहर श्याम शरीरपर पीला वस्त्र (ऐसा लग रहा था) मानो नीले मेघपर स्वच्छन्द बिजली स्थिर हो। मन्द-मन्द वंशी-ध्वनिकी गर्जना (के साथ) अमृतमयी दृष्टि आनन्दकी वर्षा कर रही है। भाँति-भाँतिके पुष्पोंकी वनमाला वक्षःस्थलपर (ऐसी) है मानो नयी रस्सीसे बँधा इन्द्रधनुष है। मोतियोंकी माला क्या है मानो बगुलोंकी पंक्ति हो, मनोहर अङ्गोंमें लगा चन्दन शोभा दे

रहा है। सूरदासजी कहते हैं—देवता, मनुष्य तथा मुनिगणोंके भी वन्दनीय मेरे स्वामी कदम्ब-वृक्षके नीचे खड़े हैं।

राग बिहागरौ

[९१]

जैसे कहे, स्याम हैं तैसे।
कृष्न रूप अवलोकन कौं सखि, नैन होहिं जौ ऐसे ॥ १ ॥
तैं जु कहति लोचन भरि आए, स्याम कियौ तहँ ठौर।
पुन्न थली तिहि जानि बिराजे, बात नहीं कछु और ॥ २ ॥
तेरे नैन बास हरि कीन्हौ, राधा, आधा जानि।
सूर स्याम नटवर बपु काछैं, निकसे इहिं मग आनि ॥ ३ ॥

(एक गोपी श्रीराधासे कहती है—) 'तुमने श्यामसुन्दरको जैसा (मोहन) बतलाया, वे सचमुच ही वैसे हैं। सखी! श्रीकृष्णचन्द्रके स्वरूपको देखनेके लिये यदि नेत्र हों (तो) ऐसे (तुम्हारे समान) हों। तुम जो यह कहती हो कि नेत्र भर आये, सो वहाँ तो श्यामने स्थान बना लिया; (वे तुम्हारे नेत्रोंको) पवित्र स्थान समझकर (वहाँ) विराजमान हुए हैं! दूसरी कोई बात नहीं। श्रीराधे, (तुम्हें) आधी (अर्धांग, अपूर्ण) समझकर (पूर्ण करनेके लिये) हरिने तुम्हारे नेत्रोंमें निवास किया है।' सूरदासजी कहते हैं कि नटवरका-सा वेष बनाये श्यामसुन्दरको उसी समय देखा, जब वे इस मार्गसे निकले।

राग कल्यान

[९२]

जब तैं निरखे चारु कपोल।
तब तैं लोक लाज सुधि बिसरी, दै राखे मन ओल ॥ १ ॥
निकसे आइ अचानक तिरछे, पहरें पीत निचोल।
रतन जटित सिर मुकट बिराजत, मनिमै कुंडल लोल ॥ २ ॥
कहा करौं, बारिज मुख ऊपर बिथके षटपद जोल।
सूर स्याम करि यह उतकरषा, बस कीन्हीं बिनु मोल ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है--) जबसे (श्यामके) सुन्दर कपोल देखे, तभीसे लोकलज्जाका ध्यान छूट गया और मन (उन्हें) जमानतमें दे रखा है। अचानक पीताम्बर पहने त्रिभङ्गरूपमें इधरसे आ निकले; (उस समय उनके) मस्तकपर रत्नजटित मुकुट विराजमान था, मणिमय कुण्डल चञ्चल हो रहे (हिल रहे) थे। क्या करूँ, कमलमुखपर (बिखरी अलकेंरूप) थके हुए भौंरोंका समूह शोभा दे रहा था। सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरने (अपने रूपकी) यह अभिवृद्धि करके (मुझे) बिना मूल्यके ही वश कर लिया।

राग पूरबी

[९३]

चारु चितौनि, सु चंचल डोल।
कहि न जाति मन मैं अति भावति,
कछु जु एक उपजति गति गोल ॥ १ ॥
मुरली मधुर बजावत, गावत,
चलत करज अरु कुंडल लोल।
सब छबि मिलि प्रतिबिंब बिराजत,
इंद्रनील मनि मुकुर कपोल ॥ २ ॥
कुंचित केस सुगंध सुबसि मनु
उड़ि आए मधुपनि के टोल।
सूर सुभ्रुव, नासिका मनोहर,
अनुमानत अनुराग अमोल ॥ ३ ॥

(सखी कहती है—मोहनका) मनोहर ढंगसे देखनेकी तथा अत्यन्त चञ्चल नेत्रोंकी शोभा कही नहीं जाती, (यद्यपि) वह मनको बहुत भाती है; (क्योंकि उन्हें देखकर हृदयमें) एक (अद्भुत) हलचल उत्पन्न हो जाती है। मुरली मधुर स्वरमें बजाना, गाना, हाथ चलाना तथा कुण्डलोंका हिलना—इन सबकी छटाका प्रतिबिम्ब एकत्र होकर ही इन्द्रनील मणिके दर्पणके समान कपोलोंमें (बहुत सुन्दर) शोभा देता है। घुँघराले

केश ऐसे हैं मानो सुगन्धके वशीभूत होकर भौंरोंके झुंड उड़कर आये हों। सूरदासजी कहते हैं कि सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका अमूल्य प्रेमका अनुमान करा देती हैं (कि अमूल्य—असीम प्रेमके ये ही आधार हैं)।

राग बिभास

[९४]

गोकुल गाँउ रसीले पिय कौ।
मोहन देखि मिटत दुख जिय कौ ॥ १ ॥
मोरमुकुट, कुंडल, बनमाला।
या छबि सौं ठाढ़े नँदलाला ॥ २ ॥
कर मुरली, पीतांबर सोहै।
चितवत ही सब कौ मन मोहै ॥ ३ ॥
मन मोहियौ इन साँवरे हो, चकित सी डोलत फिरौं।
और कछु न सुहाइ तन मन, बैठि उठि गिरि गिरि परौं ॥ ४ ॥
मदन बान सुमार लागे, जाइ परि न कछू कही।
और कछू उपाइ नाहीं, स्याम बैद बुलावही ॥ ५ ॥
मैं तौ तजी लाज गुरुजन की।
अब मोहि सुधि न परै या तन की ॥ ६ ॥
लोग कहैं यह भइ है बौरी।
सुत पति छाँड़ि फिरति बन दौरी ॥ ७ ॥
छाँड़ि सुरति सम्हार जिय की, कृष्न छबि हिरदै बसी।
मदन मोहन देखि धाई, बैसिए कुंजनि धँसी ॥ ८ ॥
कुंज धाम किसोर ठाढ़े, केसरि खौरि बनाइ कैं।
चंद्रिका पर प्रान वारौं, बलि गई या भाइ कैं ॥ ९ ॥
इन नैनन बाँध्यौ प्रन भारी।
निरखत रहैं सदा गिरिधारी ॥ १० ॥

काहू कौ कह्यौ मन नहिं आन्यौं।
कमलनैन नैननि पहिचान्यौं ॥ ११ ॥
निरखि नंद किसोर सखि री, कोटि किरन प्रकासु री।
कालिंदी कें तीर ठाढ़े, स्रवन सुनियत बाँसुरी ॥ १२ ॥
बाँसुरी बस किए सुर नर, सुनत पातक नासु री।
सूर के प्रभु यहै बिनती, सदा चरननि बासु री ॥ १३ ॥

(गोपिका कहती है—) गोकुल गाँव तो (मेरे) रँगीले (प्रेममय) स्वामीका है, (जहाँ) मोहनको देखकर चित्तका क्लेश दूर हो जाता है। मोर-मुकुट, कुण्डल और वनमाला पहिने इस छटासे श्रीनन्दनन्दन खड़े हैं। हाथमें वंशी (और अङ्गपर) पीताम्बर शोभित है, देखते ही सबका मन मोहित कर लेते हैं। इन श्यामने मेरे मनको ऐसा मोहित कर लिया है, (जिससे) आश्चर्यमें पड़ीकी भाँति घूमती-फिरती हूँ। तन-मनको दूसरा कुछ अच्छा नहीं लगता; बैठती हूँ, उठती हूँ, गिर-गिर पड़ती हूँ। अगणित कामदेवके बाण लगे हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता; श्यामसुन्दररूपी वैद्यको बुलाओ, दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैंने तो गुरुजनोंकी (भी) लज्जा छोड़ दी, अब मुझे इस शरीरका (भी) ध्यान नहीं रहता। लोग कहते हैं—'यह पागल हो गयी है, (जो) पति-पुत्र-को छोड़कर वनमें दौड़ी-दौड़ी घूमती है।' प्राणों (शरीर) की (भी) सुधि एवं सम्हाल छोड़ दी, श्रीकृष्णकी शोभा हृदयमें बस गयी है। मदनमोहन-को देखकर दौड़ी और उसी (बेसुध) दशामें कुञ्जमें चली गयी। कुञ्ज-भवनमें केसरकी खौर (पूरे ललाटपर तिलक) सजाये नवलकिशोर खड़े थे, उनके मोर-मुकुटकी चन्द्रिकापर मैं अपने प्राण न्यौछावर कर दूँ, (उनके उस) बनावपर—खड़े होनेके ढंगपर मैं बलिहारी गयी। मेरे इन नेत्रोंने यह महान् प्रतिज्ञा ठान ली (कर ली) कि सदा गिरधारीको देखते ही रहें। किसीका कहना (समझाना) चित्तपर जमा नहीं, नेत्रोंने कमललोचनको पहिचान लिया (उनसे प्रेम कर

लिया) । सखी ! नन्दकिशोरको देख, करोड़ों किरणोंके (समान) प्रकाशित हैं, यमुनाके किनारे खड़े हैं, वंशीध्वनि कानोंसे सुनायी पड़ रही है । उस वंशीने देवता, मनुष्य—सबको वशमें कर लिया है (और उसकी धुन) सुनते ही (समस्त) पापोंका नाश हो जाता है ।' सूरदासजी कहते हैं—अपने स्वामीसे (मेरी) यही प्रार्थना है कि सदा उनके चरणोंमें मेरा निवास रहे ।

राग गौरी

[९५]

नंद नँदन बृंदावन चंद ।
जदुकुल नभ, तिथि दुतिय देवकी, प्रगटे त्रिभुवन बंद ॥ १ ॥
जठर कुहू तैं बिहरि बारुनी, दिसि मधुपुरी सुछंद ।
बसुद्यौ संभु सीस धरि आन्यौ गोकुल, आनँद कंद ॥ २ ॥
ब्रज प्राची, राका तिथि जसुमति, सरस सरद रितु नंद ।
उड़गन सकल सखा संकरषन, तम कुल दनुज निकंद ॥ ३ ॥
गोपी जन चकोर चित बाँध्यौ, निमि निवारि पल द्वंद ।
सूर सुदेस कला षोडस परिपूरन परमानंद ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—सखी !) श्रीनन्दनन्दन वृन्दावनके चन्द्रमा हैं । यदुकुलरूपी आकाशमें, माता देवकीरूपी द्वितीया तिथिमें वे त्रिभुवनके वन्दनीय प्रकट हुए हैं । मथुरारूपी पश्चिम दिशामें (माताके) गर्भरूप अमावास्याकी रात्रिमें स्वतन्त्रतापूर्वक विहार (निवास) कर लेनेके बाद वसुदेवजीरूपी शंकर मस्तकपर रखकर इन आनन्दकन्दको गोकुल लाये । व्रज पूर्व दिशा, यशोदाजी पूर्णिमा तिथिके समान और नन्दजी रसमय शरद् ऋतु हैं । सभी सखा तथा बलरामजी तारागण हैं और चन्द्ररूप मोहन अन्धकारस्वरूप असुरकुलको नष्ट करनेवाले हैं । चकोरोंके समान गोपियोंने पलकोंका गिरना-उठना बंद करके (अपलक

देखते हुए इनमें) चित्त लगाया है। सूरदासजी कहते हैं कि षोडश कलाओंसे भली प्रकार परिपूर्ण (ये) परमानन्द (यहाँ प्रकट) हैं।

[९६]

देखि सखी ! हरि कौ मुख चारु।
मनौ छिड़ाइ लियौ नँद नंदन वा ससि कौ सत सारु ॥१॥
रूप तिलक, कच कुटिल, किरन छबि कुंडल कल बिस्तारु।
पत्रावलि परिबेष, सुमन सरि मिल्यौ मनौ उड़ दारु ॥२॥
नैन चकोर बिहंग सूर सुनि, पिवत न पावत पारु।
अब अंबर ऐसौ लागत है, जैसौ जूठौ थारु ॥३॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! हरिके सुन्दर मुखको देख, मानो नन्दनन्दन (के मुख) ने (उस आकाशस्थित) चन्द्रमाका सच्चा (यथार्थ) सार भाग (पूरा-का-पूरा) छीन लिया हो। (चन्द्रके) सौन्दर्यको (आपके) तिलकने, श्यामताको कुटिल कचों (टेढ़ी अलकावलियों) ने, किरणोंकी शोभाको सुन्दर बड़े कुण्डलोंने, प्रभा (तेज) को (कपोलोंपर की गयी) गेरूकी रचनाने (छीन लिया) और (आपके कानोंके पास झूलते हुए) फूलोंके तुर्रे ऐसे सुन्दर लग रहे हैं मानो तारागण (आकाशसे) टूटकर (उनकी) बराबरी करनेको आ मिले हों। सूरदासजी, (मेरे) नेत्ररूप चकोर पक्षी (इस मुखचन्द्रका) अमृत पान करते हुए थकते नहीं, अब (तो) आकाश (चन्द्र) ऐसा लगता है, जैसे जूठा थाल (हो)।

राग कान्हरौ

[९७]

देखि री ! हरि के चंचल तारे।
कमल मीन कौं कहँ एती छबि,
खंजनहू न जात अनुहारे ॥ १ ॥

वह लखि निमिष नवत मुरली पर,
कर मुख नैन भए इकचारे।
मनु जलरुह तजि बैर मिलत बिधु,
करत नाद बाहन चुचुकारे ॥ २ ॥
उपमा एक अनूपम उपजति,
कुंचित अलक मनोहर भारे।
बिडरत बिझुकि जानि रथ तैं मृग,
जनु ससंकि ससि लंगर सारे ॥ ३ ॥
हरि प्रति अंग बिलोकि मानि रुचि,
ब्रज बनितानि प्रान धन वारे।
सूर स्याम मुख निरखि मगन भईं,
यह बिचारि चित अनत न टारे ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) 'सखी ! श्यामकी चञ्चल पुतलियाँ देख। कमल और मछलियोंमें इतनी शोभा कहाँ है, खञ्जन भी इनके समान नहीं कहे जा सकते। क्षणभरके लिये देख ! वंशीपर झुके हुए हाथ, मुख और नेत्र एक आधारपर लगे हैं मानो (हाथरूपी) कमल शत्रुता छोड़कर (मुखरूपी) चन्द्रमासे मिल रहा हो और चन्द्रमा शब्द करता हुआ अपने वाहन (नेत्ररूप मृग) को पुचकार रहा हो। घुँघराली घनी मनोहर अलकोंपर एक अनुपम उपमा सूझती है मानो चन्द्रमाने अपने रथके मृगोंको डरकर बिदकते (चौंकते) देख और आशङ्कित होकर (कि ये भाग न खड़े हों) जाल फैला दिया हो।' हरिके प्रत्येक अङ्गको देख और उसपर मुग्ध होकर व्रजकी स्त्रियोंने प्राणरूपी धन न्यौछावर कर दिया। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामका मुख देखकर वे आनन्दमग्न हो गयीं, उनका चित्त उसीके चिन्तनमें डूब गया, वहाँसे हटाये नहीं हटता।

राग सोरठ

[९८]

हरि मुख निरखत नैन भुलाने।
ए मधुकर रुचि पंकज लोभी, ताही तैं न उड़ाने ॥ १ ॥

कुंडल मकर कपोलनि के ढिग जनु रवि रैनि बिहाने।
भ्रुव सुंदर, नैननि गति निरखत, खंजन मीन लजाने ॥ २ ॥
अरुन अधर, दुज कोटि बज्र दुति, ससि घन रूप समाने।
कुंचित अलक, सिलीमुख मिलि मनु लै मकरंद उड़ाने ॥ ३ ॥
तिलक ललाट, कंठ मुकुतावलि, भूषन मनिमय साने।
सूर स्याम रस निधि नागर के, क्यौं गुन जात बखाने ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—) श्रीहरिका मुख देखकर नेत्र (अन्यत्र हटना) भूल ही गये हैं। ये कमल-रसके लोभी भ्रमर हैं, इसीसे (मुख-कमलसे) उड़ते नहीं। कपोलोंके पास मकराकृत कुण्डल ऐसे लगते हैं मानो रात्रि बीतनेपर सूर्य उगे हों। सुन्दर भौंहोंकी मटकन तथा नेत्रोंकी गति देखकर खञ्जन और मछलियाँ भी लज्जित हो जाती हैं। लाल-लाल ओठ हैं; करोड़ों हीरोंके समान प्रभायुक्त दाँत हैं, जिन्हें देख (लज्जित हो)-कर चन्द्रमा बादलोंमें छिप गया है और घुँघराली अलकें ऐसी हैं मानो भौंरोंका झुंड एकत्र होकर पुष्परस लेकर उड़ रहा हो। ललाटपर तिलक है, गलेमें मोतियोंकी लड़ी है, मणिजटित आभूषण हैं। सूरदासजी कहते हैं—(ऐसे) रसके निधान चतुरचूडामणि श्यामसुन्दरके गुण भला, (कोई) कैसे वर्णन कर सकता है।

राग केदारौ

[९९]

देखि री, नवल नंदकिसोर।
लकुट सौं लपटाइ ठाढ़े, जुवति जन मन चोर ॥ १ ॥
चारु लोचन, हँसि बिलोकनि, देखि कैं चित भोर।
मोहिनी मोहन लगावत, लटकि मुकुट झकोर ॥ २ ॥
स्रवन धुनि सुनि नाद पोहत करत हिरदै फोर।
सूर अंग त्रिभंग सुंदर छबि निरखि तृन तोर ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है) 'सखी! नवल नन्दकिशोरको देख, (जो) ये युवतियोंके मनको चुरानेवाले (किस प्रकार) लाठीसे लिपटकर खड़े हैं! इनके

मनोहर नेत्रोंसे हँसते हुए देखनेकी भङ्गी देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है और ये मोहन मुकुटकी झकोरके साथ लटककर कुछ मोहिनी-सी डाल जाते हैं। कानोंमें पैठकर इनकी यह वंशी-ध्वनि हृदयको बेध देती है (उसमें छेद कर देती है, उसे अपनेमें गूँथ लेती है)। सूरदासजी कहते हैं—त्रिभङ्गसुन्दर (श्यामके) श्रीअङ्गकी शोभा देखकर गोपियाँ (उसे नजरसे बचानेके लिये) तृण तोड़ती हैं।

राग कान्हरौ

[१००]

ब्रज बनिता देखति नँद नंदन।
नव घन नील बरन, ता ऊपर खौर कियौ तन चंदन ॥ १ ॥
कनक बरन तन पीत पिछौरी, उर भ्राजति बनमाल।
निरमल गगन सेत बादर पै, मनौ दामिनी जाल ॥ २ ॥
मुक्ता माल बिपुल बग पंगति, उड़त एक भई जोति।
सूर स्याम छबि निरखत जुबती हरष परस्पर होति ॥ ३ ॥

व्रजकी स्त्रियाँ नन्दनन्दनको देख रही हैं—वे नवीन मेघके समान नीलवर्ण हैं और उसपर वे शरीरमें चन्दनका लेप किये हैं। स्वर्णके रंगका पीला पटुका शरीरपर है और वक्षःस्थलपर वनमाला शोभा दे रही है मानो निर्मल आकाशमें श्वेत बादलोंके ऊपर विद्युत्का जाल फैला हो। मोतियोंकी माला विशाल बगुलोंकी पंक्तिके समान है, जो उड़ते हुए एक होकर शोभा दे रही है। सूरदासजी कहते हैं—श्यामकी छटा देख युवतियाँ परस्पर (उसका वर्णन करके) आनन्दित हो रही हैं।

राग सूही

[१०१]

प्रात समै आवत हरि राजत।
रतन जटित कुंडल सखि! स्रवनन,
तिन की किरन सूर तन लाजत ॥ १ ॥

सातौं रासि मेलि द्वादस मैं,
कटि मेखला अलंकृत साजत ।
पृथ्वी मथा पिता सो लै कर,
मुख समीप मुरली धुनि बाजत ॥ २ ॥
जलधि तात तिहि नाम कंठ के,
तिन के पंख मुकुट सिर भ्राजत ।
सूरदास कहै सुनौ गूढ़ हरि
भगतन भजत, अभगतन भाजत ॥ ३ ॥

प्रातःकाल आते हुए श्याम शोभायमान हो रहे हैं। सखी! उनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल हैं, जिनकी किरणोंसे सूर्य-बिम्ब भी लज्जित होता है । यह जुड़ी हुई मछलियोंकी आकृतिसे अलंकृत किङ्किणी, कमरमें शोभा दे रही है और बाँसकी वंशीको हाथमें लेकर मुखसे लगाकर (सुरीली) ध्वनिसे बजा रहे हैं । मयूरपिच्छका मुकुट मस्तकपर शोभा दे रहा है। सूरदासजी कहते हैं कि हरिकी यह रहस्यमय गति सुनो—भक्तोंका वे भजन करते (उनसे प्रेम करते) हैं और अभक्तोंसे दूर हो जाते हैं ।

राग नट

[१०२]

हरि तन मोहिनी माई ।
अंग अंग अनंग सत सत, बरनि नहिं जाई ॥ १ ॥

---

१. सातवीं राशि, तुला—जोड़ी ।

२. बारहवीं राशि मीन—मछली ।

३. पृथ्वीमथी-पिता = पृथ्वीका दोहन करनेवाले आदिराज पृथुके पिता वेन या वेणु=बाँस ।

४. जलधितात तिहि नाम कंठ= (जल इसलिये नार कहा जाता है कि वह नरस्वरूप श्रीहरिसे उत्पन्न हुआ; वे नारायण जिसके कण्ठके समान—केकी-कण्ठाभनील कहे जाते हैं, वह)=मयूर ।

कोउ निरखि सिर मुकुट की छबि, सुरति बिसराई।
कोउ निरखि बिथुरी अलक मुख, अधिक सुख छाई ॥ २ ॥
कोउ निरखि रहि भाल चंदन, एक चित लाई।
कोउ निरखि बिथकी भ्रकुटि पै नैन ठहराई ॥ ३ ॥
कोउ निरखि रहि चारु लोचन, निमिष भरमाई।
सूर प्रभु की निरखि सोभा कहत नहिं आई ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—) 'सखी ! श्यामके शरीरमें कोई जादू है, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें सैकड़ों कामदेवोंकी छटा होनेसे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कोई मस्तकके मुकुटकी छटा देखकर अपने आपको भूल गयी है और कोई मुखपर बिखरी अलकोंको देखकर अत्यन्त आनन्दमें निमग्न है। कोई एकाग्रचित्तसे ललाटपर लगे चन्दनको देख रही है, (तो) कोई भृकुटिपर नेत्र स्थिर करके (उसे) देखती मुग्ध हो रही है । कोई अपलक नेत्रोंसे सुन्दर नेत्र देख रही है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी शोभा देखकर उसका वर्णन कोई कर नहीं सका है ।

राग गुंड मलार

[१०३]

स्याम सुख रासि, रस रासि भारी।
रूप की रासि, गुन रासि, जोबन रासि,
थकित भईँ निरखि नव तरुन नारी ॥ १ ॥
सील की रासि, जस रासि, आनँद रासि,
नील नव जलद छबि बरन कारी।
दया की रासि, बिद्या रासि, बल रासि,
निरदयाराति दनु कुल प्रहारी ॥ २ ॥
चतुरई रासि, छल रासि, कल रासि, हरि
भजै जिहि हेत तिहि दैनहारी।
सूर प्रभु स्याम सुख धाम पूरन काम,
बसन कटि पीत मुख मुरलि धारी ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—सखि !) श्यामसुन्दर सुखकी राशि हैं और रस (आनन्द) की भी महान् राशि हैं । वे रूपकी राशि हैं, गुणकी राशि हैं, युवावस्थाकी राशि हैं, उन्हें देखकर व्रजकी नवीन तरुणी (युवती) स्त्रियाँ थकित (मुग्ध) हो गयी हैं । वे शीलकी राशि हैं, यशकी राशि हैं, आनन्दकी राशि हैं; नवीन नीले मेघके समान उनका शोभामय वर्ण है । वे दयाकी राशि हैं, विद्याकी राशि हैं, बलकी राशि हैं; वे क्रूरके शत्रु तथा दानवोंके कुलको नष्ट करनेवाले हैं । वे चतुरताकी राशि हैं, छल (कौशल) की राशि हैं, कलाकी राशि हैं; जो उन श्रीहरिका जिसलिये भजन करता है, उसे वही देनेवाले हैं । सूरदासके स्वामी श्यामसुन्दर सुखके धाम तथा पूर्णकाम हैं, कमरमें पीताम्बर पहिने और मुखपर मुरली धारण किये हैं ।

राग बिहागरौ

[१०४]

सुंदर बोलत आवत बैन ।
ना जानौं तिहि समै सखी री, सब तन स्रवन कि नैन ॥ १ ॥
रोम रोम मैं सब्द सुरति की, नख सिख लौं चख ऐन ।
इते मान बानी चंचलता सुनी न समुझी सैन ॥ २ ॥
तब तकि जकि ह्वै रही चित्र सी, पल न लगत चित चैन ।
सुनौ सूर यह साँच कि संभ्रम, सुपन किधौं दिठ रैन ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—) अरी सखी ! जब मोहन सुन्दर वचन बोलते हुए आते हैं, तब पता नहीं लगता कि मेरे सारे शरीरमें कान हैं या नेत्र । उनके शब्द मेरे रोम-रोममें सुनायी देते हैं और (उन्हें देखनेके लिये) नखसे चोटीतक (पूरा देह) नेत्रोंका निवास बन जाता है । इतनेपर भी विश्वास कर, मैंने उनकी वाणीकी चपलता नहीं सुनी और न उनका संकेत ही समझ सकी । तभीसे चित्रकी भाँति स्तम्भित (ठिठकी)-सी हो रही हूँ और एक पल भी चित्तको शान्ति नहीं है,

सूरदासजी (तुम भी) सुनो—यह देखना-सुनना (मेरा) सच्चा है या भ्रम है, अथवा (मैंने मोहनका) रात्रिमें स्वप्न देखा है ।

राग मलार

[१०५]

नैना (माई) भूलैं अनत न जात ।
देखि सखी ! सोभा जु बनी है मोहन कैं मुसुकात ॥ १ ॥
दाड़िम दसन निकट नासा सुक, चौंच चलाइ न खात ।
मनु रतिनाथ हाथ भ्रुकुटी धनु, तिहि अवलोकि डरात ॥ २ ॥
बदन प्रभामय, चंचल लोचन, आनँद उर न समात ।
मानौ भौंह जुवा रथ जोतैं, ससि नचवत मृग मात ॥ ३ ॥
कुंचित केस, अधर धुनि मुरली सूरदास सुरसात ।
मनौ कमल पहँ कोकिल कूजत, अलिगन उपर उड़ात ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! (मेरे) नेत्र भूलकर भी अन्यत्र नहीं जाते (और कुछ नहीं देखना चाहते) । सखी ! मुस्कराते समय मोहनकी जो शोभा बनी है, उसे (तू भी) देख । अनार-दानोंके समान दाँतोंके पास नासिकारूप तोता है, जो चोंच बढ़ाकर (उन्हें) खा नहीं पा रहा है; (क्योंकि) मानो कामदेवके हाथोंमें जो भौंहरूप धनुष है, उसीको देखकर वह डर रहा है। कान्तिमय मुखमें चञ्चल नेत्रोंको देखकर हृदयमें आनन्द समाता नहीं । ऐसा लगता है मानो मुखरूपी रथके भौंहरूपी जुएमें जोतकर चन्द्रमा उन्मत्त (अनियन्त्रित नेत्ररूपी) मृगोंको नचा रहा हो । सूरदासजी कहते हैं—घुँघराले केश हैं, ओठोंसे सात स्वरवाली अत्यन्त रसमयी वंशीकी ध्वनि हो रही है मानो कमलके समीप (बैठी) कोकिल कूज रही हो और भौंरे ऊपर उड़ रहे हों ।

राग कान्हरो

[१०६]

स्याम कमल पद नख की सोभा ।
जे नख चंद इंद्र सिर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा ॥ १ ॥

जे नख चंद सनक मुनि ध्यावत नहिं पावत, भरमाहीं।
जे नख चंद प्रगट ब्रज जुवती निरखि निरखि हरषाहीं ॥ २ ॥
जे नख चंद फनिंद हृदय तैं एकौ निमिष न टारत।
जे नख चंद महामुनि नारद पलक न कहूँ बिसारत ॥ ३ ॥
जे नख चंद भजन खल नासत, रमा हृदय जे परसति।
सूर स्याम नख चंद बिमल छबि गोपी जन मिलि दरसति ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) श्यामके (उन) चरण-कमलोंके नखोंकी कैसी (अवर्णनीय) शोभा है, जिन नखचन्द्रोंका इन्द्रने मस्तकसे स्पर्श किया तथा शंकर और ब्रह्माका मन भी जिनपर लुब्ध रहता है। जिन नख-चन्द्रोंको सनकादि मुनि ध्यान करते हुए भी पाते नहीं—संदेहमें ही पड़े रहते हैं (कि ध्यानमें वे कभी आयेंगे भी या नहीं), जिन नखचन्द्रोंको व्रजकी युवतियाँ प्रत्यक्ष देख-देखकर हर्षित होती हैं, जिन नखचन्द्रोंको शेषजी अपने हृदयसे एक पलके लिये भी नहीं हटाते, जिन नखचन्द्रोंको महामुनि नारद (हृदयसे) एक क्षणके लिये भी कभी नहीं भुलाते, जिन नखचन्द्रोंका भजन दुष्टों (कामादि दोषों) को नष्ट कर देता है और जो लक्ष्मीजीके हृदयका स्पर्श करते (लक्ष्मी जिन्हें हृदयपर धारण करती) हैं, सूरदासजी कहते हैं कि श्यामके उन्हीं नखचन्द्रोंकी निर्मल शोभा (सब) गोपियाँ एकत्र होकर देखती हैं।

राग आसावरी

[१०७]

स्याम हृदय जलसुत की माला,
अतिहिं अनूपम छाजै (री)।
मनौ बलाक पाँति नव घन पै,
यह उपमा कछु भ्राजै (री) ॥ १ ॥
पीत, हरित, सित, अरुन माल बन
राजति हृदय बिसाल (री)।

मानौ इंद्र धनुष नभ मंडल
प्रगट भयौ तिहिं काल (री) ॥ २ ॥
भृगु पद चिह्न उरस्थल प्रगटे,
कौस्तुभ मनि ढिंग दरसत (री)।
बैठे मानौ षट बिधु इक सँग,
अर्द्ध निसा मिलि हरषत (री) ॥ ३ ॥
भुजा बिसाल स्याम सुंदर की,
चंदन खौरि चढ़ाए (री)।
सूर सुभग अँग अँग की सोभा
ब्रज ललना ललचाए (री) ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी! श्यामसुन्दरके वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला बड़ी ही अनुपम छटा दे रही है। मानो नवीन मेघपर बगुलोंकी पंक्ति हो, यही उपमा कुछ फबती है। पीले, हरे, श्वेत, लाल पुष्पोंकी वनमाला विशाल वक्षःस्थलपर (ऐसी) शोभित है, मानो इसी समय आकाशमण्डलमें इन्द्रधनुष प्रकट हुआ हो। वक्षःस्थलपर (पाँचों अँगुलियोंसे युक्त) भृगुका चरण-चिह्न और पास ही कौस्तुभमणि दीख रहे हैं, मानो छः चन्द्रमा मिलकर अर्धरात्रिमें एक साथ बैठे प्रसन्न हो रहे (चमक रहे) हों। श्यामसुन्दरकी विशाल (लंबी) भुजाओंपर चन्दनका लेप लगा है। सूरदासजी कहते हैं कि अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभासे व्रजकी स्त्रियोंको (उन्होंने) ललचा दिया—मुग्ध कर लिया है।

राग मलार

[१०८]

निरखि सखि! सुंदरता की सींवा।
अधर अनूप मुरलिका राजति, लटकि रहति अध ग्रीवा ॥ १ ॥
मंद मंद सुर पूरत मोहन, राग मलार बजावत।
कबहूँ रीझि मुरलि पै गिरिधर आपुहिं रस भरि गावत ॥ २ ॥

हँसत लसत दसनावलि पंगति, ब्रज बनिता मन मोहत।
मरकत मनि पुट बिच मुकुताहल, बँदन भरे मनु सोहत ॥ ३ ॥
मुख बिकसत सोभा इक आवति, मनु राजीव प्रकास।
सूर अरुन आगमन देखि कैं प्रफुलित भए हुलास ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! सुन्दरताकी सीमा देख ! अनुपम ओठोंपर वंशी शोभा दे रही है, (जिससे) कण्ठ आधा झुका हुआ है। मन्द कोमल स्वर भरकर मोहन मलार राग बजाते और कभी वे गिरिधारी मुरलीपर रीझकर अपने-आप आनन्दसे उमंगमें आकर गाते हैं। हँसते समय दाँतोंकी पंक्तियाँ जो शोभा देती हैं, वह व्रजनारियोंके मनको मोह लेती है। (उस समय आपके दाँतोंकी शोभा ऐसी लगती है) मानो नीलम (मरकत) मणिके डिब्बेमें सिन्दूर-भरे मोती शोभा दे रहे हों। मुखके खिलनेपर एक ऐसी शोभा बन आती है, जैसे वह खिला कमल हो। सूरदासजी कहते हैं— (मुझे वह खिला कमल ऐसा ज्ञात हुआ कि) अरुणोदयको आता देखकर उल्लाससे प्रफुल्लित हो उठा हो।

राग टोड़ी

[१०९]

गोपी जन हरि बदन निहारति।
कुंचित अलक बिथुरि रहिं भ्रुव पै, ता पै तन मन वारति ॥ १ ॥
बदन सुधा सरसीरुह लोचन, भृकुटी दोउ रखवारी।
मनौ मधुप मधु पानै आवत देखि डरत जियँ भारी ॥ २ ॥
इक इक अलक लटकि लोचन पै, यह उपमा इक आवति।
मनौ पन्नगिनि उतरि गगन तैं दल पर फन परसावति ॥ ३ ॥
मुरली अधर धरैं कल पूरत, मंद मंद सुर गावत।
सूर स्याम नागरि नारिनि के, चंचल चितै चुरावत ॥ ४ ॥

गोपियाँ हरिका मुख देख रही हैं। घुँघराली अलकें भौंहोंपर बिखर रही हैं, उनकी उस शोभापर वे अपना तन-मन न्योछावर कर रही हैं। अमृतपूर्ण मुखके

दोनों नेत्र-कमलोंकी दोनों भौंहें (इस प्रकार) रक्षा कर रही हैं, मानो भौंरे मधुपान करनेके लिये आते हुए उन्हें देखकर मनमें अत्यन्त डर रहे हों । नेत्रोंपर लटकी हुई एक-एक अलककी यह एक उपमा सूझती है, मानो आकाशसे उतरकर नागिनें कमलदलका (अपने) फणसे स्पर्श कर रही हों । ओठपर वंशी रखे उसे सुन्दर ध्वनिसे पूर्ण कर रहे हैं और मन्द-मन्द स्वरमें गा रहे हैं । सूरदासजी कहते हैं कि (इस प्रकार) श्यामसुन्दर चतुर स्त्रियोंके चञ्चल चित्तको चुरा रहे हैं ।

राग बिलावल

[११०]

देखि सखी! यह सुंदरताई।
चपल नैन बिच चारु नासिका,
इकटक दृष्टि रही तहँ लाई॥ १॥
करति बिचार परसपर जुवतीं,
उपमा आनति बुद्धि बनाई।
मानौ खंजन बिच सुक बैठ्यौ,
यह कहि कैं मन जाति लजाई॥ २॥
कछु इक तिल प्रसून की आभा,
मन मधुकर तहँ रह्यौ लुभाई।
सूर स्याम नासिका मनोहर,
यह सुंदरता उन कहँ पाई॥ ३॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! यह सुन्दरता देख ! चञ्चल नेत्रोंके मध्यमें सुन्दर नाक है, एकटक (अपलक) नेत्र (वहाँ) लगे रह जाते हैं । (उसे देखकर) व्रजयुवतियाँ परस्पर विचार कर और बुद्धि लगाकर यह उपमा देती हैं कि 'मानो दो खञ्जनोंके बीचमें तोता बैठा हो' तथा यह कहकर मनमें लज्जित हो जाती हैं (कि उपमा ठीक नहीं बनी)। कुछ-कुछ तिलके पुष्पकी कान्तिवाली (नासिका) पर मनरूपी भौंरा

लुब्ध होकर रह जाता है। सूरदासजी कहते हैं—किंतु श्यामसुन्दरकी नासिका इतनी मनोहर है कि उसकी सुंदरताको तिल-प्रसून कहाँ पा सके अर्थात् नहीं पा सके हैं।

राग रामकली

[१११]

मनोहर है नैननि की भाँति।
मानौ दूरि करत बल अपने सरद कमल की काँति ॥ १ ॥
इंदीवर राजीव कुसेसय जीते सब गुन जाति।
अति आनंद सुप्रौढ़ा तातैं बिकसत दिन औ राति ॥ २ ॥
खंजरीट, मृग, मीन बिचारे उपमा कौं अकुलाति।
चंचल चारु चपल अवलोकन चितै न एक समाति ॥ ३ ॥
जब कहुँ परत निमेषै अंतर, जुग समान पल जाति।
सूरदास वह रसिक राधिका निमि पै अति अनखाति ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) (श्यामके) नेत्रोंकी छटा ऐसी मनोहारिणी है, मानो अपने बलसे वह शारदीय कमलकी कान्तिको भी दूर (तिरस्कृत) करती हो। नील, लाल और श्वेत कमलोंके सभी गुण एक क्षणमें उसने जीत लिये हैं। वे अत्यन्त आनन्दमय तथा शक्तिशाली हैं, इसलिये (वे नेत्रकमल) दिन-रात प्रफुल्लित रहते हैं। विचारे (तुच्छ) खञ्जन, मृग, मछली (आपके नेत्रोंकी) उपमा पानेको अकुलाते—व्याकुल होते हैं (किंतु वे इनकी तुलना कर नहीं सकते)। (इन-जैसी) चञ्चलता और मनोहर चपलतापूर्ण देखनेकी छटाका विचार करनेपर (इनमेंसे) एक भी उपमा चित्तमें (तुलना-योग्य) नहीं जँचती। जब कभी इनको देखनेमें एक निमेषका भी अन्तर पड़ जाता है, तब वह पल युगके समान बीतता है। सूरदासजी कहते हैं, वे रसमयी श्रीराधा इसीलिये (पलकोंके संचालक देवता) निमिपर अत्यन्त रोष (क्रोध) करती हैं (कि वे पलक गिराकर मोहनकी शोभा देखनेमें बाधा डालते हैं)।

[११२]

आजु सखि ! देखे स्याम नए (री) ।
निकसे आनि अचानक अबहीं, इत फिरि फिरि चितए (री) ॥१॥
मैं तब तैं पछिताति यहै, तन नैन न बहुत भए (री) ।
जौ बिधना इतनी जानत है, कित दृग दोइ दए (री) ॥२॥
सब दै लेउँ लाख लोचन, कहुँ जो कोउ करत नए (री) ।
हरि प्रति अंग बिलोकन कौं मैं प्रन करि कैं पठए (री) ॥३॥
अपने चौंप बहुत कहँ पइऐ, ए हरि संग गए (री) ।
थके चरन सुनि सूर मनौ गुन मदन बान बिधए (री) ॥४॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! आज नवीन श्याम देखे, जो अभी अचानक इधर आ निकले और (उन्होंने) मेरी ओर बार-बार देखा । तभीसे मैं यही पश्चात्ताप कर रही हूँ कि (आज उन्हें देखनेके लिये मेरे) शरीरमें बहुत-से नेत्र (क्यों) न हुए; जब ब्रह्मा यह जानता था (कि मुझे मोहनका दर्शन होना है) तो उसने दो ही आँखें क्यों दीं । यदि कोई नवीन बना सके तो मैं अपना सर्वस्व देकर लाख नेत्र ले लूँ । श्यामके अङ्ग-प्रत्यङ्गको देखनेके लिये मैंने प्रण करके (दृढ़ निश्चय करके कि पूरा श्रीअङ्ग देख लूँगी) मैंने इनको उस ओर भेजा, किंतु अपनी इच्छा (चाह) होनेपर भी बहुत-से नेत्र कहाँसे मिलें, (गाँठके) दोनों भी हरिके साथ चले गये । सूरदासजी कहते हैं—उनके गुण सुनकर चरण (ऐसे) थकित (ठिठके) रह गये, मानो कामदेवके बाणसे बिंधे हों ।

राग गूजरी

[११३]

देखि री, हरि के चंचल नैन ।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर इक सैन ॥ १ ॥

राजिव दल, इंदीवर सतदल कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे विकसित, ए विकसित दिन राति ॥ २ ॥
अरुन, सेत, सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति, गंगा, जमुना मिलि आस्रम कीन्हौ आइ ॥ ३ ॥
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठैराइ।
सूर स्याम लोचन अपार छवि उपमा सुनि सरमाइ ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) अरी ! हरिके चञ्चल नेत्र देख, जिनके एक संकेतकी भी तुलनाके योग्य खञ्जन, मछली तथा मृगशावककी चपलता नहीं है। लाल कमल, नील कमल, सौ दलोंका कमल, श्वेत कमल आदि जितनी भी जातियोंके कमल हैं, वे रात्रिमें बंद रहते हैं, सबेरे ही खिलते हैं; किंतु वे हरिके (नेत्र-कमल तो) रात-दिन खिले रहते हैं। प्रत्येक बार पलक उठाते समय (आपके नेत्रोंमें) जो अरुण-सित-सेत* झलक दिखायी देती है, उसे उपमा देकर वर्णन कौन करे। ऐसा लगता है, मानो सरस्वती, गङ्गा और यमुनाने (यहाँ) एकत्र होकर निवास बना लिया हो। देखनेकी भङ्गी अत्यन्त तीव्र जलधारा है, वहाँ मन स्थिर नहीं रह पाता। सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरके नेत्रोंकी शोभा अपार है, उन्हें जो भी उपमा दी जाय वह अपनी चर्चा सुनकर स्वयं लजा जाती है (कि कहाँ यह और कहाँ मैं)।

राग सोरठ

[११४]

देखि सखी ! मोहन मन चोरत।
नैन कटाच्छ बिलोकनि मधुरी, सुभग भृकुटि बिबि मोरत ॥ १ ॥
चंदन खौर ललाट स्याम कैं, निरखत अति सुखदाई।
मनौ एक सँग गंग जमुन नभ, तिरछी धार बहाई ॥ २ ॥

---

* 'सित' शब्दका अर्थ श्वेत होता है; किंतु यहाँ यह 'शिति'का अपभ्रंश है, अतः इसका अर्थ काला या नीला होगा। प्रसङ्गके अनुसार 'सित' शब्द 'श्वेत' के साथ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार उपस्थित करता है।

मलयज भाल, भ्रकुटि रेखा की कबि उपमा इक पाई।
मानौ अर्धचंद तट अहिनी सुधा चुरावन आई ॥ ३ ॥
भ्रकुटी चारु निरखि ब्रज सुंदरि यह मन करति बिचार।
सूरदास प्रभु सोभा सागर, कोउ न पावत पार ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी! देख, नेत्रोंसे कटाक्षपूर्वक देखनेकी मनोहरतासे और सुन्दर दोनों भौंहोंको मोड़ते हुए मोहन चित्तको चुरा रहे हैं। श्यामके ललाटपर चन्दनकी खौर देखनेमें अत्यन्त सुखदायक है; (वह ऐसी लगती है) मानो गङ्गा-यमुनाने आकाशमें एक साथ अपनी तिरछी धारा बहायी हो। ललाटपर लगे चन्दन तथा भौंहोंके बीच काली रेखाकी कविने एक उपमा पायी है—(ऐसा लगता है) मानो आधे चन्द्रमाके पास सर्पिणी अमृतकी चोरी करने आयी हो। सुन्दर भौंहोंको देखकर व्रजकी सुन्दरियाँ इस प्रकार अपने मनमें विचार करती हैं कि सूरदासके स्वामी तो शोभाके समुद्र हैं, उसका पार कोई नहीं पा सकता।

राग रामकली

[११९]

देखि री, देखि कुंडल लोल।
चारु श्रवनन ग्रहन कीन्हें, झलक ललित कपोल ॥ १ ॥
बदन मंडल सुधा सरबर, निरखि मन भयौ भोर।
मकर क्रीड़त गुप्त परगट, रूप जल झकझोर ॥ २ ॥
नैन मीन, भुवंगिनी भ्रुव, नासिका थल बीच।
सरस मृगमद तिलक सोभा लसति है लगि कीच ॥ ३ ॥
मुख बिकास सरोज मानौ जुवति लोचन भृंग।
बिथुरि अलकैं, परी मानौ प्रेम लहरि तरंग ॥ ४ ॥
स्याम तनु छबि अमृत पूरन, रच्यौ काम तड़ाग।
सूर प्रभु की निरखि सोभा व्रज तरुनि बड़भाग ॥ ५ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! (प्यारेके) चञ्चल कुण्डलोंको देख, (जिनकी) सुन्दर झलक कानोंमें पहिननेसे मनोहर कपोलोंपर पड़ रही है। मुखमण्डल अमृतका सरोवर है, जिसे देखकर मन विमुग्ध हो गया है; (उस अमृत-सरोवरमें) छिपते और प्रत्यक्ष होते (मकराकृत कुण्डलरूप) मगर रूपजलको हलोर दे-दे खेल रहे हैं। नेत्र मछलियाँ हैं, भौंहें नागिनें हैं और नासिका बीचका स्थल है; (वहाँ) रसमय कस्तूरीके तिलककी शोभा कीचड़ लगी-जैसी सुशोभित हो रही है। मुख मानो प्रफुल्लित कमल है, जिसपर व्रजयुवतियोंके नेत्ररूपी भौंरे लगे रहते हैं। बिखरी पड़ी अलकें ऐसी लगती हैं, मानो प्रेम-हिलोरोंकी तरङ्गें हों। श्यामसुन्दरके शरीरकी शोभाको कामदेवने अमृतपूर्ण सरोवर (-जैसा) बनाया है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामीकी शोभा देखकर व्रजकी तरुणियाँ अपनेको महान् भाग्यशालिनी (मानती) हैं।

राग धनाश्री

[११६]

हरि मुख निरखति नागरि नारि।
कमल नैन के कमल बदन पै बारिज डारिय वारि ॥ १ ॥
सुमति सुंदरी सरस पिया रस लंपट माँड़ी आरि।
हरि जोहारि जु करत बसीठी, प्रथमै प्रथम चिन्हारि ॥ २ ॥
राखति ओट कोटि जतनन करि झाँपति अंचल झारि।
खंजन मनौ उड़न कौं आतुर सकत न पंख पसारि ॥ ३ ॥
देखि सरूप स्याम सुंदर कौ, रही न पलक सम्हारि।
देखौ सूरज अधिक सूर तन अजौं न मानी हारि ॥ ४ ॥

(व्रजकी) चतुर स्त्रियाँ श्यामके मुखको निहारती हैं और कहती हैं कि इन कमललोचनके कमल-मुखपर कमलोंको न्योछावर कर दिया जाय। (इधर) ये उत्तम बुद्धिवाली सुन्दरियाँ हैं और (उधर) वे रसीले प्रियतम (मोहन) रसके लोभी हैं, अतः दोनोंने झगड़ा ठान रखा है, पहिले-पहिले पहिचान करनेके लिये श्यामसुन्दर प्रणाम करते स्वयं

(परिचय देते) दूतका काम कर रहे हैं। (उधर गोपी) अनेक प्रयत्न करके अपने नेत्रोंको आड़में रखती है, अञ्चल झाड़ (खींचकर घूँघटसे) उन्हें (कुछ इस भाँति) ढकती है, मानो (नेत्ररूपी) खञ्जन उड़नेको आकुल होकर भी पंख नहीं फैला पाते हों। (वह गोपी) श्यामसुन्दरके स्वरूपको देखकर पलक मारना भूल गयी। सूरदासजी कहते हैं, देखो तो इतनेपर भी उसमें अत्यधिक शूरता है, जिससे वह अब भी हार नहीं मानती (नेत्रोंको रोकनेके प्रयत्नमें अभी भी लगी है)।

[११७]

हरि मुख किधौं मोहिनी माई।
बोलत बचन मंत्र सौ लागत, गति मति जाति भुलाई॥१॥
कुटिल अलक राजति भ्रुव ऊपर जहाँ तहाँ बगराई।
स्याम फाँसि मन करष्यौ हमरौ, अब समुझी चतुराई॥२॥
कुंडल ललित कपोलन झलकत, इन की गति मैं पाई।
सूर स्याम जुबती मन मोहन ऐ सँग करत सहाई॥३॥

(गोपी कह रही है—) सखी! श्यामका मुख है अथवा मोहिनी? ये जब (उस मुखसे) कुछ बोलते हैं, तब (उनके) शब्द मन्त्रकी भाँति लगते (प्रभाव करते) हैं, (जिसके कारण) सारी गति (क्रियाशक्ति) और बुद्धि (विचारशक्ति) भूल जाती है। भौंहोंके ऊपर जहाँ-तहाँ बिखरी घुँघराली अलकें शोभा दे रही हैं, इन्हींमें फँसाकर श्यामने हमारा मन खींच लिया है, इनकी चतुरता अब मैंने समझी। मनोहर कपोलोंपर कुण्डल झलक रहे (आभा डाल रहे) हैं, इनका भेद भी मैं पा गयी। सूरदासजी कहते हैं कि ये युवतियोंका मन मोहित करनेवाले श्यामसुन्दरके साथ रहकर उनकी सहायता करते हैं।

राग नट

[११८]

निरखत रूप नागरि नारि।
मुकुट पै मन अटकि लटक्यौ, जात नहिं निरवारि॥१॥

स्याम तन की झलक आभा चंद्रिका झलकाइ।
बार बार बिलोकि थकि रहिं, नैन नहिं ठहराइ॥ २॥
स्याम मरकत मनि महानग सिखा निरतत मोर।
देखि जलधर हरष उर मैं, नाहिं आनँद थोर॥ ३॥
कोउ कहति सुर चाप मानौ गगन भयौ प्रकास।
थकित ब्रज ललना जहाँ तहँ, हरष कबहुँ उदास॥ ४॥
निरखि जो जिहिं अंग राँची, तहीं रही भुलाइ।
सूर प्रभु गुन रासि सोभा रसिक जन सुखदाइ॥ ५॥

चतुर नारियाँ (मोहनका) रूप देख रही हैं। (उनका) मन मुकुटपर अटककर वहीं लटक गया (स्थिर हो गया), अब वहाँसे छुड़ाये नहीं छूटता। श्यामके शरीरकी झलक (प्रकाश) में चन्द्रिकाकी आभा प्रति-बिम्बित हो रही है, जिसे बार-बार देखकर वे मुग्ध हो रही हैं; किंतु नेत्र वहाँ (चकाचौंधके मारे) स्थिर नहीं होते। श्यामसुन्दर मरकत मणिके बड़े पर्वत हैं और उनके मस्तकपर पिच्छके रूपमें मानो मोर नाच रहा है, जिसे देखकर जलधर (बादल)के हृदयमें आनन्दकी सीमा नहीं है, अत्यन्त हर्ष है। (श्यामसुन्दरको इस भाँति देखकर) कोई गोपी कहती है—मानो यह इन्द्रधनुष आकाशमें प्रकट हुआ है। व्रजकी स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ (स्थान-स्थानपर) मुग्ध खड़ी, कभी (मोहनके पास आनेपर) हर्षित और कभी (दूर जानेपर) उदास हो जाती हैं। जिसने जिस अङ्गको देखा, वह वहीं अनुरक्त होकर आत्मविस्मृत हो रही। सूरदासजी कहते हैं—मेरे प्रभु गुणों एवं शोभाकी राशि हैं और रसिकजनोंको सुख देनेवाले हैं।

राग बिहागरौ

[११९]

देखि री, देखि सोभा रासि।
काम पटतर कहा दीजै, रमा जिन की दासि॥ १॥

मुकुट सीस सिखंड सोहै, निरखि रहिं व्रज नारि।
कोटि सुर कोदंड आभा झिरकि डारैं वारि॥ २॥
केस कुंचित विथुरि भ्रुव पै बीच सोभा भाल।
मनौ चंदै अबल जान्यौ, राहु घेर्‍यौ जाल॥ ३॥
चारु कुंडल सुभग स्रवनन को सकै उपमाइ।
कोटि कोटि कला तरनि छबि, देखि तन भरमाइ॥ ४॥
सुभग मुख पै चारु लोचन, नासिका इहि भाँति।
मनौ खंजन बीच सुक मिलि बैठे हैं इक पाँति॥ ५॥
सुभग नासा तर अधर छबि रस धरैं अरुनाइ।
मनौ बिंब निहारि सुक भ्रुव धनुष देखि डराइ॥ ६॥
हँसत दसनन चमकताईं, बज्र कन रचि पाँति।
दामिनी, दारिम नहीं सरि कियौ, मन अति भ्राँति॥ ७॥
चिबुक बर चित बित चुरावत, नवल नंद किसोर।
सूर प्रभु की निरखि सोभा भईं तरुनी भोर॥ ८॥

(गोपी कह रही है—) 'सखी ! इस शोभाराशिको देख, उनकी तुलना कामदेवसे किस प्रकार की जाय, जिनकी लक्ष्मी सेविका है !' मस्तकपर मयूर-पिच्छका मुकुट शोभित है, जिसे व्रजकी स्त्रियाँ देख रही हैं और करोड़ों इन्द्रधनुषकी कान्तिको भी तिरस्कार करती (उनपर) न्योछावर कर फेंक रही हैं। भौंहोंतक बिखरे हुए घुँघराले केश ललाटके मध्यमें ऐसे शोभित हैं, मानो चन्द्रमाको निर्बल समझकर (पकड़नेके लिये) राहुने जालसे घेर लिया हो। मनोहर कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं, उनकी उपमा कौन दे सकता है। करोड़ों-करोड़ों सूर्योंकी कला और शोभा भी उन (कुण्डलों)को देखकर भ्रममें पड़ जाती है। सुन्दर मुखपर मनोहर नेत्र एवं नासिका इस प्रकार फब रही है, मानो दो खञ्जनोंके मध्य तोता मिलकर एक पंक्तिमें बैठा हो। मनोहर नासिकाके नीचे सरस अरुणिमा लिये ओठोंकी ऐसी छटा है, मानो बिम्बफलको देखकर तोता उसे लेना चाहता हो, किंतु (पासमें ही) भौंहरूपी धनुष देखकर डर रहा हो। हँसते समय दाँत

ऐसे चमकते हैं, मानो हीरेके कणोंकी पंक्ति हों। विद्युत् और अनारके दाने भी उनकी तुलनामें नहीं ठहरते, प्रत्युत मनमें अत्यन्त भ्रान्त हो जाते हैं। नवल नन्दकिशोरकी श्रेष्ठ ठुड्डी चित्तरूपी धनको चुरा लेती है। सूरदासजी कहते हैं, मेरे स्वामीकी शोभा देखकर व्रज-तरुणियाँ प्रेममें विभोर हो गयीं।

राग सोरठ

[१२०]

तन मन नारि डारति वारि।
स्याम सोभा सिंधु जान्यौ अंग अंग निहारि ॥ १ ॥
पचि रहीं मन ग्यान करि करि लहति नाहिन तीर।
स्याम तन जल रासि पूरन, महा गुन गंभीर ॥ २ ॥
पीतपट फहरानि, मानौ लहरि उठति अपार।
निरखि छबि थकि तीर बैठीं, कहूँ वार न पार ॥ ३ ॥
चलत अंग त्रिभंग करि कैं, भौंह भाव चलाइ।
मनौ बिच बिच भँवर डोलत, चित परत भरमाइ ॥ ४ ॥
स्रवन कुंडल मकर मानौ, नैन मीन बिसाल।
सलिल झलकनि रूप आभा, देखि री नँदलाल ॥ ५ ॥
बाहु दंड भुजंग मानौ जलधि मध्य बिहार।
मुक्त माला मनौ सुरसरि ह्वै चली द्वै धार ॥ ६ ॥
अंग अँग भूषन बिराजत, कनक मुकुट प्रभास।
उदधि मथि मनु प्रगट कीन्हौ श्री सुधा परगास ॥ ७ ॥
चकित भईं तिय निरखि सोभा देह गति बिसराइ।
सूर प्रभु छबि रासि नागर, जानि जाननिराइ ॥ ८ ॥

(व्रजकी) नारियाँ (मोहनपर अपना) तन-मन न्योछावर कर देती हैं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग निहारकर उन्होंने समझ लिया कि श्याम शोभाके समुद्र हैं। चित्तमें उपाय सोच-सोचकर वे हार गयीं; किंतु (उसका) किनारा नहीं पाती हैं; (क्योंकि) श्यामका शरीर महान् गुणसमूहरूपी गम्भीर जल-

राशिसे परिपूर्ण है । पीताम्बरका फहराना क्या है, मानो श्याम-शोभा-सिन्धुमें अपार लहरें उठ रही हों । इस शोभाको देख वे हारकर किनारे बैठ गयीं; (क्योंकि) इसका तो कहीं वार-पार (तट) उन्हें नहीं दीख पड़ता । मन-मोहन अङ्गोंको त्रिभङ्ग बनाकर (तिरछे झुककर) चलते हुए (जब) भौंहोंको भावसे चलाते (मटकाते) हैं, तब मानो (ऐसा लगता है कि उस शोभासागरके) बीच-बीचमें भँवर पड़ रहे हों, जिनमें चित्त भ्रममें पड़ जाता (मुग्ध होकर डूब जाता) है । कानोंके कुण्डल मानो (उस शोभा-सागरके) मगर हैं, नेत्र बड़े-बड़े मत्स्य हैं, रूपकी जो कान्ति झलक रही है, वही जल है । ऐसे नन्दलालको सखी ! देख । दोनों भुजदण्ड मानो सर्प हैं, जो (उस शोभा-) समुद्रके बीचमें क्रीड़ा कर रहे हैं और मोतियोंकी माला मानो गङ्गाजी हैं, जो दो धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हो चली हैं । अङ्ग-प्रत्यङ्गमें आभूषण शोभित हैं, स्वर्णका मुकुट प्रकाशित हो रहा है, मानो समुद्रका मन्थन करके लक्ष्मी और अमृतका प्रकाश प्रकट कर दिया गया हो । (व्रज-) नारियाँ इस शोभाको देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं; यहाँतक कि वे अपने शरीरकी दशा भी भूल गयीं । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी शोभाकी राशि हैं, परम चतुर हैं, उन्हें भाव समझनेवालोंका स्वामी जानना चाहिये ।

राग सारंग

[१२१]

बैठी कहा, मदन मोहन कौ सुंदर बदन बिलोकि ।
जा कारन घूँघट पट अब लौं अँखियाँ राखीं रोकि ॥ १ ॥
फबि रहि मोर चंद्रिका माथें, छबि की उठति तरंग ।
मनौ अमर पति धनुष बिराजत नव जलधर के संग ॥ २ ॥
रुचिर चारु कमनीय भाल पै कुंकुम तिलक दिएँ ।
मानौ अखिल भुवन की सोभा राजति उदै किएँ ॥ ३ ॥
मनिमै जटित लोल कुंडल की आभा झलकति गंड ।
मनौ कमल ऊपर दिनकर की पसरीं किरन प्रचंड ॥ ४ ॥

भ्रकुटी कुटिल निकट नैननि के चपल होति इहि भाँति।
मनौ तामरस के सँग खेलत बाल भृंग की पाँति ॥ ५ ॥
कोमल स्याम कुटिल अलकावलि ललित कपोलन तीर।
मनौ सुभग इंदीवर ऊपर मधुपनि की अति भीर ॥ ६ ॥
अरुन अधर नासिका निकाई वदत परसपर होड़।
सूर सुमनसा भई पाँगुरी निरखि डगमगे गोड़ ॥ ७ ॥

(गोपी कह रही है--) 'सखी ! बैठी क्या हो, मदनमोहनका सुन्दर मुख देखो, जिसके लिये अपने नेत्रोंको घूँघटके वस्त्रसे (तुमने) रोक रखा था (कि उसे छोड़कर और किसीको नहीं देखना है)। मयूर-पिच्छकी चन्द्रिका मस्तकपर छटा दे रही है (और) उससे सौन्दर्यकी तरंगें (ऐसी) उठ रही हैं, मानो इन्द्रधनुष नवीन मेघके साथ शोभा दे रहा हो। मनोहर ललाटपर कुङ्कुमका अत्यन्त सुन्दर तिलक लगाये हैं, (वह ऐसा लगता है) मानो समस्त लोकोंकी सुन्दरता प्रकट होकर सुशोभित हो। मणिजटित चञ्चल कुण्डलोंकी कान्ति गण्डस्थलपर (ऐसी) झलक रही है, मानो कमलके ऊपर सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें फैली हों। नेत्रोंके पास टेढ़ी भौंहें इस प्रकार चञ्चल होती हैं, मानो भौंरोंके बच्चोंकी पंक्ति कमलके साथ खेल रही हो। मनोहर कपोलोंके पास (जो) कोमल काली घुँघराली अलकें हैं, मानो सुन्दर नील कमलपर भौंरोंकी अत्यन्त भीड़ हो। लाल-लाल ओठ और नासिकाकी सुन्दरता परस्पर होड़ बद रही हैं (कि हम दोनोंमें कौन सुन्दर है)। सूरदासजी कहते हैं कि मोहनको देखकर मनकी गति अत्यन्त पङ्गु (स्थिर) हो गयी और पैर डगमगाने लगे।

राग नट नारायन

[१२२]

सजनी, निरखि हरि कौ रूप।
मनसि बचसि बिचारि देखौ अंग अंग अनूप ॥ १ ॥
कुटिल केस सुदेस अलिगन, बदन सरद सरोज।
मकर कुंडल किरन की छबि, दुरत फिरत मनोज ॥ २ ॥

अरुन अधर, कपोल, नासा, सुभग ईषद हास ।
दसन की दुति तड़ित, नव ससि, भ्रुकुटि मदन बिलास ॥ ३ ॥
अंग अंग अनंग जीते, रुचिर उर बनमाल ।
सूर सोभा हृदे पूरन देत सुख गोपाल ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) 'सखी ! हरिका रूप निहार तथा मन और वाणीसे विचार करके देख कि इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी छटा निराली है । सुन्दर घुँघराले केश भौंरोंके समान हैं, मुख शरद् ऋतुके कमलकी भाँति है और मकराकृत कुण्डलोंकी ज्योति-रेखाकी शोभा देखकर कामदेव भी (लज्जासे) छिपता फिरता है । लाल-लाल ओठ हैं, कपोल, नासिका एवं मन्द-मन्द मुस्कान बड़ी सुन्दर है । दाँतोंकी कान्ति विद्युत् या द्वितीयाके चन्द्रमाकी भाँति है और भौंहें तो कामदेवकी (साक्षात्) क्रीड़ा हैं । अङ्ग-प्रत्यङ्गने कामदेवको जीत लिया है, सुन्दर वक्षःस्थलपर वनमाला है । सूरदासजी कहते हैं कि गोपाल अपनी शोभासे हृदयको पूर्ण आनन्द दे रहे हैं ।

राग नट

[१२३]

नैननि ध्यान नंदकुमार ।
सीस मुकुट सिखंड भ्राजत, नाहिं उपमा पार ॥ १ ॥
कुटिल केस सुदेस राजत, मनौ मधुकर जाल ।
रुचिर केसर तिलक दीन्हें, परम सोभा भाल ॥ २ ॥
भृकुटि बंकट, चारु लोचन, रहीं जुवती देखि ।
मनौ खंजन चाप डर डरि उड़त नहिं तिहि पेखि ॥ ३ ॥
मकर कुंडल गंड झलमल निरखि लज्जित काम ।
नासिका छबि कीर लज्जित, कबिन बरनत नाम ॥ ४ ॥
अधर बिद्रुम, दसन दाड़िम, चिबुक है चितचोर ।
सूर प्रभु मुख चंद पूरन, नारि नैन चकोर ॥ ५ ॥

(सखी कहती है—) नेत्रोंमें नन्दकुमारका (यह) ध्यान है—(उनके) मस्तकपर मयूर-पिच्छका मुकुट शोभा दे रहा है, जिसकी उपमा कहीं नहीं है। घुँघराले केश मनोहर रूपमें ऐसे शोभा देते हैं मानो भौंरोंका झुंड हो। सुन्दर केसरका तिलक लगाये हैं, जिससे ललाटकी बड़ी शोभा हो रही है। टेढ़ी भौंहें हैं, सुन्दर नेत्र हैं, जिन्हें (व्रजकी) युवतियाँ देख रही हैं, मानो (नेत्ररूपी) खञ्जन (भौंह-रूप) धनुषको देखकर उसके भयसे भयभीत हुए उड़ते नहीं हों। मकराकृत कुण्डल गण्डस्थलपर झलमला रहे हैं, जिन्हें देखकर काम (भी) लजा जाता है; नाककी शोभा देखकर तोता (भी) लज्जित होता है कि (मैं इतना सुन्दर कहाँ हूँ), जो कविगण मेरा नाम लेकर इसकी उपमाका वर्णन करते हैं। ओठ मूँगेके समान तथा दाँत अनारके दानोंकी भाँति हैं और ठुड्डी तो चित्तको चुराये लेती है। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीका मुख पूर्णिमाका चन्द्रमा है, (और व्रजकी) स्त्रियोंके नेत्र चकोर हैं।

राग केदारौ

[१२४]

प्यारे नँदलाल हो। मोही तेरी चाल हो॥
मोर मुकुट डोलनि, मुख मुरली कल मंद।
मनु तमाल सिखा सिखी नाचत आनंद॥ १॥
मकराकृत कुंडल छबि, राजत सुकपोल।
ईषद मुसुकानि बीच मंद मंद बोल॥ २॥
चितवनि चख अतिहि चपल राजति भ्रुव भंग।
धनुष बान डारि होत कोटि बस अनंग॥ ३॥
बदन सुधा कौ सरवर, कुटिल अलक पारि।
व्रज जुबती मृगिनि रचीं, तिन कौं फँदवारि॥ ४॥
पीतांबर छबि निरखत दामिनिहु लजाइ।
चमकि चमकि सावन घन मैं सो दुरि जाइ॥ ५॥

चरन कमल अवलंबित राजति बनमाल।
प्रफुलित ह्वै लता मनौ चढ़ी तरु तमाल॥ ६॥
सूरदास वा छबि पै वारौं तन प्रान।
गिरिधर पिय देखि देखि, का करौं अनुमान॥ ७॥

(गोपी कह रही है—) हे प्यारे नन्दलाल ! तुम्हारी चालपर मैं मुग्ध हो गयी हूँ। मन्द-मधुर मुरलीके सुन्दर शब्दके साथ मयूरपिच्छके मुकुटका हिलना ऐसा लगता है, मानो तमाल-वृक्षकी चोटीपर आनन्दपूर्वक मयूर नाच रहा हो। सुन्दर कपोलोंपर मकराकृत कुण्डलोंकी झलमलाहट शोभा दे रही है; मन्द मुस्कान है और बीचमें धीरे-धीरे बोलते भी हैं। देखनेकी भङ्गी और नेत्र अत्यन्त चञ्चल हैं। टेढ़ी भौंहें शोभा दे रही हैं, (जिन्हें देखकर) करोड़ों कामदेव धनुष-बाण फेंककर वशमें हो जाते हैं। मुख अमृतका सरोवर है और घुँघराली अलकें उसकी मेड़ (कगारे) हैं। व्रज-युवती-रूपी हरिणियोंके लिये वह फँसानेका जाल बनाया गया है। पीताम्बरकी छटा देखकर विद्युत् भी लज्जित होती है (और इसीसे) बार-बार चमककर श्रावणके बादलोंमें छिप जाती है। चरण-कमलतक लटकती वनमाला शोभा दे रही है, मानो तमाल-वृक्षपर चढ़ी लता प्रफुल्लित हो रही हो। सूरदासजी कहते हैं कि इस शोभापर शरीर और प्राण न्योछावर कर दूँ। प्यारे गिरिधरकी शोभा देखकर अनुमान क्या करूँ (इस अनुपमेयकी उपमा कैसे दूँ)?

राग सारंग

[१२५]

देखि सखी ! सुंदर घनस्याम।
सुंदर मुकुट, कुटिल कच सुंदर,
सुंदर भाल तिलक छबि धाम॥ १॥
सुंदर भ्रुव, सुंदर अति लोचन,
सुंदर अवलोकनि बिश्राम।

अति सुंदर कुंडल श्रवनन बर,
सुंदर झलकन रीझत काम ॥ २ ॥
सुंदर हास, नासिका सुंदर,
सुंदर मुरली अधर उपाम।
सुंदर दसन, चिबुक अति सुंदर,
सुंदर हदै बिराजति दाम ॥ ३ ॥
सुंदर भुजा, पीतपट सुंदर,
सुंदर कनक मेखला झाम।
सुंदर जंघ, जानु पद सुंदर,
सूर उधारन सुंदर नाम ॥ ४ ॥

(गोपिका कह रही है—) सखी ! सुन्दर घनश्यामको देख ! सुन्दर मुकुट है, सुन्दर घुँघराले केश हैं और सुन्दर ललाटपर (लगा) तिलक शोभाका धाम (घर) है । सुन्दर भौंहें हैं, अत्यन्त सुन्दर नेत्र हैं तथा सुन्दर देखनेकी भङ्गी (बड़ी) शान्तिदायिनी ही है। श्रेष्ठ कानोंमें अत्यन्त सुन्दर कुण्डल हैं, जिनकी सुन्दर कान्तिपर कामदेव भी मोहित हो जाता है । सुन्दर हास्य, सुन्दर नासिका, ओठोंपर वंशी (अति) सुन्दरता उत्पन्न कर रही है। सुन्दर दाँत हैं, अत्यन्त सुन्दर ठुड्डी है और सुन्दर वक्षःस्थलपर माला शोभा दे रही है । सुन्दर भुजाएँ हैं, सुन्दर पीताम्बर है, स्वर्ण-किङ्किणीकी झलक सुन्दर है, सुन्दर जाँघें और पिंडलियाँ सुन्दर हैं। सूरदासके उद्धार करनेवालेका नाम (भी) सुन्दर है।

राग धनाश्री

[१२६]

नंद नँदन मुख देखौ नीकें।
अंग अंग प्रति कोटि माधुरी, निरखि होत सुख जी कें ॥ १ ॥
सुभग स्रवन कुंडल की आभा, झलक कपोलनि पी कें।
दह दह अमृत मकर क्रीड़त मनु, यह उपमा कछु ही कें ॥ २ ॥

और अंग की सुधि नहिं जानौं करौं कहति हौं लीकें।
सूरदास प्रभु नटवर काछें, रहत है रति पति बीकें ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) नन्दनन्दनका मुख भली प्रकार देखो, जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें असीम माधुर्य है और जिसे देखकर हृदयको आनन्द होता है। मनोहर कानोंके कुण्डलोंकी कान्ति प्यारेके कपोलोंपर (कुछ ऐसी) झलक रही है, मानो अमृतके दो सरोवरोंमें मगर खेल रहे हों। यही उपमा इनकी कुछ चित्तमें जँचती है। लकीर खींचकर कहती हूँ (मेरी यह बात सर्वथा सत्य है कि) दूसरे किसी अङ्गका मुझे कुछ पता नहीं है (मेरे नेत्र तो कपोलोंपर ही लगे रहे) । ये सूरदासके स्वामी नटवर-वेष बनाये रहते हैं, उस समय (इनको देखकर) कामदेव भी इनके हाथों बिक जाता है।

राग रामकली

[१२७]

देखि री, देखि कुंडल झलक।
नैन द्वै छबि धरौं कैसें, लगति तापर पलक ॥ १ ॥
लसति चारु कपोल दुहुँ बिच सजल लोचन चारु।
मुख सुधा सर मीन मानो मकर संग बिहारु ॥ २ ॥
कुटिल अलक सुभाइ हरि कें, भ्रुवन पै रहे आइ।
मनो मनमथ फँदे फंदनि मीन बिबि तट ल्याइ ॥ ३ ॥
चपल लोचन, चपल कुंडल, चपल भ्रकुटी बंक।
सखा ब्याकुल देखि अपने लेत बनत न संक ॥ ४ ॥
सूर प्रभु नँद सुवन की छबि बरनि कापै जाइ।
निरखि गोपी निकर बिथकीं, बिधिहि अति रिस पाइ ॥ ५ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! (श्यामके) कुण्डलोंकी कान्ति देख; मेरे दो ही तो नेत्र हैं, उनमें यह शोभा कैसे रखूँ। इसपर भी (ये अपलक नहीं रहते) उनपर पलकें (बार-बार) गिर जाती हैं। दोनों मनोहर कपोलोंके मध्यमें सुन्दर आबदार नेत्र ऐसे शोभा देते हैं, मानो मुखरूपी

अमृतके सरोवरमें मछलियाँ मगरोंके साथ खेल रही हों। श्यामकी घुँघराली अलकें स्वाभाविक ही भौंहोंपर लटक आयी हैं, मानो कामदेव जालमें फँसाकर दो मछलियोंको किनारे ले आया हो। चञ्चल नेत्र, चञ्चल कुण्डल और चञ्चल टेढ़ी भौंहें ऐसी हैं, मानो (कामदेव) अपने सखा* (मीन-मगरों) को व्याकुल देखकर भी भौंहरूप धनुषसे शङ्कित हो रक्षा न कर पाता हो। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी नन्दनन्दनकी शोभाका वर्णन भला, किससे हो सकता है, जिन्हें देखकर झुंड-की-झुंड गोपियाँ अत्यन्त मुग्ध होती हुई (नेत्रोंमें पलक बनानेवाले) ब्रह्मापर अत्यन्त रुष्ट हो रही हैं।

राग जैतश्री

[१२८]

बिधना अतिहीं पोच कियौ री।
कहा बिगार कियौ हम वाकौ,
ब्रज काहें अवतार दियौ री॥ १॥
यह तौ मन अपनें जानत हौ,
एते पै क्यौं निठुर हियौ री।
रोम रोम लोचन इकटक करि,
जुबतिनि प्रति काहें न ठियौ री॥ २॥
अखियाँ द्वै, छबि की चमकनि वह,
हम तौ चाहतिं सबै पियौ री।
सुनि सजनी! यह करनी अपनी
अपनें ही सिर मानि लियौ री॥ ३॥
हम तौ पाप कियौ, भुगतैं को,
पुन्य प्रगट क्यौं जात छियौ री।
सूरदास प्रभु रूप सुधा निधि,
पुट थोरौ, बिधि नाहिं बियौ री॥ ४॥

* कामदेवको मीनकेतु एवं मकरध्वज कहा जाता है, इसलिये मत्स्य एवं मगर उसके मित्र माने गये।

(गोपियाँ कहती हैं—) सखी ! ब्रह्माने यह बहुत ही बुरा किया; हमने उसका क्या बिगाड़ा था, उसने हमें व्रजमें जन्म क्यों दिया ? वह यह तो अपने मनमें जानता था (कि व्रजमें श्यामका दर्शन होगा), इतनेपर भी उसका हृदय निष्ठुर कैसे बना रहा ? प्रत्येक व्रज-युवतीके रोम-रोममें अपलक (पलक रहित) नेत्रोंका निर्माण क्यों नहीं किया ? (हमारे) दो आँखें हैं और वे (अपार) शोभाकी कान्तिवाले, हम तो उस शोभाको पूरा ही पी जाना चाहती हैं। (दूसरी बोली—) सुन सखी ! यह अपने ही कर्मोंका फल है, जिसके सम्बन्धमें हमने अपना दायित्व मान रखा था। हमने ही तो पाप किया तो फिर उसका फल (दूसरा) कौन भोगे। (मोहनका रूप तो) प्रत्यक्ष पुण्य है, वह (हमारेद्वारा) कैसे छुआ जा सकता है। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामी तो सौन्दर्यरूप अमृतके सागर हैं; उसे पीनेके लिये (नेत्ररूपी दो) पात्र कम हैं और (अब इन्हें बड़ा बनाने-वाला कोई) दूसरा ब्रह्मा है नहीं।

राग बिलावल

[१२९]

शकित भईं राधा व्रज नारि।
जो मन ध्यान करति ही तेई अंतरजामी ए बनवारि ॥ १ ॥
रतन जटित पग सुभग पाँवरी, नूपुर परम रसाल।
मानौ चरन कमल दल लोभी, बैठे बाल मराल ॥ २ ॥
जुगल जंघ मरकत मनि रंभा, बिपरित भाँति सँवारे।
कटि काछनी, कनक छुद्रावलि, पहरें नंद दुलारे ॥ ३ ॥
हृदै बिसाल माल मोतिन बिच कौस्तुभ मनि अति भ्राजत।
मानौ नभ निरमल तारागन, ता मधि चंद बिराजत ॥ ४ ॥
दुहुँ कर मुरली अधरनि धारैं, मोहन राग बजावत।
चमकत दसन, मटकि नासा पुट, लटकि नैन मुख गावत ॥ ५ ॥
कुंडल झलक कपोलन मानौ मीन सुधा सर क्रीड़त।
भ्रकुटी धनुष, नैन खंजन मनु उड़त नहीं मन व्रीड़त ॥ ६ ॥

देखि रूप ब्रजनारि थकित भईं, क्रीट मुकुट सिर सोहत।
ऐसे सूर स्याम सोभानिधि गोपीजन मन मोहत ॥ ७ ॥

श्रीराधा एवं अन्य व्रज-ललनाएँ मुग्ध हो गयी हैं। जिनका वे चित्तमें ध्यान किया करती थीं, वे ही ये अन्तर्यामी वनमाली (सामने आ गये) हैं। (इनके) चरणोंमें रत्नजटित मनोहर खड़ाऊँ और अत्यन्त रसमय (ध्वनि करनेवाले) नूपुर हैं, जो ऐसे लगते हैं मानो चरणरूपी कमलदलके लोभी हंसशावक बैठे हों। दोनों जाँघें नीलमणिसे बने केलेके खंभे हैं, (जो) उलटी रीतिसे (ऊपर मोटे, नीचे पतले) सजाये गये हैं। श्रीनन्द-कुमार कमरमें कछनी और स्वर्णकिङ्किणी पहिने हैं। विशाल वक्षःस्थलपर मोतियोंकी मालाके बीचमें कौस्तुभमणि अत्यन्त शोभा दे रहा है, मानो निर्मल आकाशमें तारागणोंके बीचमें चन्द्रमा विराजमान हो। दोनों हाथोंमें लेकर वंशीको ओठपर रखे हैं तथा मोहित करनेवाला राग बजा रहे हैं। उनके दाँत चमक रहे हैं, नासापुटोंको मटकाते हुए तथा नेत्रोंको झुकाये हुए ये मुखसे गा रहे हैं। कुण्डलोंकी कान्ति कपोलोंपर ऐसी पड़ रही है, मानो अमृत-सरोवरमें (दो) मछलियाँ खेल रही हों। भौंहरूपी धनुषोंको देखकर नेत्ररूपी खञ्जन मनमें लजा जाते हैं, उड़ते नहीं। मस्तकपर किरीट-मुकुट शोभित है, इस रूपको देखकर व्रजकी स्त्रियाँ मुग्ध हो जाती हैं। सूरदासजी कहते हैं कि श्याम ऐसे शोभा-निधान हैं, वे गोपियोंके मनको मोह लेते हैं।

राग सूही बिलावल

[१३०]

देखि सखी, अधरनि की लाली।
मनि मरकत तैं सुभग कलेवर, ऐसे हैं वनमाली ॥ १ ॥
मनौ प्रात की घटा साँवरी, तापै अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहत है, फहरत पीत सुबास ॥ २ ॥

कैधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिंब सुपाके।
नासा कीर आइ मनु बैठ्यौ, लेत बनत नहिं ताके ॥ ३ ॥
हँसत दसन इक सोभा उपजति, उपमा जदपि लजाइ।
मनौ नीलमनि पुट मुकुता गन बंदन भरि बगराइ ॥ ४ ॥
किधौं बज्र कन लाल नगन खँचि, तापै बिद्रुम पाँति।
किधौं सुभग बंधूक कुसुम तर झलकत जल कन काँति ॥ ५ ॥
किधौं अरुन अंबुज बिच बैठी सुंदरताई जाइ।
सूर अरुन अधरनि की सोभा बरनत बरनि न जाइ ॥ ६ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी! (श्यामसुन्दरके) ओठोंकी लालिमा तो देख! इनका शरीर मरकतमणि (नीलम) से भी सुन्दर है। (होठोंकी ललाईके कारण) ये वनमाली ऐसे लगते हैं, मानो प्रातःकालीन श्यामल घटापर अरुण (बालरवि) का प्रकाश हो रहा हो। (बादलमें) जैसे बीच-बीचमें बिजली चमके, वैसे ही (इनके शरीरपर) सुन्दर पीताम्बर फहरा रहा है। अथवा (यों कहें कि) तमाल (वृक्ष) पर (यह कोई पीली) लता चढ़ी है, जिसमें दो सुपक्व बिम्बफल हैं। नासिका क्या है मानो (उन फलोंपर) तोता आकर बैठा है, (किंतु) उसे ले (खा) नहीं पाता। हँसते समय दाँतोंसे एक छटा उत्पन्न होती है। यद्यपि यह उपमा (उसके सामने आनेमें) लज्जित ही होती है, फिर भी वे कुछ ऐसे लगते हैं मानो नीलमणिके सम्पुट (डिब्बे) में मोतीसे भरपूर सिंदूर छिड़ककर रखे हों, अथवा लाल मणियोंके मध्य हीरेके कण जड़कर उनपर मूँगोंकी पंक्ति रखी गयी हो, अथवा मनोहर बन्धूक-पुष्प (जवा-कुसुम) के नीचे जलकणोंकी कान्ति झलमला रही हो, अथवा लाल कमलके मध्यमें स्वयं सुन्दरता जा बैठी हो। सूरदासजी कहते हैं कि (मोहनके) लाल-लाल ओठोंकी शोभाका वर्णन करनेपर भी (वह अधूरा ही रहता है, पूरा) वर्णन किया नहीं जा पाता।

राग रामकली

[१३१]

ऐसे सुने नंदकुमार।
नख निरखि ससि कोटि वारत चरन कमल अपार ॥ १ ॥

जानु, जंघ निहारि, करभा करनि डारत वारि।
काछनी पै प्रान वारत, देखि सोभा भारि॥ २॥
कटि निरखि तनु सिंह वारत, किंकिनी जु मराल।
नाभि पै ह्रद आपु वारत, रोम अलि अलि माल॥ ३॥
हृदै मुक्ता माल निरखत वारि अवलि बलाक।
करज कर पै कमल वारत, चलति जहँ तहँ साक॥ ४॥
भुजनि पै वर नाग वारत, गए भागि पताल।
ग्रीव की उपमा नहीं कहुँ, लसति परम रसाल॥ ५॥
चिबुक पै चित वारि डारत, अधर अंबुज लाल।
बँधुक, विद्रुम, बिंब वारत, ते भए बेहाल॥ ६॥
बचन सुनि कोकिला वारति, दसन दामिनि काँति।
नासिका पै कीर वारत, चारु लोचन भाँति॥ ७॥
कंज, खंजन, मीन, मृग सावकहु डारत वारि।
भ्रकुटि पै सुर चाप वारत, तरनि कुंडल हारि॥ ८॥
अलक पै वारति अँध्यारी, तिलक भाल सुदेस।
सूर प्रभु सिर मुकुट धारैं, धरैं नटवर भेष॥ ९॥

(सखी कहती है—) श्रीनन्दनन्दनके विषयमें ऐसा सुना है कि उनके चरण-कमलोंके नख देखकर करोड़ों चन्द्रमा न्योछावर कर दिये जाते हैं और चरणोंपर अपार कमल। पिंडलियों और जाँघोंको देखकर हाथीका बच्चा अपनी सूँड़को न्योछावर कर देता है और अत्यन्त शोभामयी कछनीको देखकर (लोग) अपने प्राण न्योछावर करते हैं। कमरको देखकर सिंह अपना शरीर और किङ्किणीके स्वरपर हंस अपनेको वार देते हैं। नाभिपर सरोवर अपने आपको तथा (पेटपरकी) रोमावलीपर भौंरोंका झुंड अपनेको न्योछावर करता है। वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला देखकर बगुलोंके समुदायको न्योछावर कर दो, हाथकी अँगुलियोंपर कमल न्योछावर कर दिये जाते हैं और इसके लिये उनमें परस्पर जहाँ-तहाँ होड़ चलती है। श्रेष्ठ सर्प भुजाओंपर न्योछावर किये जाते समय (लज्जासे) पाताल भाग

गये; (और उस) गलेकी तो कहीं उपमा ही नहीं है, जो अत्यन्त रसमय शोभावाला है। ठुड्डीपर चित्त तथा ओठोंपर लाल कमल, जपा-पुष्प, मूँगे एवं बिम्बफल (भी) न्योछावर होते हुए बेचैन हो जाते हैं। शब्द सुनकर कोकिल तथा दाँतोंकी कान्तिपर बिजली न्योछावर हैं, नासिकापर तोता न्योछावर है। मनोहर नेत्र ऐसे हैं कि जिनपर कमल, खञ्जन, मछली, मृगशावक—ये सब न्योछावर हैं। भौंहोंपर इन्द्रधनुष न्योछावर है एवं कुण्डलोंसे सूर्य पराजित है। अलकोंपर अन्धकार न्योछावर है, भालका तिलक (विशेष) शोभायुक्त है। सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी नटवर-वेष धारण किये हैं तथा मस्तकपर मुकुट धारण किये हैं।

राग सारंग

[१३२]

ऐसी बिधि नंदलाल, कहत सुने माई।
देखैं जौ नैन रोम रोम प्रति सुहाई ॥ १ ॥
बिधना द्वै नैन रचे, अंग ठानि ठान्यौ।
लोचन नहिं बहुत दए, जानि कैं भुलान्यौ ॥ २ ॥
चतुरता प्रबीनता बिधाता का जानौ।
अब ऐसे लगत हमैं, बातैं न अयानौ ॥ ३ ॥
त्रिभुवन पति तरुन कान्ह, नटवर बपु काछैं।
हमकौं द्वै नैन दिए, तेऊ नहिं आछैं ॥ ४ ॥
ऐसौ बिधि कौ बिबेक, कहौं कहा वाकौं।
सूर कबहुँ पाऊँ जौं अपने कर ताकौं ॥ ५ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी! नन्दलालके विषयमें लोगोंको इस प्रकार कहते हुए सुना गया है कि प्रत्येक रोममें सुन्दर नेत्र हो तो उन्हें (भली प्रकार) देखा जा सकता है। ब्रह्माने केवल दो नेत्र बना, शेष सारा शरीर यों ही बना दिया, बहुत-से नेत्र नहीं दिये; उसने जान-बूझकर यह भूल की। ब्रह्माकी सब चतुरता और निपुणता हमने जान ली, अब तो हमें ऐसा

लगता है कि उससे बड़ा मूर्ख और कोई है ही नहीं। अरे, नटवर-वेष बनाये त्रिभुवनके स्वामी तरुण कन्हाईको देखनेके लिये (उसने) हमें केवल दो नेत्र दिये और वे भी अच्छे नहीं हैं (उनमें भी पलकें गिरती हैं)। ब्रह्माकी ऐसी समझ है, उसे और क्या कहूँ। सूरदासजी कहते हैं—यदि कभी उसे हाथों पकड़ पाऊँ............।

राग नट

[१३३]

मुख पै चंद डारौं वारि।
कुटिल कच पै भौंर वारौं, भौंह पै धनु वारि ॥ १ ॥
भाल केसर तिलक छबि पै मदन सर सत वारि।
मनु चली बहि सुधा धारा, निरखि मन द्यौं वारि ॥ २ ॥
नैन सरसुति जमुन गंगा उपमा डारौं वारि।
मीन, खंजन, मृगज वारौं, कमल के कुल वारि ॥ ३ ॥
निरखि कुंडल तरनि वारौं, कूप स्रवननि वारि।
झलक ललित कपोल छबि पै मुकुर सत सत वारि ॥ ४ ॥
नासिका पै कीर वारौं, अधर बिद्रुम वारि।
दसन पै कन बज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि ॥ ५ ॥
चिबुक पै चित-वित्त वारौं, प्रान डारौं वारि।
सूर हरि की अंग सोभा, को सकै निरवारि ॥ ६ ॥

(कोई सखी कहती है—) मोहनके मुखपर चन्द्रमाको न्योछावर कर दूँ, घुँघराले केशोंपर भौंरोंको न्योछावर कर दूँ और भौंहोंपर (कामका) धनुष न्योछावर कर दूँ। ललाटपर लगे केसरके तिलककी छबिपर कामदेवके सैकड़ों बाण न्योछावर हैं। (वह तो ऐसा है) मानो अमृतकी धारा बह चली हो, उसे देखकर चित्त न्योछावर कर दूँ। नेत्रोंपर सरस्वती, यमुना और गङ्गाकी उपमाको न्योछावर कर दूँ; (साथही) मछली, खञ्जन पक्षी एवं मृगशावकको वार डालूँ तथा कमलोंका कुल भी न्योछावर कर दूँ। कुण्डलोंको देखकर

सूर्यको न्योछावर कर दूँ, कानोंपर कुएँ न्योछावर हैं, मनोहर कपोलोंकी आभाकी सुन्दरतापर सैकड़ों दर्पण न्योछावर कर दूँ। नाकपर तोतेको न्योछावर कर दूँ, ओठपर मूँगा न्योछावर दूँ, दाँतोंपर हीरेके कण न्योछावर करूँ तथा अनारके दाने भी न्योछावर कर दूँ। ठुड्ढीपर चित्तरूपी धन न्योछावर कर दूँ और प्राण (भी) न्योछावर कर दूँ। सूरदासजी कहते हैं कि भला, श्रीहरिकी शोभाका निरूपण कौन कर सकता है?

राग सोरठ

[१३४]

स्याम उर सुधा दह मानौ।
मलै चंदन लेप कीन्हे, बरन यह जानौ ॥ १ ॥
मलै तनु मिलि लसति सोभा, महा जल गंभीर।
निरखि लोचन भ्रमत पुनि पुनि, धरत नहिं मन धीर ॥ २ ॥
उर जु भँवरी भँवर मानौ नीलमनि की काँति।
भृगु चरन हिय चिह्न ए सब जीव जल बहु भाँति ॥ ३ ॥
स्याम बाहु बिसाल केसर खौर बिबिध बनाइ।
सहज निकसे मगर मानौ कूल खेलत आइ ॥ ४ ॥
सुभग रोमावली की छबि, चली दह तैं धार।
सूर प्रभु की निरखैं सोभा जुबति बारंबार ॥ ५ ॥

(सखी कहती है—) श्यामसुन्दरका वक्षःस्थल मानो अमृतका कुण्ड है; वे (वहाँ) मलयागिरिका (श्वेत) चन्दन लगाये हैं, उसे (सरोवरका) रंग समझ लो। मलय-चन्दनसे मिली शरीरकी कान्ति जो शोभा दे रही है, वही (उस ह्रदका) अत्यन्त गम्भीर जल है, जिसे देखकर नेत्र बार-बार वहीं चक्कर काटते हैं और मन (भी) धैर्य नहीं रख पाता। नीलमणिके समान कान्तिवाले स्तनोंके बीच जो भौंरी (चक्राकार बालोंका समूह) है, मानो (वही कुण्डके जलमें) भ्रमर पड़ रहा है; भृगुलता तथा हृदयका श्रीवत्स-चिह्न आदि सब अनेक प्रकारके जल-जीव हैं। श्यामसुन्दरकी विशाल भुजाओंपर अनेक प्रकारसे

केसरका लेप किया गया है, ऐसे लगते हैं मानो दो मगर स्वाभाविक रूपमें (सरोवरसे) निकल किनारेपर आकर खेल रहे हों। मनोहर रोमावलीकी शोभा ह्रद (कुण्ड) से निकली धारा-जैसी है। सूरदासजी कहते हैं— मेरे स्वामीकी शोभा (व्रजकी) युवतियाँ बार-बार देखती हैं।

राग सारंग

[१३५]

सघन कल्पतरु तर मनमोहन।
दच्छिन चरन चरन पै दीन्हें,
तनु त्रिभंग कीन्हें मृदु जोहन ॥ १ ॥
मनिमै जटित मनोहर कुंडल,
सिखी चंद्रिका सीस रही फबि।
मृगमद तिलक, अलक घुँघरारी,
उर बनमाल कहा जु कहौं छबि ॥ २ ॥
तन घन स्याम पीत पट सोभित,
हृदैं पदिक की पाँति दिपति दुति।
तन बन धातु बिचित्र बिराजति,
बंसी अधरनि धरैं ललित गति ॥ ३ ॥
करज मुद्रिका, कर कंकन छबि,
कटि किंकिनि, पग नूपुर भ्राजत।
नख सिख कांति बिलोकि सखी री,
ससि औ भानु मगन तन लाजत ॥ ४ ॥
नख सिख रूप अनूप बिलोकत,
नटवर भेष धरैं जु ललित अति।
रूप रासि जसुमति कौ ढोटा
बरनि सकै नहिं सूर अलपमति ॥ ५ ॥

(गोपी कह रही है—) घने कल्पवृक्षके नीचे मनमोहन (बायें) चरणपर दाहिना चरण रखे और शरीरको त्रिभंग बनाये (खड़े) बड़ी कोमलतासे देख रहे हैं । मणिजटित मनोहर कुण्डल और मस्तकपर मयूर-पिच्छकी चन्द्रिका शोभा दे रही है। कस्तूरीका तिलक है, घुँघराली अलकें हैं, वक्षःस्थलपर वनमाला है, यह छटा और कहाँ है ? मेघके समान श्याम शरीर है, (जिसपर) पीताम्बर शोभा दे रहा है; वक्षःस्थलपर पदकोंकी पंक्ति (हमेल) अपनी कान्तिसे प्रकाशित हो रही है, शरीरमें रंग-विरंगी (गैरिकादि) वनधातुएँ पोती हुई सुशोभित हैं, ओठोंपर वंशी रखे हैं, जिसकी गति (ध्वनि) बड़ी सुन्दर है । अङ्गुलियोंमें अँगूठी तथा हाथोंमें कङ्कण शोभा दे रहे हैं, कमरमें किङ्किणी और चरणोंमें नूपुर सुशोभित हैं। सखी ! (श्यामसुन्दरकी) नखसे शिखातक (पूरे शरीर) की कान्तिको देखकर चन्द्र और सूर्य दोनों (उनकी कान्तिमें) मग्न हो लजा जाते हैं। नखसे शिखातक यह रूप देखनेमें अनुपम है; नटवरवेष जो बना रखा है, वह अत्यन्त सुन्दर है । एवं सूरदासजी कहते हैं कि ये श्रीयशोदाकुमार तो रूपराशि हैं, मैं अल्पबुद्धि इनका वर्णन नहीं कर सकता ।

राग सोरठ

[१३६]

लोचन हरत अंबुज मान ।
चकित मनमथ सरन चाहत, धनुष तजि निज बान ॥ १ ॥
चिकुर कोमल कुटिल राजत रुचिर बिमल कपोल ।
नील नलिन सुगंध ज्यौं, रस थकित मधुकर लोल ॥ २ ॥
स्याम उर पै परम सुंदर सजल मोतिन हार ।
मनौ मरकत सैल तैं बहि चली सुरसरि धार ॥ ३ ॥
सूर कटि पटपीत राजत सुभग छवि नँदलाल ।
मनौ कनक लता अवलि बिच तरल बिटप तमाल ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) मोहनके नेत्र कमलोंका गर्व हरण करते हैं, (उन्हें देखकर) आश्चर्यचकित कामदेव अपना धनुष-बाण फेंककर शरण चाहता है। घुँघराले कोमल केश मनोहर निर्मल कपोलोंपर (ऐसे) शोभा दे रहे हैं, मानो नीलकमलकी सुगन्ध-रससे मुग्ध भौंरे चञ्चल हो रहे (उसपर मँडरा रहे) हों। श्यामके वक्षःस्थलपर परम सुन्दर पानीदार (चमकीले) मोतियोंकी माला (ऐसी शोभायमान) है, मानो नीलमणिके पर्वतसे गङ्गाजीकी धारा प्रवाहित हो रही हो। सूरदासजी कहते हैं कि नन्दलालकी कमरमें पीताम्बर सुशोभित है, जिसके कारण उनकी ऐसी मनोहर शोभा हो रही है, मानो स्वर्ण-लताओंके समूहके बीच चमकीला तमालवृक्ष हो।

राग गौरी

[१३७]

ढोटा कौन कौ यह री।
स्रुति मंडल मकराकृत कुंडल, कंठ कनक दुलरी ॥ १ ॥
घन तन स्याम, कमल दल लोचन, चारु चपल तुल री।
इंदु बदन, मुसुकानि माधुरी, अलकैं अलि कुल री ॥ २ ॥
उर मुक्ता की माल, पीत पट, मुरली सुर गवरी।
पग नूपुर मनि जठित रुचिर अति, कटि किंकिनि रव री ॥ ३ ॥
बालक बृंद मध्य राजत है, छबि निरखत भुर री।
सोइ सँजीवनि सूरदास की, महरि रहै उर री ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! यह किसका लाल है, जिसके गोल-गोल कानोंमें मकराकृत कुण्डल और गलेमें सोनेका दोलड़ीवाला हार है। मेघके समान श्याम शरीर है, सुन्दर, चञ्चल तथा परस्पर समान कमलदलके तुल्य नेत्र हैं, चन्द्रमाके समान मुख है, मधुर मुस्कराहट है तथा अलकें भौंरोंके झुंडके समान हैं। वक्षःस्थलपर मोतियोंकी माला है, पीताम्बर पहिरे हैं, वंशीमें गौरी रागका स्वर भर गा रहे हैं, चरणोंमें

अत्यन्त सुन्दर मणिजटित नूपुर हैं तथा कमरमें किङ्किणीका शब्द हो रहा है। बालकोंके समूहमें शोभित हो रहे हैं, उनकी शोभा देखकर (मैं अपने-आपको) भूल (मोहित हो) रही हूँ। सूरदासके लिये ये ही संजीवन बूटी हैं। उनके हृदयमें (मुझपर) कृपा बनी रहे।

राग धनाश्री

[१३८]

वे देखौ, आवत दोऊ जन।
गौर स्याम नट नील पीत पट, मनौ मिले दामिनि घन ॥ १ ॥
लोचन बंक बिसाल कमल दल,
चितवत चितै हरत सब कौ मन।
कुंडल स्रवन कनक मनि भूषित,
जटित लाल अति लोल मीन तन ॥ २ ॥
चंदन चित्र बिचित्र अंग पै,
कुसुम सुबास धरैं नँदनंदन।
बलि बलि जाउँ चलैं जिहिं मारग,
संग लगाइ लेत मधुकर गन ॥ ३ ॥
धनि यह भूमि जहाँ पगु धारे,
जीतैंगे रिपु आज रंग रन।
सूरदास वे नगर नारि सब
लेति बलाइ वारि अंचल सन ॥ ४ ॥

(सखी कहती है—) 'वे देखो, दोनों भाई आ रहे हैं। (क्रमशः) नीले-पीले वस्त्र पहिने गोरे और साँवले नटके समान (शोभित) हैं, मानो बिजली और मेघ दोनों मिले हों। (वे) कमलदलके समान विशाल नेत्रोंद्वारा तिरछी चितवनसे देखते ही सबका चित्त हरण कर लेते हैं। कानोंमें मणिजटित स्वर्णकुण्डल ऐसे लगते हैं मानो माणिकसे जड़ी अत्यन्त चञ्चल मछलियोंकी देह हो। श्रीनन्दनन्दनके शरीरपर अनेक प्रकारके चित्र बनाकर विचित्र ढंगसे चन्दन लगा है और सुगन्धित पुष्प धारण किये हुए हैं; जिस मार्गसे

जाते हैं, उधर बहुत-से भौंरोंको साथ लगा लेते हैं; उस शोभापर बार-बार बलिहारी जाऊँ। यह भूमि धन्य है, जहाँ इन्होंने चरण रखे हैं, आज युद्ध करके ये शत्रुको सहज ही जीत लेंगे। सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार वे सब (मथुरा) नगरकी स्त्रियाँ अञ्चलसे न्योछावर होकर बलैयाँ ले रही हैं।

राग नट

[१३९]

वे हैं रोहिनी सुत राम।
गौर अंग सुरंग लोचन, प्रलै जिन के ताम॥ १॥
एक कुंडल स्रवन धारी, द्योत दरसी ग्राम।
नील अंबर अंग धारी, स्याम पूरन काम॥ २॥
ताल वन इन बच्छ मार्‌यौ, 'ब्रह्म पूरन काम।
सूर प्रभु आकरषि, तातैं सँकरषन है नाम॥ ३॥

(मथुराकी स्त्रियाँ कहती हैं—) वे रोहिणीजीके पुत्र श्रीबलरामजी हैं; (इनका) गोरा शरीर है, लाल नेत्र हैं और जिनके क्रोध करनेपर प्रलय हो जाता है। एक ही कानमें ये कुण्डल धारण करनेवाले हैं, जिसका प्रकाश पूरे ग्राममें दिखलायी पड़ता है। शरीरपर नीले रंगका वस्त्र पहननेवाले ये श्यामसुन्दरको पाकर ही पूर्णकाम हैं। इन्होंने ही तालवनमें असुर (धेनुकासुर) को मारा था। ये पूर्णकाम साक्षात् परम ब्रह्म हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीने (इनको देवकीके गर्भसे रोहिणीके गर्भमें) आकर्षित किया था, इसीसे इनका नाम संकर्षण है।

राग रामकली

[१४०]

ए हैं देवकी सुत स्याम।
मुकुट सिर सुभ, स्रवन कुंडल, करत पूरन काम॥ १॥
महा जे खल तिनहुँ तैं अति तरत हैं इक नाम।
ब्रह्म पूरन सकल स्वामी, रहे ब्रज निज धाम॥ २॥

नंद पितु माता जसोदा, बाँधि ऊखल दाम।
लकुट लैलै त्रास दीन्हौ, कर्‌यौ इन पै ताम ॥ ३ ॥
ताहि मान्यौ हेत करि इन, हँसति व्रज की बाम।
सूर धनि नँद, धन्य जसुमति, धन्य गोकुल गाम ॥ ४ ॥

(मथुराकी स्त्रियाँ कहती हैं—) ये श्रीदेवकी-नन्दन श्यामसुन्दर हैं, (जिनके) सुन्दर मस्तकपर मुकुट एवं कानोंमें कुण्डल हैं तथा जो सबकी कामनाएँ पूर्ण करते हैं। जो महान् दुष्टोंसे भी अधिक दुष्ट (पापी) हैं, वे भी इनका एक नाम लेनेसे तर जाते (मुक्त हो जाते) हैं; ये पूर्ण ब्रह्म हैं, समस्त लोकोंके स्वामी हैं; अबतक अपने निजधाम (व्रज)में रहते थे। इनके पिता (व्रजराज) नन्दजी और माता यशोदाजी हैं, जिन्होंने इन्हें रस्सीसे ऊखलमें बाँध दिया था तथा छड़ी ले-लेकर धमकाया और क्रोध किया था; किंतु उस (क्रोध) को इन्होंने प्रेम समझकर सम्मान दिया, जिसपर व्रजकी स्त्रियाँ इनकी हँसी उड़ाती (इनसे परिहास करती) थीं। सूरदासजी कहते हैं—नन्दजी धन्य हैं, यशोदाजी धन्य हैं और गोकुल ग्राम (भी) धन्य हैं।

राग कान्हरौ

[१४१]

(सजनी) एई हैं गोपाल गुसाईं।
नंद महर के ढोटा, जिनकी सुनियत बहुत बड़ाई ॥ १ ॥
यह सुरूप नैननि भरि देखौ, बड़े भाग निधि पाई।
चंद चकोर, मेघ चातक लौं, अवलोकौ मन लाई ॥ २ ॥
सुंदर स्याम सुदेस पीतपट, चंदन चरचित कीन्हें।
नटवर भेष धरैं मन मोहन, कंध दसन गज लीन्हें ॥ ३ ॥
नूपुर चारु चरन, कटि किंकिनि, बनमाला उर सोहै।
कर कंकन मनि कंठ मनोहर, जुबती जन मन मोहै ॥ ४ ॥
कुंडल स्रवन, सरोज बिलोकनि, कुटिल अलक अलिमाल।
चंद बदन, अचवति जु अमी रस, धन्य धन्य व्रजबाल ॥ ५ ॥

चंद चकोर, स्वाति चातक ज्यौं, अवलोकतिँ सत भाए।
सूरदास प्रभु दुष्ट बिनासन माधौ मथुरा आए ॥ ६ ॥

(मथुराकी नारियाँ कह रही हैं—) सखी ! त्रिभुवनके स्वामी गोपाल ये ही हैं। व्रजराज नन्दजीके ये पुत्र हैं, जिनकी बहुत बड़ाई सुनी जाती है। इस स्वरूपको आँखभर देखो; बड़े सौभाग्यसे (यह) निधि (देखनेको) मिली है। जैसे चन्द्रमाको चकोर और मेघोंको चातक देखता है, वैसे (ही) मन लगाकर देखो। सुन्दर श्यामवर्ण है, मनोहर पीताम्बर है, चन्दन लगाये हैं, मनको मोहनेवाला नटवर वेष बनाये हैं तथा कंधेपर (कंसके कुवलयापीड़ हाथीको मारकर उस) हाथीका दाँत रखे हैं। चरणोंमें सुन्दर नूपुर हैं, कमरमें किङ्किणी है, वक्षःस्थलपर वनमाला शोभित है, हाथोंमें कङ्कण हैं, गलेमें मनोहर (कौस्तुभ) मणि है, जो युवतीजनोंका मन मोहित करती है। कानोंमें कुण्डल हैं, कमलके समान नेत्र हैं, भौंरोंके झुंडके समान घुँघराली अलकें हैं और चन्द्रमाके समान मुख है, जिसके अमृतरसका पान करनेवाली व्रजबालाएँ परम धन्य हैं। सूरदासजी कहते हैं कि दुष्टोंका नाश करनेके लिये मेरे स्वामी श्रीमाधवके मथुरा आनेपर ये (नारियाँ) जैसे चन्द्रमाको चकोर देखे या स्वाती नक्षत्र (के मेघ) को चातक देखे, वैसे (ही) सच्चे भावसे देख रही हैं।

[१४२]

देखौ माई ! आवत हैं घनस्याम।
दामिनि ज्यौं पीतांबर सोहत, मोहत कोटिन काम ॥ १ ॥
घूँघरवारी अलक मनोहर मंडित गोपद धूरि।
तिन के निकट प्रगट कुंडल दुति, मनु नव घन में सूर ॥ २ ॥
बनमाला जो हिय कंजनि की, इंद्रधनुष की भाँति।
मुक्तामाल अनूपम राजति, ज्यौं जलधर बग पाँति ॥ ३ ॥
माथें मुकुट मोर ज्यौं निरतत, मुरली सब्द रसाल।
सूरदास प्रभु मेघ स्याम घन, चातक सब व्रजबाल ॥ ४ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! देखो, घनश्याम आ रहे हैं; (उनका) पीताम्बर विद्युत्के समान सुशोभित है एवं करोड़ों कामदेवोंको मोहित कर रहा है । घुँघराली मनोहर अलकें गायोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलिसे सनी हैं; उनके पास ही कुण्डलकी कान्ति ऐसी दीखती है, मानो नवीन बादलमें सूर्य हो । वक्षःस्थलपर जो कमलपुष्पोंकी वनमाला है, वह इन्द्रधनुषके समान है और मोतियोंकी माला ऐसी अनुपम शोभा दे रही है, जैसे मेघके पास बगुलोंकी पंक्ति । (आपके) मस्तकका मुकुट ऐसा है, मानो वंशीके रसमय शब्द (मेघगर्जन) को सुनकर मयूर नृत्य कर रहा हो । सूरदासजी कहते हैं कि मेरे स्वामी गहरे श्याम रङ्गके मेघ हैं और सब व्रजबालाएँ (उनमें चित्त लगाये) चातकके समान हैं ।

[१४२]

कहँ लौं कहौं सखि ! सुंदरताई ।
मोर पच्छ माथे पै राजत, फेरत कमल, अंग सुखदाई ॥ १ ॥
पहिरें पीतांबर हैं ठाढ़े, बहु बिधि (सुंदर) ठाट बनाई ।
मुरली अधर मधुर धुनि बाजति, नए मेघ मानौ घहराई ॥ २ ॥
सिर पै लाल पागरी बाँधें, उर मुक्तन की माल रुराई ।
जुगल प्रवाह सुरसरी धारा, निरखत कलिमल गए हिराई ॥ ३ ॥
बैजंती लटकति चरननि लौं, हंस कीर रहे बैठि लजाई ।
सोभा सिंधु, पार नहिं जाकौ, सिव बिरंचि सोचत अधिकाई॥ ४ ॥
बड़े भाग प्रगटे जसुदा कैं, घर बैठेंहीं नव निधि आई ।
सूरदास प्रभु नंद अनंदित तिहूँ लोक छिति छबि न समाई ॥ ५ ॥

(गोपी कहती है—) सखी ! श्यामसुन्दरकी सुन्दरताका कहाँतक वर्णन करूँ । उनके मस्तकपर मयूरपिच्छ शोभा दे रहा है, वे (हाथसे) कमल घुमा रहे हैं, सभी अङ्ग सुखदायक हैं । पीताम्बर पहने अनेक प्रकारके मनोहर ठाट बनाये खड़े हैं और ओठोंपर मधुर ध्वनिसे वंशी इस प्रकार बज रही है, मानो नवीन मेघ-

की गर्जना हो। मस्तकपर लाल पगड़ी बाँधे हैं तथा वक्षःस्थलपर मुक्तामालाकी ऐसी शोभा है, मानो गङ्गाजी दो धारा होकर बह रही हों, जिन्हें देखते ही (बिना स्नान किये ही) कलियुगके दोष नष्ट हो जाते हैं। चरणोंतक वैजयन्ती माला लटक रही है, जिसे देखकर हंस और तोते (लज्जित होकर) बैठे रह गये। ये शोभाके ऐसे समुद्र हैं, जिसका कोई ओर-छोर नहीं है और जिसके सम्बन्धमें शंकरजी और ब्रह्मा भी बहुत ऊहापोह करते रहते हैं (पर पार नहीं पाते)। बड़े सौभाग्यसे श्रीयशोदाजीके भवनमें ये प्रकट हुए, (उनके) घर बैठे ही (बिना श्रमके) नवों निधियाँ आ गयीं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीको पाकर श्रीनन्दजी आनन्दित हैं। उनकी शोभा तीनों लोकोंके धरातलमें भी समाती नहीं।

राग गूजरी

[१४४]

बसौ मेरे नैननि मैं यह जोरी।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन, सँग बृषभानु किसोरी ॥ १ ॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, पीतांबर झकझोरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ, का बरनौं मति थोरी ॥ २ ॥

कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दरके साथ श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकी जोड़ी मेरे नेत्रोंमें निवास करे। मयूरपिच्छका मुकुट, मकराकृत कुण्डल और फहराता पीताम्बर! सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी! आपके (इस अमित शोभापूर्ण) दर्शनका मैं थोड़ी बुद्धिवाला क्या वर्णन करूँ।

मुरली-माधुरी

राग सारंग

[१४५]

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत ॥ १ ॥
खग मोहैं, मृग जूथ भुलाहीं, निरखि मदन छबि छरत।
पसु मोहैं, सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ॥ २ ॥
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग हैं तिन के, जे या सुखैं लहत ॥ ३ ॥

जब श्यामसुन्दर वंशीको ओठोंपर रखते (बजाते) हैं, तब स्थिर पदार्थ चलने (द्रवित होने) लगते हैं और चलनेवाले स्थिर (प्रेममुग्धताके कारण निश्चेष्ट) हो जाते हैं, पवनकी गति बंद हो जाती है, यमुना-जल प्रवाहित नहीं होता। पक्षी मोहित हो जाते हैं, हिरणोंके समूह (दौड़ना) भूल जाते हैं, उन्हें देखकर कामदेवकी भी शोभा क्षीण हो जाती है, पशु मुग्धहो जाते हैं और गायें मुग्ध (स्थिर) हो दाँतोंमें तृण पकड़े ही रह जाती हैं (खा नहीं पातीं)। शुकदेव एवं सनकादि सभी मुनि मोहित हो जाते हैं, तनिक भी ध्यान नहीं कर पाते। सूरदासजी कहते हैं कि उनके महान् भाग्य हैं, जो इस सुखको प्राप्त करते हैं।

राग बिहागरौ

[१४६]

(कहौं कहा) अंगन की सुधि बिसरि गई।
स्याम अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भई ॥ १ ॥
जो जैसैं, सो तैसैं रहि गइँ, सुख दुख कह्यौ न जाई।
लिखी चित्र सी सूर सु ह्वै रहिं इकटक पल बिसराई ॥ २ ॥

(गोपी कहती है—सखी !) (क्या कहूँ, मैं तो) शरीरकी सुधि (ही) भूल गयी, श्यामसुन्दरके ओठोंपर बजती मधुर वंशीध्वनि सुनते ही

स्त्रियाँ आश्चर्य-चकित हो गयीं। जो जैसे थीं, वे वैसे ही रह गयीं; उन्हें सुख हुआ या दुःख (कुछ) कहा नहीं जा सकता। सूरदासजी कहते हैं कि पलकें गिराना भूलकर वे (गोपियाँ) एकटक देखती इस प्रकार स्थिर रह गयीं जैसे चित्रमें लिखी हों।

राग मलार

[१४७]

सुनत बन मुरली धुनि की बाजन।
पपिहा गुंज, कोकिल बन कूजत, औ मोरनि कियौ गाजन ॥ १ ॥
यहै सब्द सुनियत गोकुल मैं, मोहन रूप बिराजन।
सूरदास प्रभु मिली राधिका अंग अंग करि साजन ॥ २ ॥

वृन्दावनमें बजती हुई वंशीध्वनि सुनकर पपीहे बोलने लगे, कोकिल कूजने लगी और मयूर गर्जना (उच्च ध्वनि) करने लगे। मोहित करनेवाले रूपमें उपस्थित यही (वंशीका) शब्द गोकुलमें सुना गया है। सूरदासजी कहते हैं कि (उसे सुनकर) श्रीराधा (नखसे शिखातक) सभी अङ्गोंका श्रृङ्गार करके मेरे प्रभु (श्यामसुन्दर) से मिलीं।

राग मारू

[१४८]

मेरे साँवरे
जब मुरली अधर धरी। सुनि सिद्ध समाधि टरी॥
सुनि थके देव बिमान। सुर बधू चित्र समान॥
ग्रह नखत तजत न रास। बाहन बँधे धुनि पास॥
चर थाके, अचर टरे। सुनि आनँद उमँग भरे॥
चर अचर गति बिपरीति। सुनि बेनु कल्पित गीति॥
झरनान झरंत पषान। गंधरब मोहे गान॥
सुनि खग, मृग मौन धरे। फल तृन की सुधि बिसरे॥
सुनि धेनु धुनि थकि रहति। तृन दंतहू नहिं गहति॥
बछरा न पीवैं छीर। पंछी न मन मैं धीर॥

द्रुम बेली चपल भए। सुनि पल्लव प्रगट नए॥
सुनि बिटपं चंचल पात। अति निकट कौं अकुलात॥
आकुलित पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात॥
सुनि पौन चंचल थक्यौ। सरिता जल चलि न सक्यौ॥
सुनि धुनि चलीं ब्रजनारि। सुत देह गेह बिसारि॥
अति थकित भयौ समीर। उलट्यौ जु जमुना नीर॥
मन मोह्यौ मदन गुपाल। तन स्याम, नैन बिसाल॥
नव नील तन घन स्याम। नव पीत पट अभिराम॥
नव मुकुट नव बन दाम। लावन्य कोटिक काम॥
मन मोहन रूप धर्‍यौ। नव गरब अनंग हर्‍यौ॥
श्रीमदन मोहन लाल। सँग नागरी ब्रजबाल॥
नव कुंज जमुना कूल। जन सूर देखत फूल॥

(गोपी कह रही है—सखी!) मेरे श्यामसुन्दरने जब ओठोंपर वंशी रखी, तब उसकी ध्वनि सुनकर सिद्धोंकी समाधि भी छूट गयी। देवताओंके विमान उसे सुनकर स्तब्ध रह गये और देवाङ्गनाएँ चित्र-लिखी-सी रह गयीं। ग्रह और नक्षत्र अपनी राशि नहीं छोड़ रहे थे (चल नहीं पा रहे थे); क्योंकि उनके वाहन (वंशी-) ध्वनिके फंदेमें बँध गये थे। चर (चलनेवाले, चेतन) स्थिर हो गये और अचर चलने (द्रवित होने) लगे, वह ध्वनि सुनकर सभी आनन्दसे उमंगमें भर गये। वंशीसे निकले गीतको सुनकर चर और अचर दोनोंकी गति उलटी हो गयी। पत्थरोंसे भी झरने फूट निकले (पत्थर भी द्रवित हो गये) और (उस) गानसे गन्धर्व मोहित हो गये। मुरलीका शब्द सुनकर पक्षी और पशु चुप रह गये, वे फल तथा तृण खानेकी भी याद भूल गये। गायें उस ध्वनिको सुनकर स्तम्भित रह गयीं और दाँतोंसे तिनके (घासें) तक नहीं पकड़ पाती थीं। बछड़े दूध नहीं पीते थे, पक्षियोंके मनका धैर्य जाता रहा; वृक्ष और लता चञ्चल हो गये तथा वंशीध्वनि सुनकर उनमें नवीन पल्लव निकल आये। वंशीध्वनि सुनकर वृक्षोंके पत्ते हिलने लगे और अत्यन्त

पास आनेको व्याकुल होने लगे। सबके चित्त आकुल और शरीर पुलकित (रोमाञ्चित) हो गये तथा अनुरागके कारण नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उस ध्वनिको सुनकर सदा चलनेवाला (गतिमान्) वायु भी स्थिर हो गया और नदियोंके जलका बहना बंद हो गया। वंशी-ध्वनि सुनकर व्रजकी स्त्रियाँ पुत्र, घर और शरीरकी भी सुधि भूलकर चल पड़ीं। वायु अत्यन्त स्थिर हो गया, यमुनाजल उलटकर ऊपरकी ओर बहने लगा। श्याम-शरीर तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाले मदनगोपालने सबका मन मोहित कर लिया। उनके नवीन मेघके समान नील-श्याम (श्यामता लिये नीले) शरीरपर नवीन पीताम्बर सुशोभित था, नवीन ही मुकुट था, नयी वनमाला थी और करोड़ों कामदेवोंके समान उनका लावण्य था। मनको मोहनेवाला रूप धारण कर उन्होंने कामदेवका अभिमान हरण कर लिया। श्रीमदन-मोहनलाल चतुर व्रजस्त्रियोंके साथ यमुना-तटपर नवीन कुञ्जमें विराजमान थे तथा सेवक सूरदास प्रफुल्ल मनसे शोभा देख रहा था।

राग नट

[१४९]

स्याम कर मुरली अतिहिं बिराजति।
परसति अधर सुधारस बरसति, मधुर-मधुर सुर बाजति ॥ १ ॥
लटकत मुकुट, भौंह छबि मटकति, नैन सैन अति राजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पै कोटि मदन छबि लाजति ॥ २ ॥
लोल कपोल झलक कुंडल की यह उपमा कछु लागत।
मानौ मकर सुधा सर क्रीड़त, आपु आपु अनुरागत ॥ ३ ॥
बृंदाबन बिहरत नँदनंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत सुर नर मुनि सब मोहत ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दरके हाथोंमें वंशी अत्यन्त शोभा देती है और ओठोंका स्पर्श करके अमृतरसकी वर्षा करती मधुर-मधुर ध्वनिसे बज रही है। मुकुट झुक रहा है, भौंहें बड़े ही छविपूर्ण ढंगसे मटक रही हैं,

तथा सैन करते हुए नेत्र अत्यन्त सुशोभित हैं, गर्दन झुकाये वंशीपर एकाग्र होकर खड़े होनेकी अदा करोड़ों कामदेवोंकी शोभाको लजाती है। कपोलोंपर चञ्चल कुण्डलोंकी जो झलक पड़ती है, उसकी यह उपमा कुछ ठीक जान पड़ती है कि मानो अमृतके सरोवरमें दो मगर अपने आपके प्रेम-में मग्न हो (परस्पर मिलनेकी इच्छा न रखकर) खेल रहे हों। श्रीनन्दनन्दन वृन्दावनमें विहार करते हैं, उनके साथ गोप-सखा सुशोभित हैं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीकी शोभा देखकर देवता, मनुष्य तथा मुनिगण—सभी मोहित हो जाते हैं।

राग धनाश्री

[१५०]

तब लगि सबै सयान रहै।
जब लगि नवल किसोर न मुरली बदन समीर बहै ॥ १ ॥
तबही लौं अभिमान, चातुरी, पतिव्रत, कुलहि चहै।
जब लगि स्रवन रंध्र मग, मिलि कैं नाहिन मनै महै ॥ २ ॥
तब लगि तरुनि तरल चंचलता बुधि बल सकुचि रहै।
सूरदास जब लगि वह धुनि सुनि नाहिन धीर ढहै ॥ ३ ॥

(सखीसे सखी कहती है—) तबतक (ही) सारी समझदारी बनी रहती है, जबतक नवल नन्दकिशोरके मुखकी वायु वंशीमें नहीं जाती अर्थात् वह बजती नहीं। और तभीतक चतुरता है, पातिव्रत और अच्छे कुलका अभिमान चलता है, जबतक कानके छिद्रोंके मार्गसे जाकर वंशीध्वनि मनको मथ नहीं देती। तभीतक तरुणियों-की अधिक चञ्चलता बुद्धि (विचार) के बलसे संकोचमें पड़ी (रुकी) रहती है, सूरदासजी कहते हैं—जबतक वह ध्वनि सुनकर धैर्य नष्ट न हो जाय।

राग गौरी

[१५१]

ब्रज ललना देखत गिरधर कौं।
इक इक अंग अंग पै रीझीं, उरझीं मुरलीधर कौं ॥ १ ॥
मनौ चित्र की सी लिखि काढीं, सुधि नाहीं मन घर कौं।
लोक लाज, कुल कानि भुलानी, लुबधीं स्यामसुँदर कौं ॥ २ ॥
कोउ रिसाइ, कोउ कहै जाइ कछु, डरैं न काहू डर कौं।
सूरदास प्रभु सौं मन मान्यौं, जनम-जनम परतर कौं ॥ ३ ॥

व्रजकी स्त्रियाँ गिरिधरलालको देख रही हैं, उनके एक-एक अङ्ग-पर वे मुग्ध हैं और वंशीधरमें उनका चित्त उलझ गया है। वे (ऐसी खड़ी हैं) मानो चित्रित मूर्तियाँ हों। उनके चित्तमें घरका स्मरण ही नहीं है। श्यामसुन्दरपर मोहित हो उन्होंने लोककी लज्जा और कुलकी मर्यादा भुला दी है। कोई क्रोध करे या कोई कुछ (भी) जाकर कहे, वे किसी भी भयसे भीत नहीं होतीं। सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीसे उनका पहलेके जन्म-जन्मान्तरका सम्बन्ध है। उनसे (ही) इनका मन प्रेम मान बैठा है।

राग सारंग

[१५२]

बंसी री! बन कान्ह बजावत।
आनि सुनौ स्रवननि मधुरे सुर,
राग मध्य लै नाम बुलावत ॥ १ ॥
सुर स्रुति तान बधान अमित अति,
सप्त अतीत अनागत आवत।
जुरि जुग भुज सिर, सेष सैल, मथि
बदन पयोधि अमृत उपजावत ॥ २ ॥

मनौ मोहिनी भेष धारि कैं
मन मोहत मधु पान करावत।
सुर, नर, मुनि बस किए राग रस,
अधर सुधा रस मदन जगावत ॥ ३ ॥
महा मनोहर नाद सूर थिर
चर मोहे, कोउ मरम न पावत।
मानौ मूक मिठाई के गुन
कहि न सकत मुख, सीस डुलावत ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी! कन्हाई वृन्दावनमें वंशी बजा रहे हैं। उन मधुर स्वरोंको कान लगाकर सुनो। वे रागके बीचमें नाम लेकर बुला (भी) रहे हैं। उसमें स्वरोंकी श्रुतियाँ और तानकी वंदिशें अपार हैं, इनमें सातों 'अतीत' और 'अनागत' (ताल-भेद) आ जाते हैं। दोनों जुड़ी भुजाएँ और मस्तक (वंशी बजाते समय) (क्रमशः) शेष (वासुकि) नाग और मन्दराचल-(से प्रतीत हो रहे हैं), जो मुखरूपी क्षीरसमुद्रका मन्थन करके अमृत-की सृष्टि कर रहे हैं, (ऐसे सुन्दर लगते हैं) मानो मोहिनी वेष धारण करके (सबका) मन मोहित करते हुए अमृत पिला रहे हों। रागके रससे उन्होंने देवता, मनुष्य तथा मुनियोंको भी वशमें करके अधरामृतके रससे कामदेव (प्रेम)को जगा रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि वंशीका नाद अत्यन्त मनोहर है, जिसने जड-चेतन सबको मोहित कर लिया है, उसका रहस्य कोई जान नहीं पाता, मानो गूँगा मनुष्य मिठाईके गुण (स्वाद) मुखसे नहीं बतला सकता, केवल मस्तक हिलाता (और इस प्रकार प्रसन्नता व्यक्त करता) हो।

राग बिलावल

[१५३]

बाँसुरी बजाई आछे रंग सौं मुरारी।
सुनि कैं धुनि छूटि गई संकर की तारी ॥ १ ॥

वेद पढ़न भूलि गए ब्रह्मा ब्रह्मचारी।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसि सुधि बिसारी ॥ २ ॥
इंद्र सभा थकित भई, लगी जब करारी।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृतकारी ॥ ३ ॥
जमुना जू थकित भईं, नहीं सुधि सँभारी।
सूरदास मुरली है तीन लोक प्यारी ॥ ४ ॥

(गोपी कह रही है—सखी!) मुरारि (श्रीकृष्ण) ने बड़े सुन्दर ढंगसे वंशी बजायी। उसकी ध्वनि सुनकर शंकरजीके ध्यानका तार टूट गया। ब्रह्माजी-जैसे ब्रह्मचारी वेदपाठ करना भूल गये। वाणी (सरस्वती) इस प्रकार अपनी सुधि भूल गयीं कि उसका गुण वर्णन नहीं कर पा रही थीं। जब ध्वनिका प्रबल आघात लगा, तब देवराज इन्द्रकी सभा (भी) स्तब्ध रह गयी। रम्भाका गर्व नष्ट हो गया, वह नृत्य-कला भूल गयी। यमुनाजी भी स्थिर हो गयीं, अपना स्मरण और सम्हाल उन्हें (भी) नहीं रही। सूरदासजी कहते हैं कि (मोहनकी) मुरली तीनों लोकोंको प्यारी है।

राग केदारौ

[१५४]

बंसी बनराज आज आई रन जीति।
मेटति है अपने बल, सबहिनि की रीति ॥ १ ॥
बिडरे गज जूथ सील, सैन लाज भाजी।
घूँघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी ॥ २ ॥
काहूँ पति गेह तजे, काहूँ तन प्रान।
काहूँ सुख सरन लयौ, सुनत सुजस गान ॥ ३ ॥
कोऊ पग परसि गए अपने-अपने देस।
कोऊ रस रंक भए, हुते जे नरेस ॥ ४ ॥
देत मदन मारुत मिलि दसौं दिसि दुहाई।
सूर श्रीगुपाल लाल बंसी बस माई ॥ ५ ॥

(गोपी कह रही है–सखी !) वंशी आज युद्ध करके वनका राज्य जीत आयी है। अपने बलसे ही वह सभीकी मर्यादा ढहा दे रही है। शीलरूपी गजदल डरकर तितर-बितर हो गया, लज्जारूपी (पैदल-सेना भाग गयी, घूँघट-वस्त्रका दुर्ग टूट गया (घूँघट हट गया, लज्जा और संकोच जाते रहे)। नेत्ररूपी घोड़े छूट गये (नियन्त्रणमें नहीं रहे)। किसीने पति और घर तथा किसीने शरीर और प्राण त्याग दिये तथा किसीने सुयश एवं वंशी-गान सुनकर सुखस्वरूप मोहनकी शरण ले ली। कोई (देवतादि) चरण छूकर अपने-अपने देश (लोक) को चले गये और जो कोई राजा थे (अत्यन्त रसमय माने जाते थे, वंशीध्वनिके सम्मुख अब) वे रसके कंगाल हो गये अर्थात् वे उस पुनीत रसमें डूब गये। कामदेव और पवन मिलकर दसों दिशाओंमें (वंशीकी) विजयघोषणा कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं—अरी सखी! (और-तो-और) स्वयं श्रीगोपाललाल वंशीके वश हो गये हैं।

राग सारंग

[१५५]

जब तैं बंसी स्रवन परी।
तबही तैं मन और भयौ सखि, मो तन सुधि बिसरी ॥ १ ॥
हौं अपने अभिमान रूप, जोबन कैं गरब भरी।
नेकु न कह्यौ कियौ, सुनि सजनी, बादैं आइ ढरी ॥ २ ॥
बिनु देखें अब स्याम मनोहर जुग भरि जात घरी।
सूरदास सुनि आरज पथ तैं कछू न चाड़ सरी ॥ ३॥

सूरदासजी (गोपी-भावसे भावित होकर) कह रहे हैं—'जबसे वंशीकी ध्वनि कानोंमें पड़ी है, सखी ! तभीसे (मेरा) मन कुछ और ही हो गया है और मुझे अपने शरीरकी ही याद भूल गयी है। मैं अपने रूपके अभिमान और यौवनके गर्वसे पूर्ण थी; किंतु सखी ! मनने मेरा तनिक भी कहना नहीं माना, निष्प्रयोजन ही आकर ढुलक (प्रेममें बह) गयी। अब श्यामसुन्दरको देखे बिना एक घड़ी युगके समान बीत रही है; (अरी सखी !) सुनो, आर्य-पथ (कुलमर्यादाके श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करने) से तनिक भी काम नहीं चला (मनको तनिक भी शान्ति नहीं मिली)।

[१५६]

मुरली धुनि स्रवन सुनत भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै॥ १॥
सुर, नर, मुनि सुनत सुधि न, सिव समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिं ढरै॥ २॥
मोहन मुख मुरली मन मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्रवन सुधा सिंधु भरै॥ ३॥

(गोपी कह रही है—सखी!) कानोंसे वंशी-ध्वनि सुन लेनेपर घरमें रहते नहीं बनता; ऐसी कौन-सी समझदार स्त्री है, जो (वंशी सुनकर भी) चित्तमें धैर्य रख सके। उसे सुननेपर (तो) देवता, मनुष्य, ऋषि-मुनि—किसीको भी अपनी सुधि नहीं रहती; शंकरजी (तक) की समाधि टूट जाती है। वायु अपनी गति (चलना) छोड़ देता है, नदियाँ बहतीं नहीं। मोहनके मुखकी वंशी मनको मोहनेवालोंको (भी) अपने वशमें कर लेती है; सूरदासजी कहते हैं कि उसे सुनते ही कानोंमें अमृतका सागर छलकने लगता है।

राग कान्हरौ

[१५७]

(माई री) मुरली अति गरव काहू बदति नाहिं आज।
हरि के मुख कमल देस पायौ सुख राजु॥ १॥
बैठति कर पीठि ढीठि अधर छत्र छाँहि।
राजति अति चँवर चिकुर सुरद सभा माँहि॥ २॥
जमुना के जलै नाहिं जलधि जान देति।
सुरपुर तैं सुर बिमान यह बुलाइ लेति॥ ३॥
स्थावर चर, जंगम जड करति जीति जीति।
बिधि की बिधि मेटि करति अपनी नइ रीति॥ ४॥
बंसी बस सकल सूर, सुर नर मुनि नाग।
श्रीपति हू सुधि बिसरी, याही अनुराग॥ ५॥

(गोपी कहती है—सखी !) अत्यन्त अभिमानके मारे मुरली आज किसीको कुछ गिनती ही नहीं, श्रीहरिके मुखकमलरूपी देशका उसने सुखपूर्ण राज्य पा लिया है। वह ढीठ (किसीकी न सुननेवाली) (श्यामके) हाथरूपी सिंहासनपर ओठरूपी छत्रकी छायामें बैठी है; अलकरूपी चँवर उसपर ढुल रहे हैं और सुन्दर दाँतोंकी सभामें (वह) अत्यन्त शोभित हो रही है। यमुनाके जलको वह समुद्रमें नहीं जाने देती (स्थिर कर देती है) तथा देवलोकसे देवताओंके विमानोंको यह बुला लेती है। स्थिर रहनेवाले पदार्थोंको जीतकर चल और चलपदार्थोंको जीतकर जड बना देती है, ब्रह्माके नियम मिटाकर अपनी नवीन रीति चलाती है। सूरदासजी कहते हैं कि देवता, मनुष्य, मुनि एवं नाग—सभी वंशीके वश हो गये हैं, इस (वंशी) के प्रेमके कारण ही श्रीपति (श्रीकृष्ण) भी आत्मविस्मृत हो गये हैं।

राग गौरी

[१५८]

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।
अँचवति अधर सुधा बस कीन्हें,
अब हम कहा करैं री माई ॥ १ ॥
सरबस लै हरि धर्‍यौ सबन कौ,
औसर देति न होति अघाई।
गाजति, बाजति, चढ़ी दुहूँ कर,
अपनैं सबद न सुनत पराई ॥ २ ॥
जिहिं तन अनल दह्यौ अपनौ कुल,
तासौं कैसैं होत भलाई।
अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै,
बन की ब्याधि माझ घर आई ॥ ३ ॥

(गोपी-भावसे भावित होकर) सूरदासजी कहते हैं—(सखी !) वंशीने कुँवर कन्हाईको मोहित कर लिया है, यह (उन्हें) वशमें करके उनके अधरामृतका पान करती है। सखी ! अब हम (सब)

क्या करें ? सबके सर्वस्व (श्यामसुन्दर)को छीनकर (अपने अधीन करके) रख लिया है; (हमसे बोलने-मिलनेका) उन्हें अवसर ही नहीं देती और न स्वयं (उनसे मिलकर) तृप्त होती है। मोहनके दोनों हाथोंपर चढ़ी गर्जनापूर्वक बजती रहती है, अपने शब्दके आगे दूसरेकी बात सुनती ही नहीं। भला, जिस (बाँस) ने अपने शरीरकी (रगड़से प्रकट हुई) अग्निसे अपने कुल (समूचे बाँसोंके झुरमुट)को भस्म कर दिया, उस (बाँसकी वंशी)से (किसीकी) भलाई कैसे हो सकती है। सुनो ! अब क्या उपाय किया जाय, यह वनका रोग (जलना) घरमें (वंशी बनकर) आ गया ।

राग मलार

[१५९]

मुरली तऊ गुपालै भावति ।
सुनि री सखी, जदपि नँदलालै नाना भाँति नचावति ॥ १ ॥
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति ।
कोमल तन आग्या करवावति, कटि टेढ़ौ ह्वै आवति ॥ २ ॥
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति ।
आपुन पौढ़ि अधर सिज्या पै कर पल्लव पलुटावति ॥ ३ ॥
भृकुटी कुटिल, नैन, नासा पुट हम पै कोप करावति ।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन धर तैं सीस डुलावति ॥ ४ ॥

सूरदासजी (गोपी-भावसे भावित होकर)कहते हैं—सखी ! सुन, यद्यपि वंशी श्रीनन्दलालको अनेक प्रकार (का) नाच नचाती है, तो भी यह गोपालको प्रिय लगती है। उन्हें एक पैरपर खड़ा करके रखती एवं (इस प्रकार) अत्यन्त अधिकार प्रकट करती है; उन सुकुमार-शरीरसे अपनी आज्ञा-का पालन कराती है, इससे उनकी कमर टेढ़ी हो जाती है। श्रीगिरिधरलाल चतुर होकर भी कृतज्ञ होनेके कारण इसके अत्यन्त वशमें हो (इसके सम्मुख) गर्दन झुका देते हैं और यह स्वयं उनके अधररूपी पलंगपर लेटकर उनके पल्लवके समान कोमल करोंसे पैर दबवाती है। टेढ़ी भौंहें, नेत्र और

फड़कते नासिकापुटोंसे हमपर क्रोध कराती है। एक क्षणके लिये भी मोहनको (हमपर) प्रसन्न जानकर धड़परसे उनके मस्तकको घुमा देती है (कि हमपर प्रसन्न न हों)।

[१६०]

स्याम तुम्हारी मदन मुरलिका नेसुक सी जग मोह्यौ।
जेते जीव, जंतु जल थल के, नाद स्वाद सब पोह्यौ ॥ १ ॥
जे तप व्रत किए तरनि सुता तट, पन गहि पीठि न दीन्ही।
ता तीरथ तप के फल लैकैं स्याम सुहागिनि कीन्ही ॥ २ ॥
धरनि धरी, गोबरधन राख्यौ कोमल पानि अधार।
अब हरि लटकि रहत टेढ़े ह्वै तनक मुरलि के भार ॥ ३ ॥
धन्य सुघरी सील कुल छाँड़े, राँची वा अनुराग।
अब हरि सींचि सुधा रस मेटत तन के पहले दाग ॥ ४ ॥
निदरि हमैं अधरनि रस पीवति, पढ़ी दूतिका भाइ।
सूरदास कुंजनि तैं प्रगटी, चेरि सौति भइ आइ ॥ ५ ॥

(गोपी-भावसे भावित) सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दर ! तुम्हारी कामदेवरूपिणी (मादक) नन्हीं-सी वंशीने विश्वको मोहित कर लिया है; जल और स्थलके जितने भी जीव-जन्तु हैं, सबको अपनी ध्वनिके रसमें पिरो लिया (बाँध लिया) है। हमलोगोंने यमुनाकिनारे जितने तप और व्रत दृढ़ निश्चय करके किये, उनसे कभी पीठ नहीं दी (कभी उन्हें छोड़ा नहीं), तीर्थ (पवित्रस्थान) में किये हमारे उसी तपका फल लेकर श्यामसुन्दरने इसे सौभाग्यवती (अपने अधर-सुधाकी एकान्त अधिकारिणी) बना दिया। जिन्होंने (वाराहरूप धारण करके) पृथ्वीको धारण किया, अपने कोमल हाथपर गोवर्धन उठा रखा, वे ही श्रीहरि अब मुरलीके थोड़े-से भारसे टेढ़े होकर झुक जाते हैं। वह सुन्दर घड़ी धन्य थी, जब (हम) शील—सत्स्वभाव और कुल (कीमर्यादा) छोड़कर उनके प्रेममें पग गयीं; (किंतु)अब (वे ही) श्रीहरि

एक बाँसके टुकड़ेसे प्रेम करके (उसे) अपने अधरके अमृत-रससे सिञ्चित कर उसके शरीरमें पड़े पहलेके धब्बे मिटा रहे हैं। हमारा निरादर करके यह उनके अधर-रसको पीती है, दूतीभाव इसने खूब पढ़ा है। कुञ्जों (वन) से उत्पन्न हुई यह चेरी (वंशीरूप दासी) आकर (अब हमारी) सौत हो गयी है।

राग सारंग

[१६१]

सखी री ! मुरली लीजै चोरि।
जिन गुपाल कीन्हे अपने बस, प्रीति सबन की तोरि ॥ १ ॥
छिन इक घर भीतर, निसि बासर, धरत न कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर, कबहूँ अधरनि कटि कबहूँ खोंसत जोरि ॥ २ ॥
ना जानौं कछु मेलि मोहिनी, राखे अँग अँग भोरि।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है-—) सखी ! इस वंशीको चुरा लेना चाहिये, जिसने (हम) सबका प्रेम तुड़ाकर (हटाकर) गोपालको अपने वशमें कर लिया है। वे घरमें भी रात-दिनमें कभी एक क्षणके लिये भी इसे (फेटसे) खोलकर नहीं रखते—कभी हाथमें लेते हैं, कभी ओठोंपर रखते हैं और कभी भली प्रकार कमरमें (फेटमें) खोंस (धँसा) लेते हैं। नहीं जानती कि इसने कौन-सी मोहिनी डालकर (टोनेका प्रयोग करके) मोहनको अङ्ग-प्रत्यङ्गसे भुला (वशमें कर) रखा है। सखी ! सूरदासके स्वामीका मन इसके प्रेमकी रस्सीमें बँध गया है।

राग केदारौ

[१६२]

मुरली अधर सजी बलबीर।
नाद सुनि बनिता बिमोहीं, बिसरे उर के चीर ॥ १ ॥
धेनु, मृग तृन तजि रहे, बछरा न पीवत छीर।
नैन मूदें खग रहे, ज्यौं करत तप मुनि धीर ॥ २ ॥

डुलत नहिं द्रुम पत्र बेली, थकित मंद समीर।
सूर मुरली सब्द सुनि, थकि रहत जमुना नीर ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—सखी!) बलरामजीके भाई श्यामसुन्दरके ओठोंपर वंशी सुशोभित है। उसकी ध्वनि सुनकर व्रजाङ्गनाएँ मोहित हो गयीं, जिससे वे (अपने) वक्षःस्थलके वस्त्रोंकी सम्हाल भी भूल गयीं। गायों और हिरणोंने घास (चरना) छोड़ दिया, बछड़े दूध नहीं पीते; नेत्र बंद किये पक्षी इस प्रकार बैठे हैं, जैसे धैर्यशाली मुनिगण तपस्या कर रहे हों। पेड़ों और लताओंके पत्तेतक नहीं हिलते, मन्द-मन्द चलता हुआ पवन भी स्थिर हो गया है। सूरदासजी कहते हैं कि वंशीका शब्द सुनकर यमुनाजल भी स्तम्भित हो जाता है।

राग मलार

[१६२]

जब हरि मुरली अधर धरी।
गृह व्यौहार तजे आरज पथ, चलत न संक करी ॥ १ ॥
पद रिपु[1] पट अटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी।
सिव सुत बाहन[2] आइ मिले हैं, मन चित बुद्धि हरी ॥ २ ॥
दुरि गए कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी।
उडुपति बिद्रुम, बिंब खिसाने, दामिनि अधिक डरी ॥ ३ ॥
मिलिहैं स्यामहि हंस सुता तट, आनँद उमग भरी।
सूर स्याम कौं मिलीं परसपर, प्रेम प्रवाह ढरी ॥ ४ ॥

जब श्यामने ओठोंपर वंशी रखी, तब व्रजस्त्रियोंने घरके काम-काज तथा आर्यपथ (श्रेष्ठ मर्यादा)का त्याग करके (भी श्यामके पास) जानेमें उन्होंने कोई शङ्का नहीं की। काँटों[1]में वस्त्र उलझ जानेपर भी उसे नहीं सम्हालतीं और न खड़ी होकर (उलझे वस्त्रको) उलटती-पलटती हैं। (मार्गमें) मिले मयूरों[2]ने उनके (मयूरपिच्छधारीका स्मरण दिलाकर)

१. पदरिपु=काँटा। २. सिव-सुत-वाहन=शंकरजीके पुत्र स्वामिकार्तिकके वाहन मयूर।

मन, बुद्धि, चित्त——सबका हरण कर लिया। (उनकी शोभा देखकर लज्जासे) तोते, कबूतर, भौंरे और कोकिल छिप गये। मृगोंको भी अपनी सुधि भूल गयी है। चन्द्रमा, मूँगे, बिम्बाफल (तुलना न करनेके कारण) रुष्ट हो गये हैं, बिजली अत्यन्त डर गयी है। (ऐसे परम सुन्दर) श्यामसुन्दरसे ये (गोपियाँ) आनन्दकी उमंगमें भरी यमुनाकिनारे मिलने जा रही हैं। सूरदासजी कहते हैं कि वे प्रेमके प्रवाहमें ढरकर—द्रवित होकर श्यामसुन्दरसे मिलीं।

राग केदारौ

[१६४]

मुरली कौन सुकृत फल पाए।
अधर सुधा पीवति मोहन की, सबै कलंक गँवाए ॥ १ ॥
मन कठोर, तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिलास बनाएँ।
अंतर सून्य सदा देखियति है, निज कुल बंस सुभाएँ ॥ २ ॥
लघुता अंग, नाहिं कछु करनी, निरखत नैन लगाएँ।
सूरदास प्रभु पानि परसि नित, काम बेलि अधिकाएँ ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है-)वंशीने किन पुण्योंका फल पाया है कि जो अपने सभी कलङ्क (दोष) दूर करके (यह) मोहनके अधरामृतको पीती है ? इसका मन (भीतरी भाग) कठोर है, शरीरमें प्रत्यक्ष गाँठ है, क्रीड़ाके लिये इसमें छेद बने हैं। इसका कुल जो बाँस है, उसके स्वभावानुसार यह भीतरसे सदा ही थोथी देखी जाती है। (इसके) शरीरमें हल्कापन है, कोई उत्तम कर्म भी नहीं हैं; (फिर भी) सूरदासके स्वामी नेत्र लगाये (एकाग्र किये) इसे देखते ही रहते हैं तथा नित्य अपने हाथोंसे स्पर्श कर-कर (हमारे) कामरूपी लताको बढ़ाते रहते हैं।

१. हंस-सुता-तट=सूर्यकन्या यमुना-किनारे।

राग पूरबी

[१६५]

नंद नँदन सुघराई बाँसुरी बजाई।
सरगम सुनीकें साधि, सप्त सुरनि गाई ॥ १ ॥
अतीत अनागत सँगीत, तान बिच मिलाई।
सुर तालऽरु नृत्य ध्याइ, मृदँग पुनि बजाई ॥ २ ॥
सकल कला गुन प्रबीन, नवल बाल भाईं।
सूरज प्रभु अरस परस, रीझि, सब रिझाईं ॥ ३ ॥

श्रीनन्दनन्दनने बड़े सुन्दर ढंगसे वंशी बजायी, भली प्रकार स-र-ग-म साधकर सातों स्वरोंमें उन्होंने गान किया। संगीतके मध्यमें 'अतीत' एवं 'अनागत' के साथ तान मिलायी। स्वर, ताल तथा नृत्यका विचार करके फिर मृदङ्ग बजायी। समस्त कलाओं और गुणोंमें वे निपुण हैं, व्रजकी नवयुवतियाँ उन्हें प्रिय हैं। सूरदासके स्वामीने उनपर प्रसन्न होकर उनका परस्पर स्पर्श करके (उन्हें) प्रसन्न किया।

राग कल्यान

[१६६]

हरषि मुरली नाद स्याम कीन्हौ।
करषि मन तिहु भुवन, सुनि थकि रह्यौ पवन,
ससिहि भूल्यौ गवन, ग्यान लीन्हौ ॥ १ ॥
तारका गन लजे, बुद्धि मन मन सजे,
तबै तनु सुधि तजे, सब्द लाग्यौ।
नाग नर मुनि थके, नभ धरनि तन तके,
सारदा स्वामि, सिव ध्यान जाग्यौ ॥ २ ॥
ध्यान नारद टर्‍यौ, सेस आसन चल्यौ,
गई बैकुंठ धुनि, मगन स्वामी।
कहत श्री प्रिया सौं राधिका रमन, ए
सूर प्रभु स्याम के दरस कामी ॥ ३ ॥

प्रसन्न होकर श्यामसुन्दरने वंशीध्वनि की, उसे सुनकर तीनों लोकोंका मन आकर्षित हो गया, वायु स्थिर (गतिहीन) हो गयी, चन्द्रमा चलना भूल गये और सबकी सचेतनता (वंशी-ध्वनिने) छीन ली। तारागण लज्जित हो गये, सबके मन और बुद्धि उसके माधुर्यमें अटक गये और वंशीका शब्द लग जानेसे उस समय सबको (अपने-अपने) शरीरोंकी सुधि भूल गयी। नाग, गन्धर्व, मुनिगण—सभी विमुग्ध हो आकाशसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे, ब्रह्माजी और शंकरजी भी ध्यान (समाधि) से जग गये। देवर्षि नारदका ध्यान टूट गया, शेषनागका आसन डोल गया और वंशीध्वनिके वैकुण्ठ पहुँचनेपर वहाँके स्वामी श्रीनारायण अपनी प्रियतमा (श्रीलक्ष्मीजी) से कहने लगे—'ये श्रीराधिकारमण (श्रीकृष्णचन्द्र) हैं' (और यों कहकर) सूरदासके स्वामी श्यामसुन्दरके दर्शनकी वे (श्रीनारायण) भी इच्छा करने लगे।

राग बिहागरौ

[१६७]

मुरली धुनि बैकुंठ गई।
नारायन कमला सुनि दंपति अति रुचि हृदैं भई ॥ १ ॥
सुनौ प्रिया ! यह बानी अद्भुत, बृंदाबन हरि देखौ।
धन्य धन्य श्रीपति मुख कहि कहि, जीवन ब्रज कौ लेखौ ॥ २ ॥
रास बिलास करत नँद नंदन, सो हम तैं अति दूरि।
धनि बन धाम, धन्य ब्रज धरनी, उड़ि लागै जौ धूरि ॥ ३ ॥
यह सुख तिहू भुवन मैं नाहीं, जो हरि सँग पल एक।
सूर निरखि नारायन इकटक, भूले नैन निमेष ॥ ४ ॥

वंशीकी ध्वनि वैकुण्ठ पहुँच गयी, दम्पति श्रीलक्ष्मी-नारायणने उसे सुना तो उनके हृदयमें (उसको सुनते ही रहनेकी) अत्यन्त रुचि जाग उठी। (श्रीनारायण बोले–) 'लक्ष्मीजी ! यह अद्भुत शब्द सुनो और वृन्दावनमें श्रीकृष्णचन्द्रको देखो।' (इतना ही नहीं,) श्रीपतिने अपने मुखसे बार-बार 'धन्य-धन्य' कहकर 'व्रज (वासियों)के जीवनको सराहा'—उसकी

प्रशंसा की। (उस वृन्दावनमें) श्रीनन्दनन्दन (जो) रासक्रीड़ा कर रहे हैं, वह हमसे अत्यन्त दूर है (हम उसे देखनेके अधिकारी नहीं); (फिर भी) वृन्दावनधाम धन्य है, व्रजभूमि धन्य है, कदाचित् वहाँकी धूलि उड़कर हमें भी लग जाती (तो हम भी धन्य हो जाते)। श्यामसुन्दरके साथ एक पलका जो आनन्द है, वह आनन्द तीनों लोकोंमें कहीं नहीं है। सूरदासजी कहते हैं कि श्रीनारायण एकटक मोहनको देखते हुए पलक गिराना भी भूल गये हैं।

राग कल्यान

[१६८]

जब हरि मुरली नाद प्रकास्यौ।
जंगम जड, थावर चर कीन्हे, पाहन जलज बिकास्यौ ॥ १ ॥
स्वर्ग पताल दसौं दिसि पूरन, धुनि आच्छादित कीन्हौ।
निसि हरि कलप समान बढ़ाई, गोपिनि कौं सुख दीन्हौ ॥ २ ॥
मैमत भए जीव जल थल के, तन की सुधि न सम्हार।
सूर स्याम मुख बेनु मधुर धुनि उलटे सब ब्यौहार ॥ ३ ॥

जब श्यामसुन्दरने वंशीमेंसे स्वर निकाला, तब चलनेवाले जड (स्थिर) और जड पदार्थ सचल हो उठे तथा पत्थरोंपर कमल खिल गये। स्वर्ग, पाताल तथा दसों दिशाएँ (उस ध्वनिसे) पूर्ण हो गयीं और (उसने) आकाशको (भी) ढक लिया। श्यामसुन्दरने वह रात्रि कल्पके समान बड़ी कर दी और गोपियोंको (अलौकिक) आनन्द दिया। जल और स्थलके सभी जीव उन्मत्त हो उठे, किसीको शरीरका स्मरण एवं सम्हाल नहीं रही। सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दरके मुखसे बजायी गयी वंशीकी मधुर ध्वनिने (जगत्‌का) सब व्यवहार ही उलट दिया।

राग पूरबी

[१६९]

मुरली गति बिपरीति कराई।
तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा रमन बजाई ॥ १ ॥

बछरा थन नाहीं मुख परसत, चरति नाहिं तृन धेनु ।
जमुना उलटी धार चली बहि, पवन थकित सुनि बेनु ॥ २ ॥
बिह्वल भए, नाहिं सुधि काहू, सुर गंध्रब, नर नारि ।
सूरदास सब चकित जहाँ तहँ ब्रज-जुवतिनि सुखकारि ॥ ३ ॥

(श्यामसुन्दरकी) वंशीने (सम्पूर्ण) जगत्‌की चाल ही उलटा दी, श्रीराधारमणद्वारा बजायी गयी (उस वंशी) की गर्जना तीनों भुवनों (आकाश, पाताल और पृथ्वी) में भरपूर समा गयी (व्याप्त हो गयी) । (उसे सुनकर) बछड़े (अपनी माँ—गायोंका) थन नहीं छूते—दूध नहीं पीते, गायें तृण नहीं चरतीं, श्रीयमुनाजीकी धारा उलटी (दिशामें) बहने लगी और पवन रुक गया--निश्चल हो गया । सुर, गन्धर्व, नर, नारी (स्त्रियाँ) भी विमुग्ध हो गये, किसीको भी (अपनी) सुधि नहीं रही—सब विस्मृत हो गये । सूरदासजी कहते हैं—व्रजयुवतियोंको सुख देनेवाली उस वंशीकी ध्वनिको सुनकर जहाँ-तहाँ (जिसने भी सुना) सभी चकित हो गये ।

राग केदारौ

[१७०]

मुरली सुनत अचल चले ।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल बृच्छ फले ॥ १ ॥
पै स्रवत गोधननि थन तैं, प्रेम पुलकित गात ।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात ॥ २ ॥
सुनत खग मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि ।
धरनि उमँगि न माति उर मैं, जती जोग बिसारि ॥ ३ ॥
ग्वाल गृह गृह सबै सोवत, उहै सहज सुभाइ ।
सूर प्रभु रस रास के हित सुखद रैनि बढ़ाइ ॥ ४ ॥

वंशीध्वनि सुनकर अचल—जड पदार्थ भी चलने (द्रवित होने) लगे, चलनेवाले जीव स्तम्भित (स्थिर) हो रहे, पत्थरोंसे जलके झरने

झरने लगे और कभी न फलनेवाले वृक्षोंमें भी फल आ गये। गायोंके थनोंसे दूध टपकने लगा और उनका शरीर अनुरागवश रोमाञ्चित हो उठा, सूखे वृक्षोंमें भी पल्लव अङ्कुरित हो गये तथा पेड़ोंके पत्ते चञ्चल हो उठे। उस ध्वनिको सुनते ही पक्षी तथा पशुओंने ऐसी चुप्पी साध ली कि चित्रमें लिखे-से लगने लगे; पृथ्वीकी उमंग उसके हृदयमें नहीं समाती (नये तृण बनकर प्रकट हो रही है) और योगियोंको योग करना भूल गया है। किंतु गोपगण उसी सहज स्वाभाविक ढंगसे अपने घरोंमें सो रहे हैं; क्योंकि सूरदासके स्वामीने रासका आनन्द लेने एवं देनेके लिये सुखदायिनी रात्रि बढ़ा दी है।

[१७१]

रास रस मुरली ही तैं जान्यौ।
स्याम अधर पै बैठि नाद कियौ, मारग चंद हिरान्यौ ॥ १ ॥
धरनि जीव जल थल के मोहे, नभ मंडल सुर थाके।
तृन द्रुम सलिल पवन गति भूले, स्रवन सब्द पर्‌यौ जाके ॥ २ ॥
बच्यौ नाहिं पाताल रसातल, कितक उदै लौं भान।
नारद सारद सिव यह भाषत, कछु तनु रह्यौ न स्यान ॥ ३ ॥
यह अपार रस रास उपायौ, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने, स्याम अधर रस बेनु ॥ ४ ॥
कहत रमा सौं सुनि सुनि प्यारी, बिहरत हैं बन स्याम।
सूर कहाँ हम कौं वैसौ सुख, जो बिलसति ब्रज बाम ॥ ५ ॥

रासका आनन्द तो वंशीसे ही जाना (अनुभव किया) गया; उसने श्यामसुन्दरके ओठपर बैठकर ऐसी ध्वनि की कि चन्द्रमा अपना मार्ग (ही) भूल गये। पृथ्वीके जलचर और स्थलचर सभी जीव मोहित हो गये, आकाशमण्डलमें देवता स्तब्ध रह गये। (यही नहीं) तिनके, वृक्ष, जल, वायु—जिसके भी कानमें वह शब्द पड़ा, वही अपनी दशा भूल गया। जहाँ सूर्योदय होता है, वह उदयाचल

तो कितनी दूर है, रसातल और पाताल भी (उससे) नहीं बच सके। देवर्षि नारद, सरस्वतीजी और शंकरजी भी यह कहने लगे कि 'हमें अपने शरीरका कोई भान नहीं रहा। श्यामसुन्दरने रास-रूप इस अपार रसकी सृष्टि की है, जिसे न तो कभी सुना था, न नेत्रोंसे देखा था।' (और-तो और, साक्षात्) श्रीनारायण (भी) श्यामसुन्दरके अधर-रस-से पूरित वंशीध्वनि सुनकर ललचा उठे। सूरदासजीके शब्दोंमें वे श्रीलक्ष्मीजीसे कहने लगे—'प्यारी, सुनो! सुनो!! श्यामसुन्दर वृन्दावनमें क्रीड़ा कर रहे हैं; व्रजाङ्गनाएँ (उनके साथ क्रीड़ा करके) जिस आनन्दका उपभोग कर रही हैं, वैसा आनन्द भला, हमें कहाँ प्राप्य है।'

[१७२]

जीती जीती है रन बंसी।
मधुकर सूत बदत, बंदी पिक, मागध मदन प्रसंसी॥ १॥
मथ्यौ मान बल दर्प, महीपति जुवति जूथ गहि आने।
धुनि कोदंड ब्रह्मंड भेद करि, सुर सनमुख सर ताने॥ २॥
ब्रह्मादिक, सिव, सनक सनंदन, बोलत जै जै बाने।
राधा पति सरबस अपनौ दै, पुनि ता हाथ बिकाने॥ ३॥
खग मृग मीन सुमार किए सब जड़ जंगम जित भेष।
छाजत छत, मद मोह कवच कटि, छूटे नैन निमेष॥ ४॥
अपनी अपनी ठकुराइति की काढ़ति है भुव रेख।
बैठी पानि पीठि गर्जति है, देति सबनि अवसेष॥ ५॥
रबि कौ रथ लै दियौ सोम कौं, षट दस कला समेत।
रच्यौ जन्य रस रास राजसू बृंदा बिपिन निकेत॥ ६॥
दान मान परधान प्रेम रस बढ्यौ माधुरी हेत।
अधिकारी गोपाल तहाँ है, सूर सबनि सुख देत॥ ७॥

वंशी युद्धमें जीत गयी! जीत गयी! भौंरे ही सूत हैं और कोकिल बंदीजन (भाट) हैं, जो उसका यशोगान करते हैं; स्वयं कामदेव उसकी प्रशंसा करनेवाला मागध (भाट) है। युवतियोंके दलरूपी राजाओंको मानरूपी बलका

जो घमंड था, उसे मथ (मर्दन) कर (वह उन्हें) पकड़ लायी। ध्वनिरूपी धनुषसे ब्रह्माण्डका भेदन कर उसने स्वररूपी बाण सम्मुख ही तान (चढ़ा) रखे हैं। ब्रह्मा आदि देवता, (साक्षात्) भगवान् शिव तथा सनक-सनन्दनादि ऋषिगण—सब उसकी जय-जयकार बोलते हैं; श्रीराधाकान्तने उसे अपना सर्वस्व दे दिया है और फिर स्वयं भी उसके हाथ बिक गये हैं। पक्षी, पशु एवं मछलियाँ ही नहीं, स्थावर तथा जङ्गम जितने भी प्राणी जिस-जिस वेषमें थे, सबकी गणना कर ली (सबको प्रजा बना लिया)। छिद्र ही मानो (युद्धमें लगे) घाव शोभा दे रहे हैं, उन्मत्त करने तथा मोहित करनेकी शक्तिका कवच कमरमें बाँध रखा है, लोगोंका पलक गिरना भी (उसके भयसे) छूट गया है। केवल अपनी प्रभुताकी रेखा ही पृथ्वीपर खींचती है (दूसरे किसीकी कुछ चलने नहीं देती है); श्यामसुन्दरके हाथरूपी सिंहासनपर बैठी गर्जना करती हुई सबको अपना जूठा (मोहनका अधर-रस) देती है। षोडश कलाओंके साथ सूर्यका रथ छीनकर (इसने) चन्द्रमाको दे दिया(इससे रात्रि बढ़ गयी, सूर्योदय होता ही नहीं); वृन्दावन-रूपी भवनमें रासजन्य रसरूपी राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया है। यहाँ दान और मानसे भी बढ़कर प्रेमरस है, जो माधुर्यकी इच्छासे बढ़ गया है। सूरदासजी कहते हैं कि वहाँ (इस राजसूय यज्ञमें) गोपाल-से अधिकारी (व्यवस्था-संचालक) हैं, वे सबको आनन्द दे रहे हैं।

राग जैतश्री

[१७३]

सुनिए, सुनिए हो धरि ध्यान, सुधा रस मुरली बाजै।
स्याम अधर पै बैठि बिराजति, सप्त सुरन मिलि साजै ॥ १ ॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि, सुनि बेनु मधुर कल गान।
मन गति पंगु भई ब्रज जुवतीं, गंध्रब मोहे तान ॥ २ ॥
खग मृग थके फलनि तृन तजि कैं, बछरा पियत न छीर।
सिद्ध समाधि थके चतुरानन लोचन मोचत नीर ॥ ३ ॥

महादेव की नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत।
ध्यान टर्‌यौ, धुनि सौं मन लाग्यौ, सुर मुनि भए सचेत ॥ ४ ॥
जमुना उलटि बही अति व्याकुल, मीन भए बलहीन।
पसु पच्छी सब थकित भए हैं, रहे इकटक लौलीन ॥ ५ ॥
इंद्रादिक, सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आवेस।
घोष तरुनि आतुर उठि धाईं, तजि पति पुत्र अदेस ॥ ६ ॥
श्रीबृंदाबन कुंज कुंज प्रति अति बिलास आनंद।
अनुरागी पिय प्यारी कैं सँग रस राँचैं सानंद ॥ ७ ॥
तिहूँ भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल।
थकित भए तारागन सुनि कैं, चंद भयौ बेहाल ॥ ८ ॥
नटवर भेष धरैं नँद नंदन निरखि बिवस भयौ काम।
उर बनमाल चरन पंकज लौं, नील जलद तन स्याम ॥ ९ ॥
जटित जराव मकर कुंडल छबि, पीत बसन सोभाइ।
बृंदाबन रस रास माधुरी निरखि सूर बलि जाइ ॥१०॥

सुनो ! ध्यानपूर्वक सुनो ! अमृतरससे पूर्ण वंशी बज रही है; श्यामसुन्दरके ओठपर सुन्दर रीतिसे बैठी सातों स्वरोंसे मिलकर शोभा पा रही है। वंशीका मधुर मनोहर गान सुनकर सबकी सुधि, बुद्धि और गति (शरीरका स्मरण एवं सोचनेकी शक्ति) भूल गयी, व्रजकी युवतियोंके मन-की गति पङ्गु हो गयी (उनका मन निश्चल हो गया) और उसकी तानसे गन्धर्व (भी) मोहित हो गये । पक्षी और पशु विमुग्ध हो गये, फल (खाना) तथा घास (चरना) उन्होंने छोड़ दिया, बछड़े दूध नहीं पीते। सिद्धलोग समाधिसे विरत हो गये और ब्रह्माजी नेत्रोंसे प्रेमाश्रु गिराने लगे। महादेवजीकी नाड़ी (हृदय-गति) रुक जानेसे (वे) अत्यन्त मूर्छित (समाधिमग्न) हो गये; देवता एवं मुनियोंका ध्यान टूट गया तथा वंशीध्वनिमें मन लग गया। वे (ध्यानसे) जाग गये। अत्यन्त व्याकुल (प्रेम-विभोर) होकर यमुना उलटी बहने लगी, मछलियाँ भी बलरहित (शिथिल) हो गयीं, पशु-पक्षी सब विमुग्ध हुए एकटक देखते

(ध्वनि-श्रवणमें) निमग्न हो गये । इन्द्रादि (देवता), सनकादि (मुनिगण), देवर्षि नारद तथा सरस्वतीजीको वह ध्वनि सुनकर (प्रेमका) आवेश हो गया और व्रजकी तरुणियाँ पति-पुत्रादिके आदेश (निषेध) की भी परवा न करके आतुरतापूर्वक (वंशी सुनते ही) दौड़ पड़ीं। श्रीवृन्दावनके प्रत्येक कुञ्जमें अतिशय आनन्दकी क्रीडा हो रही है, अनुराग (प्रेम) भरे प्रियतम (श्रीकृष्ण) प्रियतमा (श्रीराधा) के साथ आनन्दपूर्वक रासलीला कर रहे हैं । वंशीका शब्द आकाश, पृथ्वी, पाताल—तीनों लोकोंमें पूर्ण होकर व्यक्त हो रहा है, उसे सुनकर तारागण स्तम्भित हो गये हैं एवं चन्द्रमा व्याकुल हो गया है । श्रीनन्दनन्दनने श्रेष्ठ नटका-सा वेष धारण किया है, जिसे देखकर कामदेव भी विवश (मोहित) हो गया। उनका शरीर नवीन मेघके समान श्याम है, वक्षःस्थलपर चरण-कमलतक लटकती वनमाला है । (कानोंमें) रत्नजटित मकराकृत कुण्डल शोभा दे रहे हैं, कमरमें पीताम्बर सुशोभित है, वृन्दावनमें रासके आनन्दकी यह मधुरिमा देखकर सूरदास बलिहारी जाता है ।

राग गौरी

[१७४]

छबीले, मुरली नैक बजाउ ।
बलि बलि जात सखा यह कहि कहि, अधर सुधा रस प्याउ ॥ १ ॥
दुरलभ जनम लहब बृंदाबन, दुरलभ प्रेम तरंग ।
ना जानिए बहुरि कब ह्वैहै स्याम ! तिहारौ संग ॥ २ ॥
बिनती करत सुबल श्रीदामा, सुनैं स्याम दै कान ।
या रस कौं सनकादि सुकादिक करत अमर मुनि ध्यान ॥ ३ ॥
कब पुनि गोप भेष ब्रज धरिहौ, फिरिहौ सुरभिनि साथ ।
कब तुम छाक छीनि कैं खैहौ, हे गोकुल के नाथ ॥ ४ ॥
अपनी अपनी कंध कमरिया, ग्वालनि दई डसाइ ।
सौंह दिवाइ नंद बाबा की रहे सकल गहि पाइ ॥ ५ ॥

सुनि सुनि दीन गिरा मुरलीधर चितए मृदु मुसकाइ।
गुन गंभीर गुपाल मुरलि प्रिय लीन्ही तबै उठाइ॥ ६॥
धरि कैं अधर बैंन मन-मोहन कियौ मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल थल के, सुनि वारे तन प्रान॥ ७॥
चलत अधर भृकुटी कर पल्लव, नासा पुट जुग नैन।
मानो नर्तक भाव दिखावत, गति लै नायक मैन॥ ८॥
चमकत मोर चंद्रिका माथें, कुंचित अलक सुभाल।
मानौ कमल कोष रस चाखन उड़ि आई अलि माल॥ ९॥
कुंडल लोल कपोलनि झलकत, ऐसी सोभा देत।
मानौ सुधा सिंधु मैं क्रीड़त मकर पान के हेत॥१०॥
उपजावत गावत गति सुंदर, अनाघात के ताल।
सरबस दियौ मदन मोहन कौं प्रेम हरषि सब ग्वाल॥११॥
लोलित बैजंती चरनन पै, स्वासा पवन झकोर।
मनो गरबि सुरसरि बहि आई ब्रह्म कमंडल फोरि॥१२॥
डुलति लता नहिं, मरुत मंद गति सुनि सुंदर मुख बैन।
खग, मृग, मीन अधीन भए सब, कियौ जमुन जल सैन॥१३॥
झलमलाति भृगु पद की रेखा, सुभग साँवरे गात।
मनु षट बिधु एकै रथ बैठे, उदै कियौ अधिरात॥१४॥
बाँके चरन कमल, भुज बाँके, अवलोकनि जु अनूप।
मानौ कलप तरोवर बिरवा अवनि रच्यौ सुर भूप॥१५॥
अति सुख दियौ गुपाल सबनि कौं, सुखदायक जिय जान।
सूरदास चरनन रज माँगत, निरखत रूप निधान॥१६॥

(गोपियाँ कहती हैं—) 'शोभामय मोहन! तनिक वंशी तो बजाओ!' सखा यह कहकर बार-बार बलैयाँ लेते हैं कि '(वंशी-ध्वनिके रूपमें) अपने अधरके अमृतका रस पिलाओ! इस वृन्दावनमें जन्म लेना दुर्लभ और (जन्म होनेपर भी) प्रेमकी तरङ्ग (प्रेमकी प्राप्ति और भी) दुर्लभ है। श्यामसुन्दर! पता नहीं फिर कब तुम्हारा साथ हो।' (इस प्रकार)

सुबल, श्रीदामा आदि सखा प्रार्थना करते (और कहते) हैं—'कन्हाई ! कान देकर (ध्यानपूर्वक) सुनो ! इस (तुम्हारे साथ रहनेके) आनन्दका सनकादि ऋषिगण, शुकदेवादि मुनिगण तथा देवता ध्यान किया करते हैं (उन्हें भी यह दुर्लभ है); पता नहीं फिर कब व्रजमें तुम गोपका वेष धारण करोगे और गायोंके साथ (वन-वन) घूमोगे; और हे गोकुलके स्वामी ! तुम (हम-लोगोंसे) छीन-छीनकर 'छाक' (घरसे आया भोजन) कब खाओगे।' (यह कह-कर) गोपकुमारोंने अपने-अपने कंधोंपर रखा कम्बल बिछा दिया और श्री-नन्दबाबाकी शपथ दिलाकर सब (श्यामसुन्दरके) चरण पकड़कर बैठ गये। वंशीधरने (उनकी) बार-बार दीनता (नम्रता) पूर्ण वाणी सुन मधुर-मुस्कानके साथ (उनकी ओर) देखा और उन गम्भीर गुणवाले गोपालने उसी समय अपनी प्यारी मुरली उठा ली। (फिर) मनमोहनने ओठपर वंशी रख मधुर ध्वनिसे गान किया, जिसे सुनकर जल-स्थलके सभी जीव मोहित हो गये और सबने शरीर और प्राण (उस गानपर) न्योछावर कर दिये। (मोहनके) ओठ, भौंहें, पल्लवके समान हाथ, नासिकापुट तथा दोनों नेत्र (वंशी बजाते समय ऐसे) चल रहे थे, मानो गति लेकर कामदेवरूप नायक नृत्यके भाव दिखला रहा हो। मस्तकपर मयूरपिच्छकी चन्द्रिका चमक रही है और सुन्दर ललाटपर घुँघराली अलकें हैं, जो ऐसी लगती हैं मानो (मुखरूप) कमल-कलीके मकरन्दका स्वाद लेने भौंरोंका झुंड उड़कर आ गया हो। चञ्चल कुण्डल कपोलोंपर झलकते हुए ऐसी शोभा देते हैं, मानो अमृतके समुद्रमें उसे पीनेके लिये (दो) मगर खेल रहे हों। अनागत (एक तालभेद) का आश्रय लेकर गान करते और सुन्दर गति उत्पन्न करते हुए (देखकर) मदनमोहनको प्रेमसे हर्षित होकर सब गोपबालकोंने (अपना) सर्वस्व दे दिया। श्वास-वायुके झकोरेसे वैजयन्तीमाला चरणोंपर झूल रही है, मानो ब्रह्माके कमण्डलुको फोड़कर गङ्गाजी गर्वपूर्वक बह आयी हों। मोहनके सुन्दर मुखकी वंशीध्वनि सुनकर लताएँ हिलतीं नहीं, वायुकी गति धीमी हो गयी। पक्षी, पशु, मछलियाँ आदि सभी उस स्वरके वश हो गये, यमुनाजल भी सो गया (गतिहीन हो गया)। गोपालके मनोहर श्याम शरीरपर (पाँच

उँगलियों तथा एड़ीसे युक्त) भृगुपदका चिह्न इस प्रकार झलमला (चमक) रहा है, मानो एक ही रथमें बैठे छः चन्द्रमा आधी रातमें उदय हुए हों । चरण-कमल सुन्दर हैं, भुजाएँ सुन्दर हैं और देखनेकी भङ्गी (ऐसी) अनुपम है, मानो देवराज इन्द्रने पृथ्वीपर कल्पवृक्षका पौधा लगा दिया हो । सब (गोपकुमारों) को अपने चित्तमें सुख देनेवाला समझकर गोपालने (उन्हें) अत्यन्त सुख दिया । सूरदास इन रूप-राशिको देखता हुआ (उनसे) उनके चरणोंकी धूलि माँगता है ।

राग सारंग

[१७५]

रीझत ग्वाल, रिझावत स्याम ।
मुरलि बजावत, सखन बुलावत,
सुबल सुदामा लै लै नाम ॥ १ ॥
हँसत सखा सब तारी दै दै,
नाम हमारौ मुरली लेत ।
स्याम कहत अब तुमहु बुलावौ,
अपने कर तैं ग्वालनि देत ॥ २ ॥
मुरली लै लै सबै बजावत,
काहू पै नहिं आवै रूप ।
सूर स्याम तुम्हरैं मुख बाजत,
कैसैं देखौ राग अनूप ॥ ३ ॥

गोपकुमार प्रसन्न हो रहे हैं और श्यामसुन्दर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये वंशी बजाते हुए सुबल, श्रीदामा आदि नाम ले-लेकर अपने सखाओंको बुला रहे हैं । सब सखा ताली बजा-बजाकर हँसते हैं और कहते हैं—'वंशी हमारा नाम लेती है ।' श्यामसुन्दर कहते हैं—'अब तुम भी (इसे) इसी प्रकार (बजाकर) बुलाओ,' (और यह कहकर) अपने हाथसे वंशी गोप-कुमारोंको देते हैं । वंशी ले-लेकर सब बजाते हैं, किंतु उस प्रकार बजाना

किसीको आता नहीं है। 'सूरदासजी'के शब्दोंमें वे कहते हैं—'श्याम ! देखो, यह तो तुम्हारे मुखसे कैसे (किस रीतिसे) अनुपम रागोंमें बजती है (हमसे तो वैसे बजती ही नहीं)।

राग टोड़ी

[१७६]

हरि के बराबरि बेनु कोऊ न बजावै।
जग जीवन बिदित मुनिन नाच जो नचावै ॥ १ ॥
चतुरानन, पंचानन, सहसानन ध्यावै।
ग्वाल बाल लिए जमुन कच्छ बछ चरावै ॥ २ ॥
सुर, नर, मुनि अखिल लोक, कोउ न पार पावै।
तारन तरन अगिनित गुन निगम नेति गावै ॥ ३ ॥
तिन कौं जसुमति आँगन ताल दै नचावै।
सूरज प्रभु कृपा धाम भक्त बस कहावै ॥ ४ ॥

श्यामसुन्दरके समान वंशी कोई नहीं बजा पाता, ये तो संसारके प्रसिद्ध जीवनाधार हैं, जो मुनियोंको भी (अपनी मोहिनीसे) नाच नचाते हैं। ब्रह्माजी, शंकरजी और शेषनाग उनका ध्यान करते हैं, जो गोपकुमारों-को साथ लेकर यमुनाजीके कछारमें बछड़े चराते हैं। देवता, मनुष्य, मुनिगण तथा समस्त लोकोंमें कोई भी इनका (इनकी महिमाका) पार नहीं पाता; ये तारण-तरण (मोक्षदाताओंको भी मुक्त करनेवाले) हैं और इनके गुण अगणित हैं, (जिसके कारण) वेद भी 'नेति-नेति' (ऐसे नहीं, ऐसे नहीं) कहकर इनका गान करते हैं। उन्हींको यशोदाजी (अपने) आँगनमें ताली बजाकर नचाया करती हैं; क्योंकि सूरदासके स्वामी कृपाधाम हैं और भक्तोंके वशमें कहे जाते हैं।

[१७७]

मुरली सुनत देह गति भूलीं।
गोपीं प्रेम हिंडोरैं झूलीं ॥ १ ॥

कबहूँ चकित जु होहिं सयानी।
स्वेद चलै द्रवि जैसैं पानी ॥ २ ॥
धीरज धरि इक एक सुनावै।
इक कहि कैं आपहि बिसरावै ॥ ३ ॥
कबहूँ सुधि, कबहूँ सुधि नाहीं।
कबहूँ मुरली नाद समाहीं ॥ ४ ॥
कबहूँ तरुनीं सब मिलि बोलैं।
कबहूँ रहैं धीर, नहिं डोलैं ॥ ५ ॥
कबहूँ चलैं, कबहुँ फिरि आवैं।
कबहुँ लाज तजि लाज लजावैं ॥ ६ ॥
मुरली स्याम सुहागिनि भारी।
सूरदास प्रभु की बलिहारी ॥ ७ ॥

मुरलीकी ध्वनि सुनते ही देहकी दशा भूलकर गोपियाँ प्रेमके झूलेमें झूलने लगीं (प्रेमके नशेमें झूमने लगीं)। वे चतुर गोपियाँ कभी आश्चर्य-चकित हो जाती हैं; (प्रेमवश उनके शरीरसे) पसीना ऐसे छूटता है जैसे पानी बह रहा हो। (कोई) एक धैर्य धारण करके दूसरीको सुनाती है और कोई उसका वर्णन करके अपने आपको भूल जाती है। कभी (किसीको शरीरका) स्मरण रहता है और कभी (किसीको वह भी) स्मरण नहीं रहता; कभी (कोई-कोई) वंशीकी ध्वनिमें ही निमग्न हो जाती है। कभी सब युवतियाँ मिलकर बोलती (बातें करती) हैं और कभी स्थिर, शान्त हो जाती हैं, हिलतींतक नहीं। कभी (वे आगे) चलती हैं और कभी लौट आती हैं तथा लज्जा छोड़कर लज्जाको भी लज्जित करती हैं (अत्यन्त संकोचहीन हो जाती हैं)। वंशी श्यामकी अत्यन्त लाड़िली है; सूरदास (ऐसे अपने) स्वामीकी बलिहारी है (जिन्होंने बाँसकी वंशीको भी प्रेमपात्री बना लिया)।

राग बिहागरौ

[१७८]

अधर धरि मुरली स्याम बजावत।
सारँग, गौड़ औ नटनारायन, गौरी सुरहि सुनावत ॥ १ ॥
आपु भए रस बस ताही कें, औरन बस करवावत।
ऐसौ को त्रिभुवन जल थल मैं, जो सिर नाहिं धुनावत ॥ २ ॥
सुभग मुकट कुंडल मनि स्रवनन देखत नारिनि भावत।
सूरदास प्रभु गिरिधर नागर मुरली धरन कहावत ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दर ओठपर रखकर वंशी बजा रहे हैं; सारंग, गौड़, नट-नारायण और गौरी आदि रागोंके स्वर (आलाप) सुनाते हैं। स्वयं उसी (वंशीध्वनि)की मधुरताके वश हो गये हैं और दूसरोंको भी वश करा रहे हैं। तीनों लोकोंमें जल या स्थलका निवासी ऐसा कौन है, जो (वंशी सुनकर) मस्तक नहीं हिलाने लगता। (मोहनका) मनोहर मुकुट और रत्न-जटित कानोंके कुण्डल देखनेमें स्त्रियोंको (अत्यन्त) प्रिय लगते हैं; सूरदासजीके चतुर स्वामी जो अबतक गिरिधर कहलाते थे, (अब) मुरलीधर कहलाते हैं।

राग सारंग

[१७९]

अधर रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षट रितु तप कीन्हौ, सो रस पियति सभागी ॥ १ ॥
कहाँ रही, कहँ तैं यह आई, कौनैं याहि बुलाई ?
चकित भई कहति ब्रजबासिनि, यह तौ भली न आई ॥ २ ॥
सावधान क्यौं होति नाहिं तुम, उपजी बुरी बलाई।
सूरदास प्रभु हम पै ताकौं कीन्ही सौति बजाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—वंशी (मोहनके) अधर-रसको लूटने लगी है, जिस रसको पानेके लिये हमलोगोंने छहों ऋतुओंमें तपस्या की, उसी रसका यह भाग्यशालिनी पान कर रही है। यह (वंशी अबतक) कहाँ थी?

कहाँसे (यहाँ) आ गयी ? इसे किसने बुलाया ? व्रजवासिनी स्त्रियाँ आश्चर्य-में भरकर कह रही हैं—यह तो अच्छी नहीं आयी। तुम (सब) सावधान क्यों नहीं होतीं, यह बुरी आफत खड़ी हुई है। (हमारे) स्वामीने हमारे ऊपर उसे डंकेकी चोट सौत बना दिया है।

राग मलार

[१८०]

अधर मधु कत मूँई हम राखि।
संचित किएँ रहीं स्रद्धा सौं, सकीं न सकुचनि चाखि ॥ १ ॥
सहि सहि सीत, जाइ जमुना जल, दीन वचन मुख भाषि।
पूजि उमापति बर पायौ हम, मनहीं मन अभिलाषि ॥ २ ॥
सोइ अब अमृत पिवत है मुरली, सबहिनि के सिर नाखि।
लियौ छड़ाइ सकल सुनि सूरज, बेनु धूरि दै आँखि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—इस (मोहनके) अधरामृतको सुरक्षित रखनेमें हम क्यों मरती (श्रम करती) रहीं ! श्रद्धा-पूर्वक उसे हम एकत्र किये रहीं और संकोचके कारण उसका स्वाद भी नहीं ले सकीं। शीत सह-सहकर हम यमुनाजी जातीं और उनके जलमें (सबेरे-सबेरे) स्नान करतीं। मुखसे दीन-वचन कहते हुए भगवान् शङ्करकी पूजा करके मन-ही-मन जिसकी अभिलाषा की थी, वह (मोहनके अधरामृत-लाभका) वरदान भी पाया, किंतु अब हम सबके मस्तकपर पैर रखकर वही अधरामृत (यह) वंशी पी रही है। सुनो तो (इस प्रकार) हम सबोंकी आँखोंमें धूल झोंककर इस वंशीने उसे पूरा-का-पूरा छीन लिया है—हमें तनिक भी उसका पान नहीं करने देती।

राग बिलावल

[१८१]

मुरली भई आजु अनूप।
अधर बिंब बजाइ कर धरि मोहे त्रिभुवन रूप ॥ १ ॥

देखि गोपी ग्वाल गाइनि, देखि बन गृह जूप।
देखि मुनि जन, नाग चंचल, देखि सुंदर रूप ॥ २ ॥
देखि धरनि, अकास, सुर, नर, देखि सीतल धूप।
देखि सूर अगाध महिमा भए दादुर कूप ॥ ३ ॥

वंशी आज अनुपम (शोभामयी) हो गयी है, हाथसे पकड़ और बिम्बाफलके समान ओठोंपर रखकर उसे बजाते हुए (श्यामने) अपने रूपसे तीनों लोकोंको मोहित कर लिया। वनमें तथा घरमें गोपियाँ, गोप, गायें, सब उन्हें देखकर खंभेके समान निश्चल दीखते हैं। उनके सुन्दर रूपका दर्शन करके मुनिगण एवं नाग (तक) चञ्चल हो जाते हैं। पृथ्वी और आकाशसे मनुष्य तथा देवता देख रहे हैं, उन्हें देखकर सूर्यकी धूप भी शीतल हो गयी है। इस अगाध माहात्म्यको देखकर सूरदास कूपमण्डूक (केवल उसीमें निमग्न रहनेवाला) बन गया है।

राग केदारौ

[१८२]

मुरली नाम गुन बिपरीति।
खीन मुरली गहैं मुर अरि, रहत निसि दिन प्रीति ॥ १ ॥
कहत बंसी छिद्र परगट ह्वै, छूछे अंग।
बिदित जग हरि अधर पीवत, करत मनसा पंग ॥ २ ॥
चलत ते सब अचल कीन्हे, अचल चलत नगेस।
अमर आने मृत्युलोकै, चलत भुव पर सेष ॥ ३ ॥
नैनहू मन मगन ऐसे, काल गुननि बितीत।
सूर त्रै सौं एक कीन्हे रीझि त्रिगुन अतीत ॥ ४ ॥

मुरलीके* नाम और गुण परस्पर विरुद्ध हैं। इस पतली-सी मुरलीको प्रेमपूर्वक श्रीमुरारि रात-दिन पकड़े रहते हैं। कहा जाता है कि वंशीके

* मुरली=अर्थात् मुरदैत्यके द्वारा ग्रहण की हुई, यह नाम है; किंतु इसे लिये रहते हैं मुरदैत्यके शत्रु मुरारि।

हृदयमें तो प्रत्यक्ष छेद हैं और इसके अन्य अङ्ग (भी) छूछे—सारहीन हैं; किंतु यह संसारको ज्ञात है कि वह श्रीहरिके अधर(-रस)का पान करती है और (अपनी ध्वनिसे सबके) मनकी गतिको पङ्गु (स्थिर) बना देती है। जो चलनेवाले प्राणी हैं, उन सबको इसने अचल (स्थिर) और अचल पर्वतोंको चल (द्रवित) कर दिया, देवताओंको मृत्युलोकमें बुला लिया, स्वयं (पृथ्वीको धारण करनेवाले) शेषनाग (श्रीबलराम) पृथ्वीपर चलने लगे। नेत्र और मन इसकी ध्वनिमें ऐसे निमग्न हो गये कि कालके गुणोंको लाँघ गये। सूरदासजी कहते हैं कि त्रिगुणातीत श्यामसुन्दरने प्रसन्न होकर तीनों (ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय या श्रोता, शब्द, श्रवण) को एकाकार (केवल प्रेममय) बना दिया।

राग पूरबी

[१८३]

स्याम मुख मुरली अनुपम राजत।
सुभग सिखंड पीड़ सिर सोहत, स्रवननि कुंडल भ्राजत ॥ १ ॥
नील जलद पै सुभग चाप सुर मंद मंद रव बाजत।
पीतांबर कटि तड़ित भाव जनु, मार बिबस मन लाजत ॥ २ ॥
ठाढ़े तरु तमाल तर सुंदर नंद नँदन बनमाली।
सूर निरखि ब्रजनारि चकित भईं, लगी मदन की भाली ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दरके मुखपर वंशी अनुपम शोभा देती है। मनोहर मयूर-पिच्छका मुकुट मस्तकपर शोभित है, कानोंमें कुण्डल जगमगा रहे हैं। (ऐसा लगता है) मानो नीले मेघपर मनोहर इन्द्रधनुष हो और वह मन्द-मन्द स्वरमें ध्वनि कर रहा हो। कमरमें पीताम्बर ऐसी शोभा दे रहा है मानो विद्युत् (स्थिर होकर) उसमें ठहर गयी हो, किंतु वह कामदेवके वश होनेके कारण मन-ही-मन लजा रही हो। सुन्दर नन्दनन्दन वनमाला धारण किये तमालवृक्षके नीचे खड़े हैं। सूरदासजी कहते हैं कि व्रजनारियाँ इस शोभाको देखकर चकित हो गयीं, उन्हें कामदेवकी बरछी लग गयी।

राग गौरी

[१८४]

मोहन मुरली अधर धरी।
कंचन मनि मय रचित, खचित अति, कर गिरिधरन परी ॥ १ ॥
उघटत तान बँधान सप्त सुर, सुनि रस उमगि भरी।
आकरषति तन मन जुवतिनि के, गति बिपरीत करी ॥ २ ॥
पिय मुख सुधा बिलास बिलासिनि गीत समुद्र तरी।
सूरदास त्रैलोक्य बिजै करि रति पति गरब हरी ॥ ३ ॥

मोहनने ओठपर वंशी रख ली। वह (वंशी) सोने और मणिसे बनी अत्यन्त चित्रकारी की हुई है तथा श्रीगिरिधरलालके हाथ आ गयी है। वह सातों स्वरोंको बाँधकर तानें निकाल रही है, जिन्हें सुनकर (हृदय) आनन्दकी उमंगसे भर जाता है। युवतियोंके तन-मनका आकर्षण करके (उनकी) उलटी ही दशा कर देती है। यह प्रियतम श्यामसुन्दरके मुखामृतकी तरङ्गोंमें क्रीडा करनेवाली गायन-समुद्रकी नौका है। सूरदासजी कहते हैं कि इस (वंशी) ने तीनों लोकोंको जीतकर कामदेवका भी गर्व हरण कर लिया।

राग केदारौ

[१८५]

मुरली अधर बिंब रमी।
लेति सरबस जुवति जन कौ, मदन बिदित अमी ॥ १ ॥
पीय प्यारी, कृत्य कारे, करत नाहिं नमी।
बोलि सब्द सुसप्त सुर, गति नाग सुनाद दमी ॥ २ ॥
महा कठिन कठोर आली, बाँस बंस जमी।
सूर पूरन परसि श्री मुख नेकु नाहिं झमी ॥ ३ ॥

(गोपिका कह रही है—सखी !) मुरली (मोहनके) बिंबाफलके समान ओठपर क्रीड़ा करती है; यह व्रजयुवतीजनोंका सर्वस्व तथा उन्मत्त

कर देनेवाला प्रख्यात अधरामृत छीन ले रही है। यद्यपि यह प्रियतम (श्याम) को प्यारी है, तथापि इसकी करतूतें काली (निष्ठुर) हैं; यह (तनिक भी) नम्रता (दया) नहीं करती। सातों स्वरोंकी बोली बोलकर अपने सुरीले नादसे इसने नागों (सर्पों) की गतिका भी दमन कर दिया (वे भी स्थिर होकर इसकी ध्वनि सुनते हैं)। सखी! बाँसके वंशमें उत्पन्न हुई यह अत्यन्त कठिन तथा कठोर (हृदयवाली) है। सूरदासजी कहते हैं—(श्यामसुन्दरके) श्रीमुखका पूर्ण स्पर्श करके भी यह तनिक भी विनम्र नहीं हुई।

राग सारंग

[१८६]

वंसी वैर परी जु हमारैं।
अधर पियूष अंस सबहिनि कौ
इन पीयौ सब दिन निज न्यारैं॥ १॥
इक धुनि हरि मन हरति माधुरी,
दूजें बचन हरति अनियारे।
बाँस बंस हिय बेध महा सठ,
अपने छिद्र न जानत गारें॥ २॥
सौंप्यौ सुपति जानि ब्रज कौ पति,
सो अपनाइ लियौ रखवारे।
सब दिन सही अनीति सूर प्रभु,
श्रीगुपाल जिय अपनैं धारे॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—सखियो! वंशी हमारी वैरिन बनकर हमें सता रही है। (मोहनका) अधरामृत (जो) हम सभीका भाग है, उसे इसने स्वयं ही अकेले सब दिन पीया है। एक ध्वनिसे तो यह श्यामके मनकी मधुरता हर लेती है तथा दूसरे वचनसे (उसकी) तीक्ष्णता हर लेती है। बाँसका वंश (ही) हृदयको बेधनेमें अत्यन्त शठ (क्रूर) होता

है, किंतु अभिमानवश अपने छिद्रोंको नहीं देखती। श्रेष्ठ स्वामी समझकर (हमने) व्रजपति (श्रीकृष्ण) को (यह भी व्रजकी है, इस नाते) सौंपा था; किंतु उन्हें इसने अपने रक्षकको अपना बना लिया (उनपर अपना एकाधिपत्य कर लिया)। हमने तो सदा ही इसका अन्याय सहा है; किंतु हमारे स्वामी श्रीगोपाल अपने मनमें भी तो कुछ विचार करें। (हमारी सहिष्णुता और वंशीके अन्यायपर ध्यान दें।)

राग बिहागरौ

[१८७]

मुरली स्याम अधर नहिं टारत।
बारंबार बजावत, गावत, उर तैं नाहिं बिसारत॥ १॥
यह तौ अति प्यारी है हरि की, कहति परसपर नारी।
याकें बस्य रहत हैं ऐसे गिरि गोवरधन धारी॥ २॥
लटकि रहत मुरली पर ठाढ़े, राखत ग्रीव नवाइ।
सूर स्याम बस ताकें डोलत, पलक नहीं बिसराइ॥ ३॥

(गोपियाँ कहती हैं—'सखियो!) श्यामसुन्दर वंशीको ओठसे हटाते (ही) नहीं, बार-बार उसे बजाते और गाते हैं तथा हृदयसे कभी उसे भूलते नहीं।' गोपियाँ परस्पर कहती हैं—'यह (वंशी) तो हरिकी अत्यन्त लाड़िली है, गोवर्धनगिरिको उठाकर हाथपर रखनेवाले (श्यामसुन्दर) इसके ऐसे वशमें रहते हैं कि इस मुरलीपर ही झुके खड़े रहते हैं तथा गर्दनको भी नीची रखते हैं।' सूरदासजी कहते हैं—श्यामसुन्दर उसीके वश हुए घूमते रहते हैं और एक पलको भी उसे नहीं भूलते।

राग रामकली

[१८८]

मुरली कें बस स्याम भए री।
अधरनि तैं नहिं करत निनारी, वाकें रंग रए री॥ १॥

रहत सदा तन सुधि बिसराएँ, कहा करन धौं चाहति ।
देखी, सुनी न भई आजु लौं, बाँस बँसुरिया दाहति ॥ २ ॥
स्यामै निदरि, निदरि हमहू कौं, अबही तैं यह रूप ।
सुनौ सूर हरि कौ मुह पाएँ बोलति बचन अनूप ॥ ३ ॥

(गोपियाँ कहती हैं--) 'सखियो ! श्यामसुन्दर वंशीके वश हो गये हैं; उसके प्रेममें (ऐसे) रँग गये हैं कि ओठोंसे उसे पृथक् नहीं करते । यह (वंशी) उनको सदा शरीरकी सुधि भुलवाये रहती है, पता नहीं क्या करना चाहती है ? ऐसी बात तो आजतक न कहीं देखी न सुनी और न कहीं घटित ही हुई कि बाँसकी वंशी (किसीको) जलाये । श्यामका इसने अनादर किया, हम सबका (भी) अनादर किया, अभीसे इसका यह स्वरूप है ।' सूरदास-जी कहते हैं-'सुनो ! श्रीहरिके मुखका स्पर्श पाकर (ही) यह अनुपम स्वर बोलती है (इसके पास मधुर वाणी कहाँ ?) ।'

राग जैतश्री

[१८९]

मुरली स्याम कहाँ तैं पाई ।
करत नाहिं अधरनि तैं न्यारी, कहा ठगोरी ल्याई ॥ १ ॥
ऐसी ढीठि मिलतहीं ह्वै गइ, उनके मन ही भाई ।
हम देखत वह पियत सुधा रस, देखौ री अधिकाई ॥ २ ॥
कहा भयौ मुहँ लागी हरि के, बचनन लिए रिझाई ।
सूर स्याम कौं बिबस करावति, कहा सौति सी आई ॥ ३ ॥

(गोपियाँ परस्पर कह रही हैं—सखियो !) श्यामने यह वंशी कहाँसे पायी ? इसने (ऐसा) क्या टोना कर दिया कि मोहन इसे ओठोंसे अलग ही नहीं करते ? उनसे मिलते ही यह उन (मोहन) को प्रिय लगनेके कारण ऐसी ढीठ हो गयी कि हमारे देखते हुए यह (उनका) अधरामृत पान करती है । तनिक उसका यह मर्यादातिक्रमण तो देखो ···। क्या हुआ जो (यह) हरिके मुँह लग गयी और इसने अपने

स्वरोंसे उन्हें प्रसन्न कर लिया। सूरदासजी कहते हैं—श्यामको भी विवश करानेवाली यह सौतकी भाँति कहाँसे आ गयी।

राग गूजरी

[१९०]

स्याम मुरलि कें रंग ढरे।
कर पल्लव ताकौं पौढ़ावत, आपुन रहत खरे॥ १॥
बारंबार अधर रस प्यावत, उपजावत अनुराग।
जे बस करत देव मुनि गंध्रब, ते करि मानत भाग॥ २॥
बन मैं रहति डरी को जानै, कब आनी धौं जाइ।
सूरज प्रभु की बड़ी सुहागिनि, उपजी सौति बजाइ॥ ३॥

(गोपियाँ कहती हैं—सखियो !) श्यामसुन्दर तो वंशीके ही प्रेममें रँग गये। उसे अपने पल्लवके समान (कोमल) हाथोंपर बैठाकर स्वयं खड़े रहते हैं। बारंबार उसे अधर-रस पिलाते हुए प्रेमका संचार करते हैं; जो देवता, मुनि, गन्धर्वादिको भी वशमें कर लेते थे, वे अब इसीको अपना सौभाग्य मानते हैं। यह वनमें पड़ी रहती थी कौन इसे जानता था और पता नहीं कौन इसे जाकर ले आये। अब तो सूरदासके स्वामीकी यह बड़ी (ही) लाड़िली हो गयी, जो डंकेकी चोट (खुल्लमखुल्ला) हमारी सौत बन गयी।'

राग नट

[१९१]

मुरली भई सौति बजाइ।
कहूँ बन मैं रहति डारी, ताहि यह सुघराइ॥ १॥
बचनहीं हरि रिझै लीन्हें, अधर पूरत नाद।
दिनै दिन अधिकान लागी, अब करैगी बाद॥ २॥

सुनौ री इहि दूरि कीजै, यहै करौ बिचार।
अबहि तैं करनी करी यह बहुरि कहा लगार॥ ३॥
ढंग याके भले नाहीं, बहुत गई डराइ।
सूर स्याम सुजान रीझे, देह गति बिसराइ॥ ४॥

(गोपियाँ कह रही हैं—) सखियो! वंशी तो डंकेकी चोट (हमारी) सौत बन गयी; जो कहीं वनमें पड़ी रहती थी, उसे यह सौन्दर्य (सौभाग्य) प्राप्त हो गया। अपनी वाणी (ध्वनि) से ही इसने हरिको प्रसन्न कर लिया, जिसके कारण वे अपने ओठोंसे इसमें स्वर भरते रहते हैं। यह दिनोंदिन मर्यादाका उल्लङ्घन करने लगी और अब (हमसे) झगड़ा करेगी। (सखियो!) सुनो, (अब शीघ्र-से-शीघ्र) यही विचार करो कि (किसी प्रकार) इसे दूर किया जाय। जिसने अभीसे ऐसी-ऐसी करतूतें की हैं (कि मोहनको वशमें कर लिया) पता नहीं वह आगे क्या लगाव (शत्रुता) करेगी। इसके ढंग अच्छे नहीं हैं, हम इससे बहुत डर गयी हैं। सूरदासजी कहते हैं कि चतुर श्यामसुन्दर तो अपने शरीरकी दशा भी भूलकर इसपर लट्टू हो गये हैं।

राग सोरठ

[१९२]

मुरली दूरि कराएँ बनिहै।
अबही तैं ऐसे ढँग याके, बहौरि काहि यह गनिहै॥ १॥
लागी यह कर पल्लव बैठन, दिन दिन बाढ़ति जाति।
अबही तैं तुम सजग होहु री, मैं जु कहति अकुलाति॥ २॥
यह ब्रज मैं नहि भली बात है, देखौ हृदै बिचारि।
सूर स्याम वाही के ह्वै गए, सब ब्रजनारि बिसारि॥ ३॥

(गोपियाँ कह रही हैं—सखियो!) मुरलीको दूर कराये (श्यामसे पृथक् किये) ही बनेगा; (जब) अभीसे इसके ऐसे ढंग हैं, पीछे यह किसको गिनेगी (किसकी परवा करेगी)। अब (तो) यह मोहनके पल्लव-सदृश कोमल हाथोंपर बैठने लगी और दिनोंदिन बढ़ती ही जाती (अधिकाधिक

महत्ता प्राप्त करती जाती) है। (इसीसे) मैं व्याकुल होकर कहती हूँ कि सखियो ! तुम (सब) अभीसे सावधान हो जाओ। अपने हृदयमें विचार करके देखो, व्रजमें यह (कोई) अच्छी बात नहीं है; क्योंकि सूरदासजीके श्यामसुन्दर सभी व्रजनारियोंको भुलाकर (एकमात्र) उसी (वंशी)के हो गये हैं।

राग बिहागरौ

[१९३]

अबहीं तैं हम सबनि बिसारी।
ऐसे बस्य भए हरि वाके, जाति न दसा बिचारी ॥ १ ॥
कबहूँ कर पल्लव पै राखत, कबहुँ अधर लै धारी।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौं, नेकहुँ करत न न्यारी ॥ २ ॥
मुरलीं स्याम किए बस अपने, जे कहियत गिरिधारी।
सूरदास प्रभु कैं तन मन धन बाँस बँसुरिया प्यारी ॥ ३ ॥

(गोपियाँ कह रही हैं—सखियो !) अभीसे मोहनने हम सबोंको बिसार (भुला) दिया; वे हरि उस (वंशी) के ऐसे वशमें हो गये हैं कि उनकी दशा सोची नहीं जा पाती। कभी उसे पल्लवके समान कोमल हाथोंपर रखते हैं, कभी ओठोंपर धारण कर लेते हैं और कभी हृदयसे लगा लेते हैं, तनिक भी उसे अपनेसे पृथक् नहीं करते। जो श्याम गिरिधारी कहे जाते हैं, उन्हें वंशीने अपने वशमें कर लिया। सूरदासके स्वामीको बाँसकी वंशी इतनी प्यारी हो गयी कि वही (अब) उनका तन, मन, धन (सब कुछ) हो रही है।

राग रामकली

[१९४]

मुरली भई स्याम तन मन धन।
अब वाकौं तुम दूरि करावति, जाके बस्य भए नँद नंदन ॥१॥
कबहुँ अधर, कबहूँ राखत कर, कबहूँ गावत हैं हिरदै धरि।
कबहुँ बजाइ मगन आपुन ह्वै,लटकि रहत मुख धरि तापर ढरि ॥२॥

ऐसे पगे रहत हैं जासौं, ताहि करौ कैसैं तुम न्यारी।
सूर स्याम हम सबनि बिसारी, वह कैसैं अब जाति बिसारी ॥३॥

सूरदासके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखियो !) वंशी तो श्यामका तन, मन, धन (सर्वस्व) हो गयी; जिसके वशमें नन्दनन्दन हो गये हैं, उसे अब तुम दूर कराती हो ? (यह कैसे सम्भव है ।) कभी उसे ओठपर, कभी हाथोंमें और कभी हृदयपर रखकर गीत गाते हैं और कभी बजाकर स्वयं ही मग्न हो जाते हैं तथा उसे मुखपर रखकर उसीपर झुककर लटके रहते हैं । जिसके साथ वे ऐसे घुले रहते हैं, उसे तुम कैसे पृथक् कराना चाह रही हो । जिसके लिये श्यामसुन्दरने हम सबोंको भुला दिया, उसे अब कैसे भुलवाया जा सकता है ।

राग सूहौ

[१९५]

मुरली हरि कौं भावै री।
सदा रहति मुखही सौं लागी, नाना रंग बजावै री ॥ १ ॥
छहौ राग, छत्तीसौ रागिनि इक इक नीकैं गावै री।
जैसेहिं मन रीझत है हरि कौ, तैसिहिं भाँति रिझावै री ॥ २ ॥
अधरन कौ अमृत पुनि अँचवति, हरि के मनहि चुरावै री।
गिरिधर कौं अपनैं बस कीन्हें, नाना नाच नचावै री ॥ ३ ॥
उन कौ मन अपनौ करि लीन्हौ, भरि-भरि बचन सुनावै री।
सूरज प्रभु ढिग तैं कहि वाकौं ऐसौ कौन टरावै री ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—सखी ! वंशी हरिको (बहुत ही) प्रिय लगती है, सदा वह (उनके) मुखसे ही लगी रहती है और वे उसे अनेक प्रकारसे बजाते हैं । वह भी छहो राग एवं छत्तीसो रागिनियोंमेंसे प्रत्येक-को यथार्थ रीतिसे गाती है तथा जिस प्रकार श्यामका मन प्रसन्न हो, उसी प्रकार उन्हें प्रसन्न करती है । फिर उनके अधरामृतका पान करके उन हरिके चित्तको चुराती है, श्रीगिरिधरलालको अपने वशमें करके (उन्हें) अनेक

प्रकारके नाच नचाती है। उनका मन इसने अपना बना लिया है, (उन्हींके) स्वरको अपनेमें भर-भरकर सुनाती है। बताओ तो ऐसा कौन है, जो (हमारे) स्वामीके पाससे उसे हटवा (दूर करा) सके।

राग भैरव

[१९६]

मुरली हरि तैं छूटति है ?
वाही कैं बस भए निरंतर, वह अधरनि रस लूटति है ॥ १ ॥
तुम तैं निठुर भएँ वह बोलत, तिन तें मन उचटावति है।
आरज पथ,कुल कानि मिटावति, सबकौं निलज करावति है ॥ २ ॥
निदरैं रहति, डरति नहिं काहू, मुख पाएँ वह फूलति है।
अब वह हरि तैं होति न न्यारी, तू काहे कौं भूलति है ॥ ३ ॥
रोम रोम नख सिख रस पागी, अनुरागिनि हरि प्यारी है।
सूर स्याम वाकैं रस लुबधे, मानी सौति हमारी है ॥ ४ ॥

(गोपिका कह रही है—'सखी!) अब वंशी श्यामसे कहीं छूट सकती है? वे तो सदाके लिये उसीके वश हो गये हैं और वही उनके अधरोंका रस लूटती (पीती) रहती है। वह तुमलोगोंके प्रति निष्ठुर होकर बोलती और उनके प्रति तुम्हारे मनको उदासीन बनाती है; (साथ ही) आर्यपथ (सदाचार) तथा कुलकी मर्यादाका लोप कराके तुम सबको लज्जाहीन बनाती है। सदा अनादर ही किये रहती है, किसीसे भी डरती नहीं; (मोहनके) मुखका स्पर्श पाकर वह फूल रही (गर्वमें भर गयी) है। तुम यह क्यों भूलती हो कि वह अब हरिसे पृथक् नहीं हो सकती। रोम-रोम, नखसे शिखातक वह प्रेमरससे पगी है, श्रीहरिसे अनुराग करनेवाली और (स्वयं) उनकी प्यारी है। सूरदासजी कहते हैं--श्यामसुन्दर उसके माधुर्यके लोभी बन गये हैं और उसे हमारी सौतके रूपमें स्वीकार कर लिया है।

राग बिहागरौ

[१९७]

मुरली हम कौं सौति भई।
नैकु न होति अधर तैं न्यारी, जैसैं तृषा डई॥ १ ॥
ह्याँ अँचवति, ह्वाँ डारति लै लै, जल थल बननि वई।
जा रस कौ व्रत करि तनु गार्‍यौ, कीन्हीं रई-रई॥ २ ॥
पुनि पुनि लेति सकुच नहिं मानति, कैसी भई दई।
कहाँ धरै वह बाँस साँस कौं, आस निरास गई॥ ३ ॥
ऐसी कहूँ गई नहिं देखी, जैसी भई नई।
सूर बचन जाके टोना से, सुनत मनोज जई॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशी हमारे लिये सौत हो गयी; जैसे प्याससे पीड़ित (तपी हुई) हो, उसी प्रकार तनिक भी (मोहनके) ओठोंसे यह पृथक् नहीं होती। यहाँ तो (अधरामृतका) पान करती है और वहाँ जल, स्थल तथा वनोंमें ले-लेकर (स्वरके बहाने उस अधरामृतको) बोती—उँडेलती फिरती है। जिस (अधरके) रसके लिये (हमने) व्रत (उपवास) के द्वारा अपने शरीरको कण-कण (अत्यन्त क्षीण) करके गला (सुखा) दिया, उसी (अधररस) को यह बार-बार लेती है। संकोच नहीं करती। हा दैव ! यह कैसा (अनर्थ) हो गया, वह तो बाँस है (पोली है), श्वास (मोहनके स्वर) को रखे कहाँ (इसलिये उस स्वरके रूपमें अधरामृतको चारों ओर फेंकती है)। किंतु हमलोगोंकी आशा (कि वह रस कभी हमें मिलेगा) (अब) निराशामें बदल गयी। ऐसी हानि होते कहीं नहीं देखी गयी, जैसी यह नवीन (हानि) हुई है। इस वंशीके स्वर जादू-जैसे हैं, जिन्हें सुनते ही कामदेवके द्वारा हम जीत ली जाती हैं।

राग सोरठ

[१९८]

मुरली बचन कहति जनु टोना।
जल थल जीव बस्य करि लीन्हे, रिझए स्याम सलोना॥ १ ॥

नैकु अधर तैं करत न न्यारी, प्यारी तियनि लजौना।
ऐसी ढीठि बदति नहिं काहू, रहति बननि बन जौना ॥ २ ॥
ताकी प्रभुता जाति कही नहिं, ऐसी भई न होना।
सूर स्याम मुद नाद प्रकासति, थकित होत सुनि पौना ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—सखी!) वंशी ऐसे शब्द बोलती है मानो जादू हो; (उसने) जल-स्थलके सभी जीवोंको ही वशमें नहीं कर लिया है, अपितु सलोने श्यामसुन्दरको (भी) प्रसन्न कर लिया। वे इसे ओठोंसे तनिक भी अलग नहीं करते, इससे यह (उनकी) प्यारी व्रजस्त्रियोंको लज्जित करती है। इतनी ढीठ है कि किसीको गिनती ही नहीं और फिर एक-एक वनको देखती फिरती है। किंतु उसकी प्रभुताका (तो) वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसी (प्रभुता) न तो (कभी) हुई और न आगे होनेवाली है। सूरदासजी कहते हैं—यह श्यामसुन्दरका ऐसा आनन्दपूर्ण नाद (संगीत) प्रकट करती है, जिसे सुनकर वायु भी स्तब्ध (गतिहीन) हो जाता है।

राग सारंग

[१९९]

मुरली हम पै रोष भरी।
अंस हमारौ आपुन अँचवत नैकौ नाहिं डरी ॥ १ ॥
बार बार अधरनि सो परसति, देखति सबै खरी।
ऐसी ढीठि टरी न उहाँ तैं, जउ हम रिसनि भरी ॥ २ ॥
यह तो कियौ अकाज हमारौ, अब हम जानि परी।
सूरज प्रभु इन निठुर करायौ, ऐसी करनि करी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) वंशी हमारे प्रति क्रोधमें भरी है, (श्यामका अधरामृत) जो हमारा भाग है, उसे स्वयं पीते तनिक भी नहीं डरती। हम सबको खड़ी देखकर भी यह बार-बार (उनके) ओठोंको छूती है; ऐसी ढीठ हो गयी है कि यद्यपि हम सब क्रोधमें भर गयीं,

तब भी वहाँसे हटी नहीं। अब हम समझ गयीं कि इसने हमलोगोंकी (बड़ी) हानि की है और ऐसा कुचक्र रचा कि हमारे स्वामीको (हमारे प्रति) निष्ठुर बना दिया।

राग धनाश्री

[२००]

मुरली के ऐसे ढँग, माई !
जब तैं स्याम परे बस वाकैं, हम सबहिनि बिसराई॥ १ ॥
अपनो गुन यह प्रगट करायौ, निठुर काठ की जाई।
अपनिहिं आगि दह्यौ कुल अपनो, यह गुनि गुनि पछिताई॥ २ ॥
जो है निठुर आपने घर कौ, औरनि तैं क्यौं मानै।
सूर बड़ी यह आपु स्वारथिनि, कपट राग करि गानै॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! वंशीके ऐसे ढंग हैं कि जबसे श्याम उसके वशमें हुए, तभीसे हम सबको (उन्होंने) भुला दिया। इस निष्ठुर काष्ठसे उत्पन्न वंशीने अपना (निष्ठुरता रूप) गुण (उनमें भी) प्रकट कराया (उन्हें भी निष्ठुर बना दिया), अपनी ही अग्निसे इसने अपना कुल भस्म कर दिया*। यही सोच-सोचकर मानो यह पश्चात्ताप करती है। जो अपने घरके लिये ही निष्ठुर है, वह दूसरोंसे प्रेम कैसे माने। सूरदासजी कहते हैं— यह (वंशी) स्वयं बड़ी ही स्वार्थिनी है, कपटपूर्वक (मोहक) रागोंकी रचना करके गाती है।

राग कल्यान

[२०१]

बाँस बंस बंसी बस सबै जगत स्वामी।
जाकैं बस सुर, नर, मुनि, ब्रह्मादिक गुन गुनि गुनि,
बासर निसि कथत निगम नेति नेति बानी॥ १ ॥

---

* बाँसोंकी परस्पर रगड़से वनमें दावाग्नि प्रकट हो जाती है और उसमें वे बाँस भी भस्म हो जाते हैं।

जाकी महिमा अपार, सिव न लहत वार पार,
करता संसार सार ब्रह्म रूप ए हैं।
सूर नंद सुवन स्याम, जे कहियत अनँत नाम,
अतिहीं आधीन बस्य, मुरली के ते हैं॥ २॥

(गोपी कह रही है—सखी!) बाँसके वंशमें उत्पन्न वंशीके वशमें (वे) सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हो गये। देवता, मनुष्य एवं मुनिगण भी जिसके वशमें हैं, ब्रह्मादि जिनके गुणोंका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं और वेद 'नेति-नेति' कहकर अहर्निश जिनका वर्णन करते हैं, जिसकी महिमाका (कोई) पार नहीं है, साक्षात् शंकरजी भी जिसका आदि-अन्त नहीं पाते और जो सम्पूर्ण संसारके निर्माता तथा सारभूत ब्रह्मस्वरूप हैं और जिनके अनन्त नाम कहे जाते हैं, सूरदासजी कहते हैं कि वे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर मुरलीके अत्यन्त अधीन और वशीभूत हो गये हैं।

राग कान्हरौ

[२०२]

जा दिन तैं मुरली कर लीनी।
ता दिन तैं स्रवननि सुनि सुनि सखि!
मन की बात सबै लै दीनी॥ १॥
लोक बेद कुल लाज कानि तजि,
औ मरजाद बचन मिति खीनी।
तबही तैं तन सुधि बिसराई,
निसि दिन रहति गुपाल अधीनी॥ २॥
सरद सुधा निधि सरद अंस ज्यौं,
सींचति अमी प्रेम-रस भीनी।
ता ऊपर सुभ दरस सूर प्रभु
श्री गुपाल लोचन गति छीनी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी! जिस दिनसे (श्यामसुन्दरने) वंशी हाथमें ली, उसी दिनसे मैंने अपने कानोंसे सुन-सुनकर अपने

मनकी सारी बात लेकर उन्हें दे दी (सब भाँति उनके वशमें हो गयी)। लौकिक और वैदिक मर्यादा तथा कुल-लज्जा छोड़ दी, शास्त्रोंके मर्यादापूर्ण आदेशोंकी सीमा क्षीण कर दी (सीमा तोड़ दी)। (इतना ही नहीं) शरीरतककी सुधि भुला दी और रात-दिन गोपालके वश हुई रहती हूँ। जैसे शरद्का चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे (पृथ्वीको) सींचता है, उसी प्रकार उन्होंने अपने प्रेमके अमृतरससे सींचकर मुझे तर कर दिया, इसके ऊपर भी हमारे स्वामी श्रीगोपालने अपने मनोहर दर्शन देकर नेत्रोंकी गति भी छीन ली (नेत्र स्थिरभावसे उन्हें देखते हैं)।

राग नट

[२०३]

मुरली तौ यह बाँस की।
बाजति स्वास परति नहिं जानति,
भई रहति पिय पास की ॥ १ ॥
चेतन कौ चित हरति अचेतन,
भूखी डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रजबासिनि सौं,
लिएँ रहति है गाँस की ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) यह वंशी तो बाँसकी (जड) है, (जिससे) बजते समय श्वासका पड़ना—आना-जाना नहीं जाना जाता। यह सदा प्रियतमके समीप बनी रहती है। यह जड होकर (भी) चेतनोंका मन हरण करती और उनके मांसकी भूखी (उन्हें मारनेको उद्यत) घूमती है। (यह) सभी व्रजवासियोंसे (मनमें) शत्रुता ठाने रहती है।

राग मलार

[२०४]

बाँसुरी बिधि हू तैं परबीन।
कहिऐ काहि, आहि को ऐसौ, कियौ जगत आधीन ॥ १ ॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापी थिर चर नीति।
आठ बदन गरजति गरबीली, क्यों चलिहै यह रीति ॥ २ ॥

बिपुल बिभूति लही चतुरानन एक कमल करि थान ।
हरि कर कमल जुगल पै बैठी, बाढ़्यौ यह अभिमान ॥ ३ ॥
एक बेर श्रीपति के सिखऐं उन आयौ गुरु ग्यान ।
याकें तौ नँदलाल लाड़िलौ लग्यौ रहत नित कान ॥ ४ ॥
एक मराल पीठि आरोहन बिधि भयौ प्रबल प्रसंस ।
इन तौ सकल बिमान किए गोपी जन मानस हंस ॥ ५ ॥
श्रीवैकुंठनाथ पुर बासी चाहत जा पद रैंनु ।
ताकौं मुख सुखमय सिंघासन, करि बैठी यह ऐंनु ॥ ६ ॥
अधर सुधा पी कुल व्रत टार्‌यौ, नाहिं सिखा नहिं ताग ।
तदपि सूर या नंद सुवन कौ याही सौं अनुराग ॥ ७ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) यह वंशी तो ब्रह्मासे भी निपुण है। (परंतु) यह किससे कहा जाय; (इसके समान) ऐसा कौन है, जिसने सारे संसारको अपने वशमें कर लिया हो। चार मुखसे (वेदोंका) उपदेश करके ब्रह्माजीने स्थिर (जड) और चर (चेतन)—सब प्रकारके जीवोंकी मर्यादा स्थापित की; किंतु यह गर्वभरी वंशी आठ मुखों (छिद्रों) से गर्जना करती रहती है, (ऐसी दशामें) यह (ब्रह्माद्वारा स्थापित जड-चेतनकी) मर्यादा कैसे चल पायेगी। (चार मुखवाले) ब्रह्माजीने एक (भगवान्‌के नाभिसे निकले) कमलपर निवास करके बहुत अधिक ऐश्वर्य प्राप्त किया; यह (वंशी) श्यामके दोनों करकमलोंपर बैठी रहती है, जिससे उसका अभिमान बढ़ गया है। एक बार भगवान् नारायणके (गुरुरूपसे चतुःश्लोकी भागवतका) उपदेश देनेपर उन्होंने (ब्रह्माजीने) गुरुमुख ज्ञान प्राप्त किया था, किंतु परमप्रिय श्रीनन्दनन्दन इसके (तो) सदा ही कानसे लगे रहते (बराबर ही इसे उपदेश करते रहते) हैं। एक हंसकी पीठपर चढ़नेसे ब्रह्माजी अत्यन्त प्रशंसनीय हो गये; किंतु इस (वंशी) ने तो सभी गोपियोंके मनरूपी हंसोंको अपना विमान बना लिया है। श्रीवैकुण्ठनाथ (नारायण) के धाममें रहनेवाले (पार्षद) भी जिसकी चरणधूलि चाहते हैं, उन्हीं (श्याम) के मुखको यह सुखमय सिंहासन बनाकर उसे अपना घर

बना बैठी (सदा मुखपर ही रहती) है। अधरामृतका पान करके इसने (सबके) कुल-व्रतको मिटा दिया। इसके न शिखा है, न जनेऊ है; फिर भी इन नन्दनन्दनका इसीसे प्रेम है।

राग कल्यान

[२०५]

मुरली नहिं करत स्याम अधरनि तैं न्यारी।
ठाढ़े ह्वै एक पाँइ रहत तनु त्रिभंग करत
भरत नाद, मुरली, सुनि बस्य पुहुमि सारी ॥ १ ॥
थावर चर चर थावर, जंगम जड जड जंगम,
सरिता उलटै प्रबाह, पवन थकित भारी।
सुनि सुनि मुनि थकित तान, स्वेद गए ह्वै पषान,
तरु डाँगर धावत खग मृगनि सुधि बिसारी ॥ २ ॥
उकठे तरु भए पात, पाथर पै कमल जात,
आरज पथ तज्यौ नात, ब्याकुल नर नारी।
रीझे प्रभु सूर स्याम, बंसी रव सुखद धाम,
बासरहू जाम नाहिं जाति कतहुँ टारी ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—सखी !) श्यामसुन्दर वंशीको ओठोंसे (कभी) पृथक् नहीं करते। एक चरणसे खड़े होकर शरीरको त्रिभंग बनाकर जब वे वंशीमें स्वर भरते हैं, तब उस ध्वनिको सुनकर सम्पूर्ण पृथ्वी वशमें हो जाती है। स्थिर पदार्थ (जैसे जलाशयोंका जल) गतिशील बन जाते हैं और गतिशील (जैसे नदियोंका जल) स्थिर हो जाते हैं; इसी प्रकार जड वस्तुओंमें चेतन-की भाँति प्रतिक्रिया (रोमाञ्च आदि) होने लगती है और चेतन जडवत् निश्चेष्ट हो जाते हैं। नदीका प्रवाह उलटा (ऊपरको) चलने लगता है, वायु अत्यन्त गतिहीन हो जाती है। मुनिगण बार-बार वंशीध्वनि सुनकर मुग्ध होते हैं, पत्थर पसीजने लगे हैं, वृक्ष और मृतक पशुतक हिलने लगे और पक्षी एवं पशु अपनी सुधि भूल गये। सूखे वृक्षोंमें पत्ते आ गये, पत्थरोंपर कमल उग आये, व्रजस्त्रियोंने आर्यपथ एवं सम्बन्धियोंको छोड़ दिया, नर-नारी सभी

(प्रेमसे) व्याकुल हो गये, सूरदासके स्वामी श्यामसुन्दर वंशीकी सुखदायी एवं विश्रामदायक ध्वनिपर प्रसन्न हो गये । दिन-रात किसी भी समय कहीं भी उनसे (वंशी) कहीं हटायी नहीं जाती ।

राग सारंग

[२०६]

यह मुरली मोहिनी कहावै ।
सप्त सुरनि मधुरी कहि बानी जल थल जीव रिझावै ॥ १ ॥
उहिं रिझए सुर असुर कपट रचि, तिन कौं बस्य करावै ।
पुट एकै इत मद उत अमृत आपु अँचै अँचवावै ॥ २ ॥
याके गुन ए सब सुख पावत, हम कौं बिरह बढ़ावै ।
सूरदास याकी यह करनी स्यामै नीकैं भावै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी !) यह मुरली मोहिनी कही जाती है, सातों स्वरोंसे मधुर शब्दोंमें बोलकर यह जल-स्थलके सभी जीवोंको मुग्ध करती है । जिन्होंने (मोहिनी अवतारमें) कपट करके देवता-दैत्य सबको प्रसन्न किया था, उनको वशमें करा देती है । (वह वंशी) एक ही पात्रसे इधर (हमलोगोंको तो मतवाली करनेवाली) सुरा और उधर (अन्य सबके लिये जीवन-दायी) अमृत स्वयं पीकर सबको पिलाती है। इसके इस गुणसे (और) सब (तो) सुख पाते हैं; किंतु हम सबका यह विरह-दुःख बढ़ाती है । ऐसा तो इसका यह कर्म है; (किंतु किया क्या जाय,) फिर भी श्यामसुन्दरको यह अत्यन्त प्रिय लगती है ।

[२०७]

मुरली तैं हरि हमैं बिसारी ।
बन की ब्याधि कहा यह आई, देतिं सबै मिलि गारी ॥ १ ॥
घर घर तैं सब निठुर कराई महा अपत यह नारी ।
कहा भयौ जौ हरि मुख लागी, अपनी प्रकृति न टारी ॥ २ ॥

सकुचति हौ याकौं तुम काहैं, कहौ न बात उघारी।
नोखी सौति भई यह हम कौं, औरु नाहिं कहुँ का री ॥ ३ ॥
इनहू तैं अरु निठुर कहावति, जो आई कुल जारी।
सूरदास ऐसी को त्रिभुवन, जैसी यह अनखारी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी !) वंशीके कारण श्यामने हमें भुला दिया, यह वनका रोग (यहाँ) गाँवमें, कैसे आ गया ? इस प्रकार सब मिलकर (वंशीको) गाली देती हैं। इस (वंशीरूप) अत्यन्त निर्लज्ज नारीने (हम) सब (गोपियों) को अपने-अपने घरोंके प्रति निष्ठुर (ममताहीन) बना दिया। क्या हुआ जो यह श्रीकृष्णके मुँह लग गयी; अपना (निष्ठुर) स्वभाव (तो) इसने छोड़ा नहीं। तुमलोग इससे संकोच क्यों करती हो, (सारी) बात खोलकर क्यों नहीं कहतीं। यह हमारे लिये अनोखी सौत हो गयी, क्या (सौत बनानेके लिये) कहीं और कोई नहीं थी ? यह जो अपने कुलको भस्म करनेवाली आयी है, वह तो इन (सामान्य सौतों) से भी अत्यन्त निष्ठुर (हृदयहीन) कहलाती है। जैसी क्रोध करनेवाली यह है, ऐसी तीनों लोकोंमें दूसरी और कौन हो सकती है।

राग मारू

[२०८]

आई कुल दाहि निठुर मुरली यह माई।
याकौं रीझे गुपाल, काहूँ न लखाई ॥ १ ॥
जैसी यह करनि करी, ताहि यह बड़ाई।
कैसैं बस रहत भए, यह तौ टुनहाई ॥ २ ॥
दिन दिन यह प्रबल होति, अधर अमृत पाई।
मोहन कौं इहिं तौ कछु मोहिनी लगाई ॥ ३ ॥
कबहुँ अधर, कबहूँ कर, टारत न कन्हाई।
सूरज प्रभु कौं ता बिनु और नहिं सुहाई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! अपने कुलको भस्म करके यह हृदयहीन वंशी (यहाँ) आ गयी है; गोपाल इसपर कब अनुरक्त हो गये, किसीसे देखते नहीं बना । इसने जैसे कर्म किये (उनके विषयमें क्या कहा जाय) तिसपर उसे यह बड़ाई ! मोहन कैसे इसके वश हुए रहते हैं, यह (तो) जादूगरनी है । (श्यामके) अधरामृतको पाकर यह दिनोंदिन प्रबल होती जाती है, मोहनपर तो इसने (अवश्य) कुछ मोहिनी डाल दी है । कभी ओठपर और कभी हाथमें कन्हाई इसे लिये रहते हैं, कभी पृथक् नहीं करते; स्वामीको उसके बिना और कोई प्रिय नहीं लगता ।

राग बिलावल

[२०९]

मुरली हरि कौं आपनौ करि लीन्हौ माई ।
जोइ कहै सोई करैं, अति हरष बढ़ाई ॥ १ ॥
घर बन सँग लीन्हें फिरैं, कहुँ करत न न्यारी ।
राधा आधा अंग है, ताहू ते प्यारी ॥ २ ॥
सोवत जागत चलत हूँ, बैठत रस वासौं ।
दूरि कौन सौं होइगी, लुबधे हरि जासौं ॥ ३ ॥
अब काहे कौं झखति हौ, वह भई लड़ैती ।
सूर स्याम की भावती वह अतिहिं चढ़ैती ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! मुरलीने श्रीकृष्णको अपना बना लिया; (वह) जो भी कहती है, उसीको अत्यन्त हर्षित होकर करते हैं । घरमें और वनमें (सर्वत्र) साथ लिये घूमते हैं, कहीं भी पृथक् नहीं करते । श्रीराधा उनका आधा अङ्ग ही हैं, किंतु उनसे भी यह (अधिक) प्यारी है । सोते-जागते, चलते-बैठते (सब दशाओंमें) उसीसे प्रेम करते हैं; भला, जिसपर श्रीहरि इस प्रकार अनुरक्त हो रहे हैं, वह किससे दूर की जा सकती है । अब क्यों दुखी होती हो, वह तो प्यारी हो गयी । वह श्याम-सुन्दरकी प्रियतमा उनके चित्तपर अत्यधिक चढ़ी हुई है ।

राग जैतश्री

[२१०]

मुरली भई रहति लड़बौरी।
देखति नाहिं रैनिहू बासर, कैसी लावति ढौरी ॥ १ ॥
कर पै धरी अधर के आगैं राखति ग्रीव निहोरी।
पूरत नाद स्वाद सुख पावत, तान बजावत गौरी ॥ २ ॥
आयसु लिएँ रहत ताही कौ, डारी सीस ठगोरी।
सूर स्याम की बुधि चतुराई, लीन्हीं सबै अँजोरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशी तो (मोहनके) प्यारमें पगली हुई रहती है। न रात देखती, न दिन ! कैसी (अवर्णनीय) लगन लगाये रहती है। श्यामसुन्दर उसे हाथोंपर ओठके सम्मुख रख गर्दन झुकाये रहते हैं तथा उसमें स्वर भरकर उसकी गौरी रागकी तान छेड़ते हुए स्वाद (माधुर्य) एवं सुखका अनुभव करते हैं। इसने उनके सिरपर ऐसा जादू डाल दिया है कि उसकी आज्ञाका (सदा ही) पालन करते रहते हैं, इसने श्यामसुन्दरकी सारी बुद्धि और चतुरता छीन ली।

राग गौरी

[२११]

मुरली प्रगट भई धौं कैसैं।
कहाँ हुती, कैसैं धौं आई, गीधे स्याम अनैसैं ॥ १ ॥
मातु पिता कैसे हैं याके, याकी गति मति ऐसी।
ऐसे निठुर होहिंगे तेऊ, जैसे की यह तैसी ॥ २ ॥
यह तुम नाहिं सुनी हौ सजनी, याके कुल कौ धर्म।
सूर सुनत अबहीं सुख पैहौ, करनी उत्तम कर्म ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—'(सखी !) पता नहीं यह वंशी कैसे उत्पन्न हुई, (पहले) कहाँ थी, कैसे यहाँ आ गयी और श्यामसुन्दर (कैसे) अनुचित रूपमें (आवश्यकतासे अधिक) इसपर

अनुरक्त हो गये। इसके माता-पिता कैसे हैं, जिसके कारण आचार-विचार ऐसा है ? वे भी ऐसे ही निष्ठुर होंगे, जैसे निष्ठुर वे हैं, वैसी ही यह (उनकी पुत्री) है।' (इसपर दूसरी गोपी व्यंगसे बोली--) 'सखी! तुमने (क्या) इसके कुलधर्मको नहीं सुना ? (सखियो !) इसके कर्तव्य और उत्तम कर्म सुनकर तुम अब भी सुख पाओगी।'

राग भैरव

[२१२]

याके गुन मैं जानति हौं।
अब तौ आइ भई ह्याँ मुरली, औरैं नातें मानति हौं ॥१॥
हरि की कानि करति, यह को है, कहा करौं अनुमानति हौं।
अबहीं दूरि करौं गुन कहि कैं, नेकु सकुच जिय मानति हौं ॥२॥
यातैं लगी रहति मुख हरि के, सुख पावत, पहिचानति हौं।
सूरदास यह निठुर जाति की, अब मैं यासौं ठानति हौं ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—'(सखी !) मैं इसके गुण जानती हूँ, अब तो यहाँ आकर यह मुरली हो गयी है, इसलिये दूसरे ही (मोहनके) सम्बन्धसे इसका सम्मान करती हूँ। (मैं) श्यामसुन्दरके सम्बन्धका विचार करती हूँ, नहीं तो यह क्या (चीज) है, इसके सम्बन्धमें मुझे क्या करना चाहिये, यह मेरे ध्यानमें है। इसके गुण (दोष) कहकर मैं इसे अभी दूर कर दूँ—भगवान्‌के मनसे हटा दूँ; परंतु मनमें मैं तनिक संकोच करती हूँ। इसीसे यह श्रीहरिके मुखसे लगी रहती है कि वे इससे सुख पाते (प्रसन्न होते हैं); यह मैं पहचानती हूँ। किंतु यह तो निष्ठुर जातिकी है (हमपर तनिक भी दया नहीं करती); इसलिये अब मैं इससे झगड़ा प्रारम्भ करती हूँ।

राग नट

[२१३]

सुनौ री मुरली की उतपत्ति।
बन मैं रहति, बाँस कुल याकौ, यह तौ याकी जत्ति ॥ १ ॥

जलधर पिता, धरनि है माता, अवगुन कहौं उघारि ।
बनहू तैं याकौ घर न्यारौ, निपटै जहाँ उजारि ॥ २ ॥
एक तैं एक गुनन हैं पूरे मातु, पिता औ आपु ।
नहिं जानिऐ कौन फल प्रगट्यौ अतिहीं कृपा प्रताप ॥ ३ ॥
बिषैवासिन पर काज न जानैं, याके कुल कौ धर्म ।
सुनौ सूर मेघनि की करनी, औ धरनी के कर्म ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है–(सखियो!) इस मुरलीकी उत्पत्ति सुनो। यह वनमें रहती है, इसका कुल बाँसका है, यह तो हुई इसकी जाति। मेघ इसके पिता हैं और पृथ्वी माता है। अब (इन सबके) दोष प्रकट करके बतलाती हूँ। वनसे भी पृथक् जहाँ अत्यन्त उजाड़ स्थान है, वहाँ इसका घर है। इसके माता-पिता और यह स्वयं एक-से-एक गुणों (दोषों) में पूरे (पारंगत) हैं; पता नहीं किस (देवता) की अत्यन्त कृपा और प्रतापसे यह फल प्रकट हुआ (कि यह वंशी बनी)। यह तो विषका निवास है, दूसरेका कार्य (उपकार करना) जानती ही नहीं, यही इसके कुलका धर्म है। अब मेघोंकी करनी तथा पृथ्वीके कर्म (जो इसके पिता-माता हैं) सुनो।

राग गौरी

[२१४]

सुनौ सखी ! याके कुल धर्म ।
तैसोइ पिता, मातु तैसी, अब देखौ इनके कर्म ॥ १ ॥
वे बरषत धरनी संपूरन, सर सरिता अवगाह ।
चातक सदा निरास रहत है एक बूँद की चाह ॥ २ ॥
धरनी जनम देति सबही कौं, आपुन सदा कुमारी ।
उपजत फिरि ताही मैं बिनसत, छोभ न कहुँ महतारी ॥ ३ ॥
ता कुल मैं यह कन्या उपजी, याके गुनन सुनाऊँ ।
सूर सुनत सुख होइ तुम्हारैं, मैं कहि कैं सुख पाऊँ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है-- सखी ! इस (वंशी) के कुलके धर्म सुनो। (जैसी यह है,) वैसे ही इसके पिता हैं और वैसी ही माता है, अब इनके कर्म भी देखो। वे (इसके पिता मेघ) अथाह सरोवरों और नदियों (ही नहीं) सम्पूर्ण पृथ्वीपर समझ-बूझकर वर्षा करते हैं; किंतु एक बूँदकी कामना करनेवाला चातक उससे सदा निराश रहता है (उसे वे एक बूँद भी जल नहीं देते)। पृथ्वी (जो इसकी माता है) सभीको जन्म देती है, यद्यपि वह स्वयं सदा अविवाहिता है और जो उससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसीमें नष्ट हो जाते हैं; किंतु माताको इसका कुछ भी दुःख नहीं होता। उसी कुलमें यह कन्या (वंशी) उत्पन्न हुई, अब इसके गुणोंको (भी) सुनाती हूँ, जिन्हें सुनकर तुम्हें आनन्द होगा और मैं भी कहकर सुख प्राप्त करूँगी।

राग जैतश्री

[२१५]

मात पिता गुन कह्यौ बुझाई।
अब याहू के गुन सुनि लीजै, जातैं स्त्रवन सिराई ॥ १ ॥
उनके वे गुन, निठुर कहावत, मुरली के गुन देखौ।
तब याकौ तुम औगुन मानौ, जब कछु अचरज पेखौ ॥ २ ॥
जा कुल मैं उपजी, ता कुल कौ जारि करति है छार।
तनही तन मैं अगिनि प्रकासति, ऐसी याकी झार ॥ ३ ॥
यह जौ स्याम सुनैं स्त्रवननि भरि, कर तैं देहैं डारि।
'सूरदास' प्रभु धोखें याकौं राखत अधरनि धारि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) इस (वंशी)के माता-पिताके गुण तो मैंने समझाकर कह दिये, अब इसके भी गुण सुन लो, जिससे कान शीतल हो जायँ। उनके वे गुण हैं (जिनका मैं अभी-अभी उल्लेख कर चुकी हूँ और) जिनके कारण वे निष्ठुर कहलाते हैं। अब मुरलीके गुण देखो; जब उनमें तुम्हें कुछ अनोखापन दिखायी पड़े, तब तुम इसके दोष मानना (नहीं तो अपने कुलके अनुसार निष्ठुरता यह करे, इसमें आश्चर्य क्या)। जिस कुलमें यह उत्पन्न हुई है, उस कुल (बाँस) को जलाकर भस्म

देती है; क्योंकि इसकी ज्वाला ऐसी है कि (परस्पर शरीरोंकी रगड़से) अपने देहसे देहमें अग्नि प्रकट कर देती है। यदि श्यामसुन्दर कान-भर (ध्यान-पूर्वक) यह बात सुन लें तो इसे हाथसे फेंक देंगे; क्योंकि हमारे स्वामी (तो) धोखेसे (न जाननेके कारण) इसको ओठोंपर रखे रहते हैं।

राग नट

[२१६]

यह मुरली सखि ! ऐसी है।
रीझे स्याम बात सुनि मीठी, नहिं जानत यह नैसी है ॥ १ ॥
देखौ याके भेद सखी री, कैसैं मन दै पैसी है।
हम पै रहति भौंह सतराएँ, चतुर चतुरई जैसी है ॥ २ ॥
वै गुन रहति चुराएँ हरि सौं, देखौ ऐसी गैसी है।
सुनौ सूर बैरनि भइ हम कौं, प्रगट सौति ह्वै बैसी है ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! यह मुरली ऐसी है, (जैसा मैं कह चुकी हूँ)। श्यामसुन्दर इसका मीठा शब्द सुनकर इसपर रीझ गये; वे यह नहीं जानते कि यह बहुत बुरी है। सखी ! इसका रहस्य तो देखो, किस प्रकार अपना चित्त देकर (संयत होकर) व्रजमें घुस आयी है; (और अब) हमपर भौंह चढ़ाये (रुष्ट) ही रहती है, बुद्धिमानोंकी चतुराईके समान यह चतुर है। देखो तो, यह ऐसी घाघ (रहस्य छिपानेमें निपुण) है कि अपने वे गुण (स्वकुल-दाहादि) हरिसे छिपाये रहती है। सुनो ! हमारे लिये तो यह शत्रु होकर प्रत्यक्ष ही सौत बनकर बैठी है।

[२१७]

यह तौ भली उपजी नाहिं।
निदरि बैसी सौति ह्वै कैं, देखि देखि रिसाहिं ॥ १ ॥
कहा याकी सकुच मानति, कहौ बात सुनाइ।
तबहिं बस करि लियौ हरि कौं, हम सबनि बिसराइ ॥ २ ॥
प्रबल पावस सरद, ग्रीषम कियौ तप तनु गारि।
तिन्हैं तू लै आप बैसी, प्रानपति बनवारि ॥ ३ ॥

जो भई सो भई अब यह छाँड़ि दै रस बाद।
सूर प्रभु कें अधर लगि लगि कहा बोलति नाद ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी !) यह (वंशी) अच्छी उत्पन्न नहीं हुई (इसका आना अच्छा नहीं हुआ); हमलोगोंका निरादर करके सौत बन बैठी। अब उसे देख-देखकर हम रुष्ट हो रही (कुढ़ रही) हैं। इसका संकोच क्यों मानती हो, बात सुनाकर (इसका रहस्य) कह दो। (जबसे) यह आयी, तभीसे इसने हरिको वशमें कर लिया और हम सबोंको भुलवा (त्याग करवा) दिया। (फिर बाँसुरीको सम्बोधन करके कहने लगीं-) अरी वंशी ! हमने भारी वर्षामें, शीत ऋतुमें तथा गर्मीमें शरीर गलाकर (जिनके लिये) तपस्या की, हमारे उन प्राणपति वनमालीको तू स्वयं ले बैठी (तूने उनपर अधिकार कर लिया)। जो हुआ, सो हुआ; अब यह प्रेम-कलह छोड़ दे, हमारे स्वामीके ओठोंसे लग-लगकर (झगड़ा बढ़ानेके लिये) व्यर्थ शब्द क्यों बोलती है।

राग कान्हरा

[२१८]

ऐसैं कहौ निदरि मुरली सौं, कृपा करौ, अब बहुत भई।
सकुचैं नहीं बनत री माई, घर घर करिहौ दई दई ॥ १ ॥
देखति नाहिं चतुरई वाकी, मुँह पाएँ ज्यौं फूलि गई।
अधर सुधा सरबस जु हमारौ, सो याकौं सब लूट भई ॥ २ ॥
ओछी जाति डोम के घर की, कहा मंत्र करि हरि बसई।
सूरदास प्रभु बड़े कहावत, ऐसी कौं धरि अधर लई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशीका अनादर करके उससे इस प्रकार कहो कि 'अब कृपा करो, बहुत (धाँधली) हो गयी।' सखी ! संकोच करनेसे काम नहीं चलता, फिर अपने-अपने घर 'हा दैव ! हा दैव!' करोगी। उस (वंशी) की चतुरता नहीं देखती हो, (मोहनका) मुख (रुख-मर्जी) पाकर जैसे फूल गयी है; (उनका) अधरामृत जो हमारा सर्वस्व है, वह इसके लिये सब-का-सब लूटनेकी वस्तु हो गयी। यह चाण्डाल-

के घरकी (बनी) जातिकी ओछी (तुच्छ) है, पता नहीं, क्या (जादू) करके इसने हरिको वशमें कर लिया, स्वामी इसीलिये महान् कहे जाते हैं कि ऐसी (निकृष्ट वंशी) को भी उन्होंने ओठपर रख लिया।

राग बिहागरौ

[२१९]

याकी जाति स्याम नहिं जानी।
बिन बूझें, बिनहीं अनुमानें, करि बैठे पटरानी ॥ १ ॥
बारहिं बार लेत आलिंगन सुनि सुनि मधुरी बानी।
गाँउँ न ठाँउ बाँस बंसी कौ, जाइ कहाँ तैं आनी ॥ २ ॥
जिनि कुल दाहत बिलँब न कीन्हौ, कौन धरम ठहरानी।
सुनौ सूर यह करनी, यह सुख जात न कछू बखानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) श्यामसुन्दरने इस (वंशी) की जाति नहीं जानी, बिना समझे, बिना अनुमान (विचार) किये इसे पटरानी बना बैठे। इसकी मधुर ध्वनि बार-बार सुनकर इसे हृदयसे लगाते हैं। इस बाँसकी वंशीका न तो (कोई) गाँव है न स्थान है; पता नहीं कहाँसे जाकर (वे इसे) ले आये हैं। जिसने अपने कुल (बाँस) को जलानेमें देर नहीं की, वह किस धर्मपर स्थिर रह सकती है। सुनो, इसका यह (कुलनाशक) कर्म और यह (मोहनकी प्रिया होनेका) आनन्द कुछ वर्णन नहीं किया जाता।

राग केदारौ

[२२०]

मुरली अपने सुख कौं धाई।
सुंदर स्याम प्रबीन कहावत, कहाँ गई चतुराई ॥ १ ॥
यह देखैं मन समुझि आपनें, दाहि कुलै जो आई।
तातैं सिद्धि कहा पुनि ह्वैहै, जाके ये गुन माई ॥ २ ॥
जो अपने स्वारथ कौं धावै, तातैं कौन भलाई।
सूर स्याम के अधर सुधा कौं ब्याकुल आई धाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) वंशी अपने (ही) सुखके लिये भागकर आयी, किंतु श्यामसुन्दर तो चतुर कहे जाते हैं, उनकी चतुरता कहाँ चली गयी। वे अपने मनमें यह तो समझकर देखें कि जो अपने कुलको ही भस्म करके आयी है, उससे फिर कौन-सा कार्य सिद्ध होगा। सखी! जिसके ऐसे गुण (दोष) हैं, जो अपने ही स्वार्थकी सिद्धिके लिये दौड़ता है, उससे किसीका क्या भला होना है। यह (वंशी) तो श्यामसुन्दरके अधरामृत (-पान) के लिये (ही) व्याकुल होकर दौड़ी आयी है।

राग धनाश्री

[२२१]

मुरली आपु स्वारथिनि नारि।
ताकी हरि प्रतीति मानत हैं, जीति न जानत हारि ॥ १ ॥
ऐसे बस्य भए हरि वाके, कहा ठगौरी डारि।
लूटति है अधरनि कौ अमृत, खात देति है ढारि ॥ २ ॥
को बकि मरै, बनी है जोरी, तृन तोरति हौं वारि।
सूर स्याम कौं भले कहति हौं, देउँ कहा अब गारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) वंशी तो अपने ही स्वार्थको देखनेवाली स्त्री है। श्रीहरि उसका विश्वास करते हैं; न (अपनी) विजय समझते हैं न पराजय (यह नहीं देखते कि वंशीको अपनानेमें उनकी हार होगी या जीत)। पता नहीं उसने क्या जादू कर दिया कि श्याम उसके इस प्रकार वशमें हो गये। वह उनके अधरामृतको लूटती है और (अपने हृदयकी) गंदगी (ध्वनिके बहाने) गिरा देती है। कौन बकवाद करके मरे, (मोहन और मुरलीकी) यह अच्छी जोड़ी सजी है। तिनके तोड़कर हम इसपर न्योछावर करती हैं, श्यामसुन्दरको तो मैं अच्छा ही कहती हूँ, अब उन्हें गाली क्या दूँ (उनकी निन्दा क्या करूँ)।

राग सोरठ

[२२२]

हम तप करि तन गार्‌यौ जाकौं।
सो फल तुरत मुरलिया पायौ, करी कृपा हरि ताकौं ॥ १ ॥
कपटी, कुटिल और नहिं कोई, जैसे हैं ब्रजराज।
जो सनमुख सो बिमुख कहावै, बिमुख करै सुख राज ॥ २ ॥
बूझी बात नंद नंदन की, मुरली के रस पागे।
सूर अधर रस आहि हमारौ, ताकौं बकसन लागे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी!) हम सबने जिसके लिये तपस्या करके अपना शरीर गला दिया, वह फल वंशीने तुरंत (बिना श्रमके) पा लिया, श्रीकृष्णने उसपर कृपा कर दी। ये व्रजराज जैसे कपटी और कुटिल हैं, वैसा दूसरा कोई नहीं। जो उनके अनुकूल होता है, वह तो प्रतिकूल कहा जाता है और जो प्रतिकूल है, वह सुखपूर्वक राज्य करता है। नन्दनन्दनकी बात (रहस्य) हमने समझ ली, वे वंशीके प्रेममें निमग्न हो गये हैं। उनका अधररस जो हमारा (स्वत्व) है, उसे (वंशीको) उपहारमें देने लगे हैं।

राग रामकली

[२२३]

मुरली हम सौं बैर दढ़ायौ।
चली निपट इतराइ, नेकुहीं हरि अधरनि परसायौ ॥ १ ॥
फूली फिरति स्याम कर बैठी, अतिहीं गरब बढ़ायौ।
ज्यौं निधनी धन पाइ अचानक नैन अकास चढ़ायौ ॥ २ ॥
सूर स्याम देखत सिहात हैं, ताकौं गाइ रिझायौ।
त्रिभुवन पति, श्रीपति जे कहावत, तिन मुरली बस पायौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी!) मुरलीने हमसे पक्की शत्रुता कर ली है। श्यामने (इसे) तनिक-सा ओठोंका स्पर्श करा दिया, इसीसे (यह) बहुत ही इठलाकर (गर्वमें भरकर) चलने लगी।

श्यामसुन्दरके हाथपर बैठी फूली फिरती है, अत्यन्त अभिमान बढ़ा लिया है,—ठीक उसी प्रकार जैसे कंगाल व्यक्ति अचानक धन पाकर आकाशकी ओर नेत्र चढ़ा लेता (दूसरे किसीकी ओर देखता तक नहीं) है। जिन श्यामसुन्दरको देखकर (हम) प्रसन्न होती हैं, उनको गाकर इसने प्रसन्न कर लिया है। जो त्रिभुवनके स्वामी श्रीलक्ष्मीनाथ (शोभाके समूह) कहे जाते हैं, उन्हें (तुच्छ) वंशीके वशमें पाया।

राग नट

[२२४]

मुरली अति चली इतराइ।
अछै निधि जिनि लूटि पाई, क्यौं नहीं सतराइ ॥ १ ॥
आदि जौ यह बड़ी होती, चलति सीस नवाइ।
सबनि कौं लै संग चलती, दौरि मिलती आइ ॥ २ ॥
बाँस तैं उतपत्ति जाकी, कहा बुधि ठहराइ।
सूर प्रभु ता बस्य जैसैं, रहे तनु बिसराइ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशी अत्यन्त गर्विष्ठ हो चली है। (मोहनके अधरामृतके समान) अक्षय निधि जिसे लूटमें (बिना श्रमके) मिल गयी हो, वह अहंकार क्यों न करे। यदि यह पहिलेसे (ही) महान् होती तो मस्तक झुकाकर (नम्रतासे) चलती, (हम) सबोंको साथ लेकर चलती, हमसे दौड़कर आ मिलती; किंतु जिसकी उत्पत्ति ही बाँससे हुई हो, उसमें समझदारी कहाँ टिके। हमारे स्वामी तो उसके ऐसे वशमें हो गये हैं कि अपने शरीरकी (भी) सुधि भूल गये हैं।

राग बिहागरौ

[२२५]

स्याम सुहागिनी मुरली।
भेद नाना करति, हरषति, उन हरषि उर ली ॥ १ ॥

सदा तासौं रहत पागे, मंद मधु सुर ली।
रैनि बासर टरति नाहीं, रहति जहँ दुरली ॥ २ ॥
भईं ब्याकुल चरित देखत नारि ब्रजपुर ली।
सूर आरज पंथ बिसर्‍यौ, भवन डर गुर ली ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—सखी !) वंशी श्यामसुन्दरकी लाड़िली है, अनेक प्रकारके भेद (अलगाव) उत्पन्न करती प्रसन्न होती है और उन्होंने (मोहनने) प्रसन्न होकर उसे हृदयसे लगा लिया है। वे सदा उसके प्रेममें निमग्न रहते हैं, (उसमें) मन्द मधुर स्वर लिया (भरा) करते हैं, यह जहाँ (जिन हाथों एवं होठोंमें) छिपी रहती है, वहाँसे रात-दिन हटती नहीं (सदा बनी रहती है)। व्रजपुरकी स्त्रियाँ व्याकुल होकर उसके चरित (काम) देखती हैं। सूरदासजी कहते हैं—उन्हें आर्यपथ, घर तथा गुरुजनोंका भय (भी) भूल गया है।

राग केदारौ

[२२६]

मुरली एते पै अति प्यारी।
जद्यपि नाना भाँति नचावति, सुख पावत गिरिधारी ॥ १ ॥
रहत हजूर एक पग ठाढ़े, मानत हैं अति त्रास।
कर तैं कबहुँ नेक नहिं टारत, सदा रहत ता पास ॥ २ ॥
बारंबार देति आयसु, हरि पै राखति अधिकार।
सूर स्याम कौं अपबस कीन्हौ, रहत रही बन झार ॥ ३ ॥

(गोपी कहती है—) वंशी इतनेपर भी हरिको अत्यधिक प्यारी है। यद्यपि वह मोहनको अनेक प्रकारसे नचाती है, फिर भी उससे गिरिधारीलाल सुख ही पाते हैं। (स्वयं) सरकार एक पैरसे खड़े रहते हुए भी उसका अत्यन्त भय मानते हैं; (वे उसे) हाथसे कभी तनिक भी हटाते नहीं, सदा उसके पास रहते हैं। (वह भी) श्यामसुन्दरपर अपना अधिकार

(प्रभुत्व) रखती, बार-बार उन्हें आज्ञा देती है। सूरदासजी कहते हैं कि यह वंशी पहले तो वनकी झाड़ियोंमें (कहीं) रहती थी, किंतु अब श्यामसुन्दरको इसने अपने वशमें कर लिया है।

राग गौरी

[२२७]

मुरली स्यामै मूँड़ चढ़ाई।
बारंबार अधर धरि याकौं काहें गरब कराई ॥ १ ॥
तब तैं गनति नाहिं यह काहू, जब तैं उन मुँह लाई।
ना जानिऐ और का करिहै, देखति नाहिं भलाई ॥ २ ॥
अपने बस्य किए नँद नंदन, बैरिनि हम कहँ आई।
सूरज प्रभु एते पै माई ! मानत बहुत बड़ाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) श्यामसुन्दरने ही वंशीको सिर चढ़ाया है, (न जाने) बार-बार इसे अधरोंपर रखकर (उन्होंने) क्यों इसके अहंकारको बढ़ाया। जबसे उन्होंने इसे मुँह लगाया, तबसे यह किसीको (कुछ) गिनती ही नहीं। पता नहीं (आगे) यह और क्या करेगी; (वह हमलोगोंका) भला तो सोचती नहीं। यह हमारे लिये शत्रु बनकर आयी है और नन्दनन्दनको (इसने) अपने वशमें कर लिया है। सखी ! इतनेपर भी हमारे स्वामी इसका बहुत सम्मान करते हैं।

राग नट

[२२८]

बड़े की मानिए जो कानि।
कहा ओछे की बड़ाई, जाहि ओछी बानि ॥ १ ॥
बड़ौ निदरै नाहिं काहू, ओछेई इतराइ।
नीर नारी नीचेही कौं चलै जैसैं धाइ ॥ २ ॥
रही बन मैं, घरै ल्याए महा बुरी बलाइ।
निदरि कैं यह सबनि बैसी, सौति उपजी आइ ॥ ३ ॥

दिनैं दिन अधिकार बाढ़्यौ, आगे रहत कन्हाइ।
सूरदास उपाधि बिधना कहा रची बनाइ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) कोई बड़ा (आदरणीय) हो तो उसका संकोच भी माना जाय; (किंतु) जिसका स्वभाव (ही) ओछा (नीच) हो, उस तुच्छका क्या बड़प्पन (आदर)। जो बड़ा होता है, वह किसीका अनादर नहीं करता, नीच ही इतराता (गर्व करता) है, जैसे नालीका पानी नीचेकी ओर ही दौड़ता (वेगसे बहता) चलता है। बनमें रहती हुई वंशीरूपी इस अत्यन्त बुरी आपत्तिको मोहन घर ले आये और यह (हम) सबोंका अनादर करके बैठ गयी एवं आकर सौत बन गयी। कन्हाई (इसे) अङ्गसे लगाये रहते हैं, इसलिये दिनों-दिन (क्रमशः) (इसका) अधिकार बढ़ता गया। पता नहीं ब्रह्माने यह कौन-सी उपाधि (विपत्ति) सँवारकर रच दी।

राग गौरी

[२२९]

मुरली हमैं उपाधि भई।
नंद नँदन हम सबनि भुलाई, उपजी कहा दई ॥ १ ॥
कैसैं अब यह दूरि होति है, नोखी मिली नई।
देखौ री संबंध पाछिलौ, घर बिष बेलि बई ॥ २ ॥
जारें जरै न काटैं सूखै, ह्वै गइ अमृतमई।
सूर स्याम भरुहाई याकौं ब्रज मैं आनि छई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशी हमारे लिये विपत्ति हो गयी। हा दैव ! पता नहीं, यह कैसी प्रकट हुई कि नन्दनन्दनने (इसे पाकर) हम सबको भुला दिया। यह तो (सर्वथा) नयी और अनोखी बला (हमें) प्राप्त हुई है, अब कैसे यह दूर हो सकती है। सखी ! इसका पिछला सम्बन्ध (उत्पत्ति) देखो, घरमें ही इसने विषकी लता बो दी है।

न तो अब (यह) जलानेसे जलेगी और न काटनेसे सूखेगी। [मोहनका अधरामृत पीकर] अमर हो गयी है। श्यामसुन्दरने (ही) इसे बढ़ावा दिया है, जिससे यह व्रजमें आकर छा गयी है।

[२३०]

दिन दिन मुरली ढीठि भई।
रहति रही बन झार पात मैं, सो भइ सुधामई ॥ १ ॥
प्रगटै भाग सुहागिनि हरि की, अनुरागी हरि ताके।
धनि धनि बंसी भए रहत हैं, स्याम सुँदर बस जाके ॥ २ ॥
वाकौ भाग सुहाग साँचिलौ, नेक नाहिं सँग त्यागत।
सूर स्याम राजा, वह रानी, वाके सरि को लागत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) मुरली दिनोंदिन (उत्तरोत्तर) ढीठ होती जा रही है। जो पहिले वनकी झाड़ी-पत्तोंमें रहती थी, वही अब अमृतमयी हो गयी। प्रत्यक्ष ही यह श्रीकृष्णके सौभाग्य (प्रेम) को पाकर बड़भागिनी हो गयी है और श्रीकृष्ण इसके प्रेमी हैं; यह वंशी परम धन्य है, जिसके श्यामसुन्दर वश हुए रहते हैं। उसीका भाग्य और सुहाग सच्चा है; क्योंकि मोहन तनिक भी (उसका) साथ नहीं छोड़ते। श्यामसुन्दर राजा (उसके प्रियतम) हैं और वह रानी; भला, उसकी बराबरी कौन कर सकता है।

राग अड़ानौ

[२३१]

मुरली की सरि कौन करै।
नंद नँदन त्रिभुवन पति नागर, सो जो बस्य करै ॥ १ ॥
जबहीं जब मन आवत तब तब, अधरनि पान करै।
रहत स्याम आधीन सदाई, आयसु तिनहि करै ॥ २ ॥
ऐसी भई मोहिनी माई, मोहन मोह करै।
सुनौ सूर याके गुन ऐसे, ऐसी करनि करै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है--(सखी !) वंशीकी बराबरी कौन कर सकता है, जिसने त्रिभुवनके स्वामी परम चतुर इन नन्दनन्दनको वशमें कर लिया है। जब-जब उसके मनमें आता है; तभी-तभी (यह मोहनके) अधर (-रस) का पान करती है; श्याम सदा ही उसके वशमें रहते हैं और वह उन्हें आज्ञा (तक) दे डालती है। सखी ! यह ऐसी मोहिनी हो गयी है कि (त्रिभुवनको मोहनेवाले) श्रीकृष्णको भी मोहित कर लेती है। सुनो, इसके ऐसे गुण हैं और ऐसे कर्म यह करती है।

राग केदारौ

[२३२]

मुरली मोहिनी अब भई।
करी जु करनि देव दनुजनि प्रति, वह बिधि फेरि ठई ॥ १ ॥
उन पयनिधि, हम ब्रज सागर मथि पाई पियुष नई।
अधर सुधा हरि बदन इंदु की इहिं छलि छीनि लई ॥ २ ॥
आपु अँचै, अँचवाइ सप्त सुर कीन्हे दिग बिजई।
एकै पुट उत अमृत सूर, इत मदिरा मदन मई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) मुरली अब मोहिनी हो गयी है। (मोहिनी-अवतारमें हमारे श्यामसुन्दरने) देवताओं तथा असुरोंके साथ जो कर्म (व्यवहार) किया था, वही पद्धति दूसरी बार (इसके द्वारा) अपनायी गयी है। उन्होंने (देवता तथा असुरोंने) क्षीर-समुद्रका और हमने व्रजरूपी सागरका मन्थन करके (श्यामके अधरामृतके रूपमें) नवीन अमृत पाया; किंतु हरिके चन्द्रमुखका अधरामृत (जैसे मोहिनीने असुरोंसे छल करके अमृत ले लिया था, वैसे ही) छल करके इसने (हमसे) छीन लिया। (इसने उसे) स्वयं पीकर और (षड्ज आदि) सातों स्वरोंको पिलाकर उन्हें दिग्विजयी बना दिया। (जैसे जैसे मोहिनीने देवताओंको सुधा और दानवोंको सुरा पिलायी थी, वैसे ही) एक ही (अपने छिद्ररूपी) पात्रसे यह उधर (अपनी ओर) तो अमृत और इधर (हम सबकी ओर) काममयी मदिरा बाँटती है।

राग गौरी

[२३३]

मुरलिया अपनौ काज कियौ।
आपुन लूटति अधर सुधा हरि, हम कौं दूरि कियौ ॥ १ ॥
नंद नँदन बस भए बचन सुनि, तिन्हैं बिमोह कियौ।
स्थावर चर, जंगम जड़ कीन्हे, मदन बिमोह कियौ ॥ २ ॥
जाकी दसा रही नहिं वाही, सबही चकित कियौ।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि, तिन कौं हाथ लियौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है--(सखी !) वंशीने अपना काम बना लिया; (वह) स्वयं तो श्रीकृष्णका अधरामृत लूटती है और हम सबको (इसने) दूर हटा दिया। नन्दनन्दन (इसका) आलाप सुनकर इसके वश हो गये, उन्हें (इसने) भली प्रकार मोहित कर लिया। स्थावर (जड) पदार्थोंको इसने चल (चलनेवाला) और जङ्गम (चलनेवालों)को जड बना दिया तथा कामदेवको भी विमुग्ध कर दिया। किसीकी भी अपनी स्वाभाविक दशा नहीं रह गयी, सभीको इसने आश्चर्यमें डाल दिया। हमारे स्वामी (तो) चतुर शिरोमणि हैं, किंतु उन्हें भी इसने वशमें कर लिया।

[२३४]

मुरलिया स्यामै और कियौ।
औरै दसा, और मति ह्वै गइ, और बिबेक हियौ ॥ १ ॥
तब तैं निठुर भए हरि हम सौं, जब तैं हाथ लई।
निसि दिन हम उन संगैं रहतीं, मनु ह्वै गईं नई ॥ २ ॥
इहिं औरै करि डारे भारे, हम कौं दूरि करी।
घर की बन, बन की घर कीन्ही, सूर सुजान हरी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) वंशीने श्यामको कुछ दूसरा ही बना दिया; उनकी और ही दशा, भिन्न बुद्धि और हृदयका विचार भी कुछ भिन्न ही हो गया। जबसे (उन्होंने) इस (वंशी) को हाथमें लिया, तभीसे

श्रीकृष्ण हमारे प्रति निष्ठुर हो गये, जो हम रात-दिन (सदा) उनके साथ ही रहती थीं, मानो (अब उनके लिये) नवीन (अपरिचित) हो गयीं। हम (सब)को दूर करके इस (वंशी) ने उन्हें अत्यन्त भिन्न बना दिया। चतुर श्यामसुन्दरने जो घर (उन) की थीं (उन सबको) तो बनकी (अपरिचिता) बना दिया और (जो) बनकी (वंशी) थी उसे घरकी (प्रिया) बना लिया।

राग कल्यान

[२३५]

सजनी, स्याम सदाईं ऐसे।
एक अंग की प्रीति हमारी, वै जैसे के तैसे ॥ १ ॥
ज्यौं चकोर चंदा कौं चाहै, चंदा नेक न मानै।
जल के तीर मीन तन त्यागै, नीर निठुर नहिं जानै ॥ २ ॥
ज्यौं पतंग उड़ि परै ज्योति तकि, वाकैं नेक न भावैं।
चातक रटि रटि जनम गँवावै, जल वे डारत खावैं ॥ ३ ॥
इनहू तैं निरदई बड़े वे, तैसिऐ मुरली पाई।
सूर स्याम जैसे, तैसी वह भली बनी अब माई ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी! श्याम सदासे ऐसे ही (निष्ठुर) हैं, हमारा प्रेम तो एकाङ्गी (वे भी प्रेम करें तो हम प्रेम करें—इस भावसे निरपेक्ष) है; वे तो जैसे पहिले थे, वैसे ही (अब) हैं। जैसे चकोर चन्द्रमाको चाहता है, किंतु चन्द्रमा तनिक भी उसका आदर नहीं करता; जैसे जलके किनारे ही मछली (जलके वियोगमें) शरीर छोड़ देती (मर जाती) है, किंतु निष्ठुर पानी (उसकी पीड़ाका) तनिक भी अनुभव नहीं करता; जैसे फतिंगा दीपककी लौको देखकर उसमें उड़कर पड़ता है (और जल जाता है), किंतु उस लौको तनिक भी उससे प्रेम नहीं; जैसे चातक रटता-रटता (मेघोंको पुकारता हुआ, उससे याचना करता हुआ) पूरा जीवन नष्ट कर देता है, किंतु वे (मेघ उसके मुखमें डालनेके बदले) जलको समुद्र आदिपर

गिरा देते हैं (उपयुक्त स्थानपर नहीं बरसते)। इन सबसे भी ये (श्याम) अधिक निर्दय हैं और वैसी ही (निर्दय) मुरली इन्होंने पायी है। जैसे श्याम हैं, वैसी ही वह (वंशी) है; सखी! अब अच्छी (जोड़ी) बनी है (हमारे लिये कोई आशा ही नहीं रही)।

राग रामकली

[२३६]

मुरली कौ मन हरि सौं मान्यौ।
हरि कौ मन मुरली सौं मिलि गयौ, जैसैं पय औ पाँन्यौ ॥ १ ॥
जैसैं चोर चोर सौं रातै, ठग ठग एकै जानि।
कुटिल कुटिल मिलि चलैं एक ह्वै, दुहुनि बनी पहिचानि ॥ २ ॥
ए बन बन नित धेनु चरावत, वह बनही की आहि।
सूर गढ़ी जोरी बिधना की, जैसी तैसी ताहि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) वंशीका मन श्रीकृष्णसे संतुष्ट हो गया है और श्रीकृष्णका मन वंशीसे उसी प्रकार मिल गया है, जैसे दूध और पानी परस्पर मिल जाते हैं। जैसे चोर चोरसे प्रेम करता है, ठग-ठग (भी) एक ही समझने चाहिये, तथा दो कुटिल व्यक्ति एक दूसरेसे मेल करके(एक होकर) चलते हैं, उसी प्रकार इन दोनों (श्याम और वंशी) में भी पहिचान (मित्रता) हो गयी है। ये नित्य वन-वन घूमकर गायें चराते हैं और वह (तो) वनकी है ही। ब्रह्माने जैसेके लिये वैसी ही (सुन्दर) जोड़ी बना दी है।

राग धनाश्री

[२३७]

काहें न मुरली सौं हरि जोरैं।
काहें न अधरनि धरैं जु पुनि पुनि, मिली अचानक भोरैं ॥ १ ॥

काहें नहीं ताहि कर धारैं, क्यौं नहिं ग्रीव नवावैं।
काहें न तनु त्रिभंग कर राखैं, ताके मनै चुरावैं ॥ २ ॥
काहें न यौं आधीन रहैं हैं, वे अहीर, वह बेनु।
सूर स्याम कर तैं नहिं टारत, बन बन चारत धेनु ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) हरि मुरलीसे प्रेम क्यों न करें, वह अचानक धोखेमें मिल गयी, फिर उसे वे बार-बार ओठोंपर क्यों न रखें, क्यों न उसे हाथमें लें और क्यों न (उसके आगे) गर्दन झुकायें (नमस्कार करें), क्यों न शरीरको त्रिभंग बनाकर रखें और (क्यों न) उसके चित्तको चुरायें (उसे मोहित करें) और क्यों न इस प्रकार उसके वश हुए रहें; (क्योंकि) वे अहीर हैं और वह बाँस है। इसीलिये वन-वन गायें चराते समय भी श्यामसुन्दर उसे हाथसे नहीं हटाते।

राग बिलावल

[२३८]

वाही कें बल धेनु चरावत।
वहै लकुट, जाकी वह मुरली, वातैं वे सुख पावत ॥ १ ॥
वै अति निठुर, निठुर वे बातैं, मिले कैं घात बतावत।
बन हीं बन मैं रहत निरंतर, ताहि बजावत, गावत ॥ २ ॥
वाके बचन अमृत हैं इन कौं, ताहि अधर रस प्यावत।
सूर स्याम बनवारि कहावत, वह बन बाँसि कहावत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) उसी (वंशी) के बल तो वे (श्याम) गायें चराते हैं, वही (बाँसका डंडा) उनके लकुटरूपमें है, जिसकी वह मुरली है; इसीलिये उससे वे सुखी होते हैं। वे (मोहन) अत्यन्त निष्ठुर हैं और वे (वंशीके) शब्द (भी) अत्यन्त निष्ठुर होते हैं, इसलिये मिल करके (दोनों परस्पर निष्ठुरताके) दाव बतलाते (दिखाते) हैं। उसे बजाते-गाते सदा (श्याम) एक वनसे दूसरे वनमें घूमते ही रहते हैं। इन (मोहन) के लिये उस (वंशी) के वचन (स्वर) अमृतके समान

(प्रिय) हैं और ये उसे (अपने) अधरोंका अमृत पिलाते (रहते) हैं। श्यामसुन्दर वनवारी (वनमाला धारण करनेवाले) कहे जाते हैं और वह वनकी बाँसुरी कही जाती है। (इससे दोनोंका मेल ठीक ही है।)

राग रामकली

[२३९]

बैर सदा हम सौं हरि कीन्हौ।
प्रथमै रोकि रहे गहि मारग, दधि लै जान न दीन्हौ ॥ १ ॥
पुनि मन हरयौ भेरहीं भेदै, इंद्री संगै लीन्हौ।
ता पाछें ए नैन बुलाए, इन उनही कौं चीन्हौ ॥ २ ॥
अब मुरली बैरिनि उपजाई, निपट भई हम भीन्हौ।
सूर परे हरि खोज हमारें, ऐसे पै मन गीन्हौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी!) श्रीकृष्णने सदा हमसे शत्रुता की है। (वे) पहिले हमारा मार्ग रोककर खड़े हो गये और दही लेकर हमें जाने नहीं दिया। इसके बाद छिपे ही-छिपे (गुपचुप) उन्होंने इन्द्रियों (कान, नाक आदि)के साथ हमारे मनको हरण कर लिया और उसके (भी) बाद इन नेत्रोंको भी बुला लिया, जिससे इन नेत्रोंने भी उन्हींको पहिचाना। अब यह हमारी शत्रु वंशी उत्पन्न कर दी, (जिससे) हम आर्द्र (दुखी) हो गयीं। श्रीकृष्ण तो हमारे पीछे ही पड़ गये, फिर भी (हमारा) मन (तो) उन्हींपर अनुरक्त है।

राग बिलावल

[२४०]

सुनि सजनी यह साँची बानी,
बारेहि तैं नगधर कहवायौ।
धन्य धन्य करि, ता पितु माता,
जिन कहि कहि उपमा यह गायौ ॥ १ ॥

इंदु बदन, तन स्याम सुभग घन,
तड़ित बसन, सति भाव बतायौ।
अलक भृंग पटतर कौं साँचे,
कर मुख चरन कमल करि गायौ ॥ २ ॥
ए उपमा इनही कौं छाजैं,
अब मुरली अधरनि परसायौ।
सूर अंस यह आहि हमारौ,
मुरली सबै अकेली पायौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! यह सच्ची बात सुन ! बचपनसे ही श्याम नगधर* कहलाये हैं। (वह) कवि तथा उसके पिता-माता परम धन्य हैं, जिसने ऐसी (आगे कही जानेवाली) उपमाएँ देकर श्यामका गान (रूप-निरूपण) किया है। (उन्होंने) उसके मुखको चन्द्रमा, शरीरको सुन्दर श्याम मेघ, वस्त्रको विद्युत् कहकर सच्चा निरूपण किया। भौंरे अलकोंकी सच्ची उपमा हैं; कर, मुख तथा चरणोंका कमल कहकर वर्णन किया गया है। ये उपमाएँ इन्हींको शोभा देती हैं, (तिसपर) अब ओठोंसे वंशीको लगा लिया है। यह (अधरामृत) तो हमारा भाग था, जिसे वंशीने सब-का-सब अकेले ही हड़प लिया।

राग रामकली

[२४१]

सजनी, अब हम समझि परी।
अंग अंग उपमा जे हरि के, कविता बनैं धरी ॥ १ ॥
नव जलधर तन कहियत, सोभा दामिनि पट फहरी।
भँवर कुटिल कुंतल की सोभा, सो हम सही करी ॥ २ ॥
मुख छबि ससि पटतर उन दीन्हौ, यह सुनि अधिक डरी।
सूर सहाइ भई यह मुरली, अपने कुलै जरी ॥ ३ ॥

---

* नगधरपर श्लेष है। नगका अर्थ मणि और पर्वत दोनों होनेसे नगधरका अर्थ मणिधर सर्प और गिरिधर दोनों है।

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! अब हमारी समझमें बात आ गयी; श्रीकृष्णके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी जो उपमाएँ हैं, वे तो कविताओंमें बनी रखी हैं। उनका शरीर नवीन मेघके समान कहा जाता है, फहराते हुए वस्त्रकी शोभा बिजलीके समान तथा घुँघराले केशोंकी शोभा भौंरोंके समान कही गयी है—इसे हम सच मानती हैं। (किंतु) मुखशोभाकी तुलना उन्होंने (कवियोंने) चन्द्रमाके साथ की, यह सुनकर हम अधिक डर गयीं (कि जैसे चन्द्रमा वियोगिनीको जलाता है, वैसे ही यह मुख भी हमें पीड़ा न दे; पर वही बात हो गयी)। (इन सबके साथ) अपने कुलको जलानेवाली यह मुरली अब उनकी (और) सहायक हो गयी है।

[२४२]

तातैं मुरली कैं बस स्याम।
जैसे कौं तैसौई मिलवै, बिधना के ए काम॥ १॥
नेकु न कर तैं करत निनारी, कुल जारी भइ बाम।
निसि बासर वाके रस पागे, बैठें, ठाढ़ें जाम॥ २॥
वाके सुख कौं बन बन डोलत, जहँ तहँ, छाँह न घाम।
सूरदास प्रभु की हितकारिनि हम पै राखति ताम॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) ब्रह्मा (भाग्यविधाता) का यह काम है कि जो जैसा हो, उसके साथ वैसेको ही मिला दे। श्यामसुन्दर इसीलिये मुरलीके वशमें हैं। उसे वे अपने हाथसे तनिक भी पृथक् नहीं करते। अपने कुलको जलानेवाली (यह वंशी अब) उनकी स्त्री हो गयी है; रात-दिन, बैठे-खड़े, प्रत्येक समय उसीके प्रेममें निमग्न रहते हैं। उसे सुख देनेके लिये जहाँ-तहाँ वन-वनमें घूमते रहते हैं, न छाया देखते न धूप। यह (वंशी) हमारे स्वामीकी (तो) हितकारिणी है और हमपर क्रोध किये रहती है।

राग धनाश्री

[२४३]

विधना मुरली सौति बनाई।
कुटिल बाँस की, बंस बिनासिनि, आस निरास कराई ॥ १ ॥
जौ यह ठाट ठाटिबोइ राख्यौ, कुल की होती कोऊ।
तौ इतनौ दुख हमै न होतो, औगुन आगर दोऊ ॥ २ ॥
ए निरदई, निठुर वह बन की, घर अब भयौ प्रकास।
सूरदास ब्रजनाथ हमारे, सो अब भए उदास ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी!) विधाताने वंशीको हमारी सौत बना दिया। अपने वंशका नाश करनेवाली बाँसकी (इस) कुटिल वंशीने हमारी आशाको निराशामें परिणत कर दिया। यदि श्यामसुन्दरने यही (विवाहका) साज सजनेकी बात सोच रखी थी तो किसी उत्तम कुलवालीकी व्यवस्था की होती, (जिससे) हमें इतना दुःख(तो) नहीं होता। ये तो दोनों (श्याम और मुरली) अवगुणों (दोषों) के भंडार हैं। ये (मोहन) निर्दय हैं और वह वनमें रहनेवाली (वंशी) निष्ठुर। अब घरमें (एक साथ) उजेला हो गया। जो व्रजनाथ हमारे थे, वे अब (हमसे) उदासीन (विरक्त) हो गये।

राग सारंग

[२४४]

अब मुरली पति क्यौं न कहावत।
राधा पति काहे कौं कहिऐ, सुनत लाज जिय आवत ॥ १ ॥
वह अनखाति नाउँ सुनि हमरौ, इत हम कौं नहिं भावत।
कै मिलि चलैं फेरि हमही कौं, कै बनहीं किन छावत ॥ २ ॥
काहे कौं द्वै नाव चढ़त हैं, अपनी बिपति करावत।
सुनौ सूर यह कौन भलाई, हँसि हँसि बैर बढ़ावत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखी !) अब श्याम मुरलीपति क्यों नहीं कहलाते, (अब) उन्हें राधापति क्यों कहा जाता है, जिस नामको सुनकर हमारे चित्तमें लज्जा होती है। वह (वंशी) तो हमारा नाम सुनकर ही कुढ़ जाती है और इधर हम लोगोंको भी वह अच्छी नहीं लगती। (इसलिये)या तो मोहन फिर हमलोगोंसे ही मिलकर चलें या वनमें ही रहा करें। (व्रज आते ही क्यों हैं ?) दो नौकाओंपर चढ़कर क्यों अपनी विपत्ति (फजीहत) कराते हैं। सुनो ! यह कौन-सी भली बात है कि बार-बार हँसकर वे (हमसे) शत्रुता बढ़ाते हैं।

राग नट

[२४५]

और कहौ हरि कौं समुझाइ।
अब यह दुबिधा काहें राखत, वाहीं मिलिऐ जाइ॥ १॥
हम अपनौ मन निठुर करायौ, बात तुम्हारें हाथ।
भली भई अब सकुचन लागे कबि गावत व्रजनाथ॥ २॥
अब मुरलीपति जाइ कहावौ, वह बाँसी, तुम काठ।
सूरदास प्रभु नई चतुरई, मुरली पढ़ए पाठ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) हरिको समझाकर इतनी बात और कह दो कि अब यह द्विविधा (स्थितिकी बात) क्यों रखते हैं, उस (वंशी) से ही जा मिलें (उसीके होकर रहें)। हमने तो अपने मनको निष्ठुर (कठोर) बना लिया, अब सारी बात तुम्हारे ही हाथ है (जैसा चाहो निर्णय करो)। अच्छा हुआ कि अब कविगण 'व्रजनाथ' कहकर तुम्हारा गुणगान करनेमें संकोच करने लगे हैं। अब जाकर मुरलीपति कहलाओ। वह बाँसकी है और तुम काष्ठ (हृदयहीन) हो। हमारे स्वामी (श्रीकृष्ण)में यह नवीन चतुरता तबसे आ गयी जबसे मुरलीने (उन्हें) पाठ पढ़ाना आरम्भ किया।

राग भैरव

[२४६]

मुरली कौ कहा लागै री।
देखौ चरित जसोदा सुत कौ, वह जुवतिनि अनुरागै री॥ १॥

यह दृढ़ नाहिं, कहा तिहि दोवल, ए उचटैं, वह पागै री।
कर धरि, अधर परसि आलिंगन देत, कहा उठि भागै री ॥ २ ॥
वह लंपट, धूतनि, टुनहाई, जानि बूझि ज्यौं खागै री।
सुनौ 'सूर' वा यहई चाहैं ता पै यह रिस पागै री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है–(सखी !) (इसमें) वंशीका क्या खर्च होता (बिगड़ता) है, यह चरित्र तो यशोदाके कुमार-का देखो कि वे युवतियोंसे प्रेम करते हैं। ये ही दृढ़ (संयमी) नहीं हैं तो उस (वंशी) का क्या दोष। ये (हमसे) उदासीन रहते हैं, (तभी) वह (इनसे) प्रेम करती है। जब ये हाथसे पकड़ और ओठपर रखकर उसे आलिङ्गन देते (हृदयसे लगाते) हैं, तब क्या वह उठकर भाग जाय। वह लम्पट (कामुक), धूर्त और जादूगरिनी जैसे जान-बूझकर (इनसे) गड़ गयी– चिपक गयी है। सुनो ! वे (तो) यही चाहते हैं, तो भी यह (हम सबपर) क्रोध करती है।

राग सारंग

[२४७]

बावरी, कहा धौं अब बाँसुरी सौं तू लरै।
उनही सौं प्रेम नेम, तुम सौं नाहिन आली,
यातैं गिरिधारीलाल लै-लै अधरा धरै ॥ १ ॥
जौलौं मधु पीवति रहति, तौलौं जीवित है,
घरी घरी, पल पल छिनु नहिं बिसरै।
सूरदास प्रभु वाकें रस बस भए रहैं,
तातैं वाकी सरवरि कहौ कौन धौं करै ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी पहली गोपीसे कह रही है—अरी पगली ! अब तू वंशीसे क्यों झगड़ती है। सखि ! गिरिधारीलालका उसीसे प्रेम तथा नियम (व्यवहार) है, तुमसे नहीं; इसीसे (वे उसीको) बार-बार उठाकर ओठपर रखते हैं। जबतक वह अधरामृत पीती रहती है, तभीतक जीवित (बोलती) है; (इसीलिये) हर घड़ी, प्रतिपल उनके

ओठोंसे सटी रहती है, क्षणभर भी मधु पीना नहीं भूलती । हमारे स्वामी (भी) उसके प्रेमके वशीभूत रहते हैं, इसलिये उसकी बराबरी कहो कौन कर सकता है ।

राग बिलावल

[२४८]

यह मुरली बनझार की, बिनु ल्याएँ आई ।
हमही कौं दुख देन कौं ब्रज भए कन्हाई ॥ १ ॥
ओरहि तैं हम सौं लरैं, करते बरियाई ।
गागरि फोरैं घाट पै, दधि माट ढराई ॥ २ ॥
पुनि रोकत हैं दान कौं, अँग भूषन माई ।
सीखी चोरी आदि तैं, मन लियौ चुराई ॥ ३ ॥
पुनि लोचन अटके रहैं, अजहूँ नहिं आए ।
हम सौं उचटे रहत हैं, मुरली चित लाए ॥ ४ ॥
दोष कहा वाकौ सखी, इन के गुन ऐसे ।
सूर परसपर नागरीं कहैं स्याम अनैसे ॥ ५ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) यह वंशी तो वनके वृक्ष (बाँस) की (बनी हुई) है, (वह क्या) बिना लाये आयी है ? (सच तो यह है कि) हम सबको दुःख देनेके लिये ही कन्हैया व्रजमें उत्पन्न हुए हैं । प्रारम्भसे ही वे हमसे लड़ते और हमारे साथ जबरदस्ती करते आये हैं । घाटपर कलसी (गागरी) फोड़ देते थे, (घरमें) दहीके मटके ढुलका दिया करते थे । फिर सखी ! (मार्गमें) दान लेनेके लिये हमलोगोंको रोकते और सभी अङ्गोंके आभूषण तोड़ देते थे । प्रारम्भसे ही (उन्होंने) चोरी करना सीख लिया तथा हमारा मन चुरा लिया । इतनेपर भी नेत्र (उनके दर्शनको ही) लगे रहते हैं; किंतु वे अबतक नहीं आये । (बात यह है कि) वे हमसे उदासीन (विमुख) हुए रहते हैं और मुरलीमें चित्त लगाये रहते हैं । सखी ! उस (वंशी) का क्या दोष है, इनके गुण ही ऐसे हैं । व्रजकी स्त्रियाँ परस्पर कहती हैं—'श्यामसुन्दर (ही) बुरे हैं ।'

राग सोरठ

[२४९]

सजनी ! नख सिख तैं हरि खोटे।
ए गुन तबहीं तैं जानति हम, जब जननी कहै छोटे ॥ १ ॥
अंबर हरे जाइ जमुना तट, राखे कदम चढ़ाइ।
तब के चरित सबै जानति हौ, कीन्हीं निलज बनाइ ॥ २ ॥
जब हम तप करि करि तनु गारयौ, अधर सुधा रस काज।
सो मुरली निदरैं अँचवति है, ऐसे हैं ब्रजराज ॥ ३ ॥
हमकौं यौं औरनि कौं ऐसैं निधरक दीन्हौ डारि।
'सूर' इते पै चतुर कहावत, कहा दीजिऐ गारि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! हरि नखसे चोटीतक (पूर्णतः) खोटे (बुरे) हैं; हम तभीसे उनके गुणोंको जानती हैं, जब माता उन्हें छोटा-सा (बालक) कहा करती थीं। यमुना-किनारे जाकर हमारे वस्त्र चुरा लिये और कदम्ब वृक्षपर ले जाकर उन्हें रख दिया। उस समयके (उनके) चरित्र तो तुम सभी जानती हो जो कि हम सबको उन्होंने भली प्रकार निर्लज्ज किया था। जब कि हमने उनके अधरामृतके लिये तपस्या कर-करके अपने शरीरको गला (क्षीण कर) दिया, वही अधरामृत हमारा अपमान करके वंशी पीती है, (ये) व्रजराज ऐसे (निष्ठुर) हैं। हमको और इसी प्रकार दूसरोंको भी बिना संकोचके उन्होंने फेंक (पृथक् कर) दिया। वे (श्यामसुन्दर) इतनेपर भी चतुर कहे जाते हैं, अब उन्हें गाली क्या दी जाय।

राग केदारौ

[२५०]

इहिं बँसुरी सखि ! सबै चुरायौ,
हरि तो चुरायौ इकलौ चीर।
मनै चोरि, चित बितै चुरायौ,
गई लाज कुल धरमऽरु धीर ॥ १ ॥

तब तैं भई फिरति हौं ब्याकुल,
अति आकुलता भई अधीर।
सूरदास प्रभु निठुर, निठुर वह,
नहिं जानत परहिरदै पीर ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी! इस वंशीने तो सब कुछ चुरा लिया, (जब कि) श्रीकृष्णने केवल वस्त्र (ही) चुराये थे। (इस वंशीने) मनको चुराकर चित्त (चेतना)रूपी धनको (भी) चुरा लिया, (जिससे) लज्जा, कुलधर्म और धैर्य—सब चला गया। तभीसे मैं व्याकुल हुई घूमती हूँ, और अत्यन्त आकुलतासे धैर्यहीन हो गयी हूँ। हमारे स्वामी निष्ठुर और वह (वंशी) भी निष्ठुर, (दोनों ही) दूसरेके हृदयकी पीड़ाको नहीं जानते हैं।

राग गौरी

[२५१]

तुम अब हरि कौं दोष लगावति।
नंदनँदन खोटे तुम कीन्हे, मुरली भली कहावति ! ॥ १ ॥
यह छिनारि, लंपट, अन्याइनि, कुल दाहत नहिं बार।
मधुर मधुर बानी कहि रिझए, साजि तान सिंगार ॥ २ ॥
वह आई ठोना सिर डारति सप्त सुरनि कल गान।
ऐसैं बनि ठनि मिली आइ कैं, ह्वै गए स्याम अजान ॥ ३ ॥
पुरुष भँवर, उन कौ का लागै, नारि भजै जब आइ।
सूरज प्रभु तब कहा करैं री, ऐसी मिली बलाइ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें दूसरी गोपी कहती है—(सखी!) अब तुम हरिको दोष दे रही हो! तुमने नन्दनन्दनको बुरा बना दिया और वंशी भली कहलाने लगी। (किंतु) यह (वंशी) दुराचारिणी, कामुकी, अन्याय करनेवाली है, जिसने अपने कुलको भस्म करनेमें भी देर नहीं की। (इसने) मीठे-मीठे बोल बोलकर (सुनाकर) और तानका शृङ्गार सजाकर (मोहनको) रिझा लिया। वह तो सातों स्वरोंके मनोहर गानका जादू (श्यामसुन्दरके) मस्तकपर

डालती हुई आयी और आकर इस प्रकार सज-धजकर मिली कि श्यामसुन्दर अजान (विचाररहित) हो गये। पुरुष तो भौंरेके समान (प्रत्येक पुष्पका रस लेनेवाले) होते (ही) हैं, उनका क्या लगता है। जब कोई स्त्री स्वयं आकर उनकी सेवा करे, तब हमारे स्वामी क्या करें। सखी ! ऐसी (ही) बला (विपत्तिरूप वंशी आकर) मिली है।

राग बिहागरौ

[२५२]

मुरली कौं करि साधु धरी।
जिन रिझए मनहरन हमारे, ह्वै मोहिनी ढरी॥ १॥
ऐसी कहूँ भई नहिं होनी, जैसी इनहिं करी।
रहति सदा वन झारनि झारनि, देखौ ज्यौं उधरी॥ २॥
अब जहँ तहँ धनि धनि कहवावति, यह सुनि रिसनि जरी।
सूर स्याम अधरनि के लागैं खोटी भई खरी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) तुमने तो वंशीको साधु (बहुत भली) बनाकर स्थापित कर दिया (अत्यन्त श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया), जिसने हमारे मनमोहनको मोहित कर लिया और मोहिनी बनकर (स्वयं) उनपर रीझ गयी। इसने जैसा (कमाल) किया, वैसा तो न कहीं हुआ और न हो सकता है। देखो, कुल-धर्मको त्यागकर इधर-उधर फिरनेवाली स्त्रीकी तरह (यह भी) सदा वनकी झाड़ियोंमें रहती थी, और अब जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) धन्य-धन्य कहलाती है—यह सुनकर मैं तो क्रोधसे जल उठी। यह बुरी वंशी श्यामसुन्दरके ओठोंसे लगनेके कारण (अब) सच्ची (भली) हो गयी है।

राग मारू

[२५३]

मुरली नहिं धरत धरनि, कर तैं कहुँ टरति नाहिं,
अधरनि धरि रहत खरे, ढरत स्याम भारी।

कबहुँ नाद भरत, करत अपनौ मन बस्य तहाँ,

कबहुँ रीझि मगन होत, देखति ब्रजनारी ॥ १ ॥

कबहुँ लटकि जात गात,ताननि जब कहति बात,

सुनत स्रवन रस अघात लागति अति प्यारी ।

जा हित तप कियौ गारि, सो रस लै देति डारि,

धरनी जल डूँगर बन द्रुमनि मैं वृथा री ॥ २ ॥

ऐसे ढँग किए आइ, हम कौं उपजी बलाइ,

ताकौं तुम भली कहति, नाहिं आदि जानी ।

देखौ याकौ उपाइ, जै जै तिहुँ भुवन गाइ,

सूर स्याम अपनौ करि दिन दिन इतरानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कहती है—(सखी !) वंशीको श्यामसुन्दर कभी पृथ्वीपर नहीं रखते, बल्कि यह उनके हाथसे (भी) अलग नहीं होती; (सदा) ओठोंपर ही रखे खड़े रहते हैं, (क्योंकि वे) इसपर बहुत अधिक रीझ रहे हैं। कभी उसे संगीतसे पूर्ण करके अपना मन वहाँ (उस स्वरके) वशमें कर देते हैं और कभी (वंशीपर) प्रसन्न होकर आनन्द-मग्न होते हैं और ब्रजनारियाँ यह सब देखती रहती हैं। कभी जब तानोंके द्वारा वह (वंशी) अपनी बात कहती है, तब उनका शरीर झुक जाता है और उसे कानोंसे सुनते हुए (वे) प्रेमसे परितृप्त हो जाते हैं; (क्योंकि) यह उन्हें अत्यन्त प्यारी लगती है। जिस अधररसके लिये (हमने) शरीर गलाकर तपस्या की, उसे लेकर यह व्यर्थ पृथ्वी, जल, टीले, वन तथा वृक्षोंमें उँड़ेल देती (गिरा देती) है। इसने आकर ऐसे ढंग किये कि यह हमारे लिये आफत बन गयी, और तुम उसे इसकी उत्पत्ति न जानकर भली कहती हो ! इसका यह ढंग देखो कि तीनों लोक इसका जय-जयकार करते हैं; श्यामसुन्दरको अपना बनाकर (यह) दिनोंदिन गर्विष्ठ होती जा रही है।

राग धनाश्री

[२५४]

वृथा तुम स्यामै दूषन देति।
जो कछु कहौ सबै मुरली सौं; मन धौं देखौ चेति ॥ १ ॥
पहिलैं आइ परतीति बढ़ाई, को जानै यह घात।
बन बोली, हम धाई आईं, तजि गृह जन, पितु मात ॥ २ ॥
जैसैं मधु पखान लपटान्यौ, तैसेइ याके बोल।
सूर मिली जा भाँति आइ कैं, त्यौं रहती अनमोल ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) तुम श्यामसुन्दर-को व्यर्थ दोष देती हो। मनमें सावधान होकर देखो और जो कुछ (भला-बुरा) कहना हो, वह सब वंशीको कहो । इसने पहले आकर विश्वास बढ़ाया, इसका यह दाव कौन जानता था। यह वनमें बोली (बजी) और हम सब पिता-माता तथा (अन्य) घरके लोगोंको छोड़कर दौड़ी आयीं। जैसे शहद लिपटा पत्थर (ऊपरसे मीठा किंतु भीतर कठोर हो), वैसे (ही) इसके स्वर हैं। जिस प्रकार यह आकर मिली थी, वैसे ही रहती तो अमूल्य (सुन्दर) थी (किंतु यह तो निष्ठुरता करने लगी)।

राग नट

[२५५]

मुरली प्रगट कीन्ही जाति।
तनकहीं इतराइ बोली बाँस बंस कुजाति ॥ १ ॥
अहरनिसि रस अधर अँचवति, तऊ नहिं तृपिताति।
निदरि बैठी सबनि कौं यह, पुलकि अंग न माति ॥ २ ॥
छहौं रितु तप करि पचीं हम, अधर रस कैं लोभ।
सूर प्रभु सो याहि बकस्यौ, कछु न कीन्हौ छोभ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) वंशीने अपनी जाति (जातीय गुण, निष्ठुरता) प्रकट कर दी। बाँसके वंशमें उत्पन्न यह

नीच जातिवाली थोड़े ही (सम्मान) से गर्विष्ठ होकर बोलने लगी। रात-दिन यह (मोहनके) अधरामृतका पान करती है,(किंतु) फिर भी तृप्त नहीं होती। (हम) सबका यह अनादर कर बैठी और (इसीसे) उत्फुल्ल होकर अपने अङ्गोंमें समाती नहीं। (श्यामसुन्दरके) अधरामृतको पानेकी लालचसे हम छहों ऋतुओंमें तपस्या करके कष्ट उठाती रहीं, उसे ही हमारे स्वामीने इसे उपहारमें दे दिया, तनिक भी दुःख नहीं किया।

राग सारंग

[२५६]

क्यौं तुम स्यामै दोष लगावति।
क्यौं मुरली की करति प्रसंसा, यह तौ मोहि न भावति ॥ १ ॥
याकी जाति नहीं जो जानति, कहि कहि मैं समुझावति।
कपटिनि, कुटिल, काठ की संगिनि, ताकौं भली बतावति ॥ २ ॥
याकौ नाम भोर नहिं लीजै, कहि कहि ताहि सुनावति।
सूर स्याम इनही बहकाए, भई उदासिनि गावति ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—‘(सखि !) तुम श्यामसुन्दर-को दोष क्यों देती हो और वंशीकी प्रशंसा क्यों करती हो; यह तो मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं बार-बार कहकर समझाती हूँ, फिर भी इस (वंशी) की जाति जानती नहीं हो। इस कपट करनेवाली, कुटिल, काष्ठकी सङ्गिनी-को तुम भली बतलाती हो। इसका तो नाम (भी) प्रातःकाल नहीं लेना चाहिये, इस प्रकार कह-कहकर उसे (बाँसुरीको) सुनाती है। श्यामसुन्दरको इसीने बहकाया है और अब यह (हमसे) उदासीन होकर गा रही (बज रही) है।’

राग धनाश्री

[२५७]

यह मुरली जरि गई न तबहीं।
जब अपनौ कुल दाह करायौ, तब कैसैं करि निबही ॥ १ ॥

ऐसी चतुर चतुरई कीन्ही, आपु बची सब जारी।
कैसैं मिली सूर के प्रभु सौं, बिधना की गति न्यारी ॥ २ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि !) यह मुरली तभी भस्म नहीं हो गयी, जब इसने अपने कुलको भस्म कराया; पता नहीं, उस समय (यह) कैसे बच गयी। ऐसी चतुर है कि चतुरता करके स्वयं बच गयी और सब (बाँसों) को जला दिया। पता नहीं, यह सूरदासके स्वामीको कैसे मिल गयी—ब्रह्माकी गति भी विचित्र ही है।

राग सारंग

[२५८]

यह हम कौं बिधना लिखि राख्यौ।
नाउँ न गाउँ, कहाँ तैं आई, स्याम अधर रस चाख्यौ ॥ १ ॥
यह दुख कहैं काहि, को जानै, ऐसौ कौन निवारै ? ।
जो रस धर्यौ कृपन की नाईं, सो सब ऐसैंहिं डारै ॥ ३ ॥
यह दूषन वाही कौ कहिऐ, कै हरिहू कौं दीजै।
सुनौ सूर कछु बच्यौ अधर रस, सो कैसैं करि लीजै ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) हमारे लिये ब्रह्माने यही (भाग्यमें) लिख रखा था। न इस (वंशी) का नाम है, न ग्राम; पता नहीं कहाँसे यह आ गयी और श्यामसुन्दरके अधरामृतका स्वाद लेने लगी। यह दुःख हम किससे कहें ? कौन इसे समझेगा और ऐसा कौन (समर्थ) है, जो इसे दूर करे ? जो (अधरका) रस (हमने) कृपणकी भाँति घर (संचित) रखा था, उसे यह पूरा ही व्यर्थ फेंक रही है। यह दोष उसीका कहना चाहिये या कुछ श्यामसुन्दरको भी देना चाहिये ? (दोष चाहे जिसका हो) सुनो ! जो कुछ अधर-रस बच रहा है, उसे (अब) कैसे लिया जाय (यही सोचनेकी बात है)।

राग नट

[२५९]

अधर रस अपनौई करि लीन्हौ।
जो भावै सो अँचवति निधरक,
औ सबहिनि कौं दीन्हौं ॥ १ ॥
मुरली हमै तुच्छ करि जानति,
बैर इते पै मानै।
जैसी वह तैसी सब जानै,
कुटिल कुटिल पहिचानै ॥ २ ॥
अवगुन सानि गढ़ी नख सिख लौं,
तैसिय बुद्धि बिकासै।
सूरदास प्रभु के मुख आगैं
मीठे बचन प्रकासै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) इसने तो (मोहनके) अधर-रसको अपना ही बना लिया; जितना इसे रुचिकर लगा, (उतना) बिना शङ्काके पीकर (बचा हुआ इसने) और सभीको दिया। यह वंशी हमको ही तुच्छ समझती है और इतनेपर भी हमसे शत्रुता रखती है; वह स्वयं जैसी है, वैसा ही सबको समझती है, (जिस तरह) कुटिल कुटिलको पहचानता है। यह नखसे चोटीतक दोषोंमें सानकर ही बनायी गयी है (दोषमयी ही है), इसलिये वैसी ही (दोषमय) बुद्धि (समझ) प्रकट करती है। (केवल) हमारे स्वामीके सम्मुख मधुर स्वर व्यक्त करती (मीठी ध्वनिमें बोलती) है।

राग गौरी

[२६०]

यह मुरली ऐसी है, माई।
निदरि सौति यह भई हमारी, कहा कहौं अधिकाई ॥ १ ॥

ऐसैं पियत अधर रस निधरक, जैसैं बदन लगाई।
हम देखत वह गरजति बैठी, फेरति आपु दुहाई ॥ २ ॥
याकी स्याम प्रतीति करत हैं, कछु पढ़ि टोना लाई।
'सूर' सुनत यहि बचन माधुरी स्याम दसा बिसराई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है— सखी! यह वंशी तो ऐसी है कि हमारा अनादर करके यह हमारी सौत हो गयी, और अधिक क्या कहूँ। जैसे ही (मोहन इसे) मुखसे लगाते हैं, वैसे ही (यह) संकोचहीन होकर अधररस पीती है। हमारे देखते हुए वह बैठी हुई गर्जती और अपनी विजय-घोषणा करती है। यह कुछ टोना (जादू) पढ़कर लायी है, जिसके कारण श्यामसुन्दर (मोहित होकर) इसका विश्वास करते हैं। इसकी बोलीकी मधुरिमा सुनते ही श्यामसुन्दर अपनी दशातक भूल जाते हैं।

[२६१]

मुरलिया कपट चतुरई ठानी।
कैसैं मिलि गइ नंद नँदन कौं, उन नाहिन पहिचानी ॥ १ ॥
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने।
जाति पाँति की कौन चलावै, वाकें रंग भुलाने ॥ २ ॥
जाकौ मन मानत है जासौं, सो तहँई सुख मानै।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गानै ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि!) वंशीने कपटपूर्ण चतुराई मनमें निश्चित कर रखी है; पता नहीं यह नन्दनन्दनको कैसे मिल गयी, और उन्होंने इसे पहचाना नहीं। एक तो वह स्त्री, दूसरे (उसके) मुखके बोल मधुर, जिन्हें सुनकर श्यामसुन्दर लुब्ध हो गये। फिर जाति-पाँतिकी अपेक्षा कौन करता है, उसके प्रेममें (यह सब विचार) भूल ही गये। जिसका मन जिससे संतुष्ट होता है, उसे वहीं सुख प्रतीत होता है। श्यामसुन्दर उसके गुण गाते (प्रशंसा करते) हैं और वह हरिके गुण गाती है।

[२६२]

मुरलिया यह तौ भली न कीन्ही।
कहा भयौ, जो स्याम हेत सौं अधरनि पै धरि लीन्ही ॥ १ ॥
अँगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुँचौ, कैसैं दुरति दुराएँ।
ओछी तनिकै मैं भरुहानी, तनिकै बदन लगाएँ ॥ २ ॥
जो कुल नेम धरम की होती, दिन दिन होतौ भार।
'सूरदास' न्यारे भए हम तैं, डोलत नंद कुमार ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) वंशीने यह तो अच्छा नहीं किया। क्या हुआ जो श्यामसुन्दरने उसे प्रेमसे ओठोंपर रख लिया। जिसने उँगली पकड़ते पहुँचा (कलाई) पकड़ लिया (परिचयके बहाने अधिकार स्थापित कर लिया), उसकी चाल छिपानेसे कैसे छिप सकती है। यह ओछी (तुच्छ स्वभावकी) है, इसलिये तनिक-सा मुख लगा लेनेसे थोड़े (सम्मान)में ही गर्विष्ठ हो गयी। यदि नियम (संयम) और धर्मपालन करनेवाले (अच्छे) कुलकी होती तो दिनोंदिन (सम्मानके इस) भारसे (नम्र) होती (नम्र बनकर चलती)। परंतु अब तो (इसके कारण) नन्दनन्दन हमसे पृथक् हुए (उदासीन बने) घूमते हैं।

राग सारंग

[२६३]

इहिं मुरली कछु भलौ न कीनौ।
अधर सुधा रस अंस हमारौ,
बाँटि-बाँटि सबहिनि कौ दीनौ ॥ १ ॥
बीरुध, तृन, द्रुम, सैल, सरित तट,
सींचति है बसुधा, मृग, मीनौ।
जानै स्वाद कहा श्रीमुख कौ,
छूछौ हियौ सार बिनु हीनौ ॥ २ ॥

जा रस कौ कालिंदी कैं तट,
पूजत गौरि भयौ तन छीनौ।
'सूर' सो रस इहिं परसि कुटिलमति
सबहिन के देखत हरि लीनौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि!) इस वंशीने कुछ भी अच्छा काम नहीं किया। (मोहनका) अधरामृत-रस जो हमारा भाग था, इसने सभीको बाँट-बाँटकर दे दिया। झाड़ियाँ, तिनके, वृक्ष, पर्वत, नदियों और नदी-तटों, पृथ्वी, पशुओं तथा मछलियोंको (भी यह उस अधरामृतसे) सींचती है। भला, यह (श्यामसुन्दरके) श्रीमुखका स्वाद क्या जाने। इसका हृदय तो खाली, साररहित, शून्य है। जिस (अधरामृतके) रसके लिये यमुना-किनारे श्रीगिरिजाका पूजन करते-करते हमारा शरीर दुर्बल हो गया, उसीको इस कुटिल बुद्धिवाली (वंशी) ने स्पर्श करके हम सबके देखते-देखते हरण कर लिया।

राग कान्हरौ

[२६४]

मुरली जौ अधरनि तट लागी।
ज्यौं मरकट कर होत नारियर, तैसैं इहौ अभागी ॥ १ ॥
अमृत लेति रहै यहिं हिरदौ द्रवत साँस कैं मारग।
वह रुचि सौं अँचवावत, यह लै डारति बन बन सारग ॥ २ ॥
यह बिपरीति नाहिं कहुँ देखी, स्याम चढ़ाई सीस।
नातरु 'सूर' देखती मुरली, कहा वहि कर बीस ? ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि!) यद्यपि वंशी मोहनके ओठोंके किनारेसे लग गयी (तो भी उसे लाभ क्या हुआ?), यह तो (फिर भी) उसी प्रकार भाग्यहीन है, जैसे बंदरके हाथमें नारियल हो (बंदर जानता ही नहीं कि नारियलके भीतर मीठी गिरी है)। इसका हृदय अधरामृतका पान करता रहता है किंतु श्वासके मार्गसे (फूँकी हुई वायुके द्वारा) वह

बहता रहता है । वे (मोहन) इसे प्रेमपूर्वक (अधरामृत) पिलाते भी हैं; किंतु यह उसे ले-लेकर स्वरोंके द्वारा वनोंमें फेंकती रहती है । ऐसी उल्टी दशा कहीं नहीं देखी (किंतु किया क्या जाय) श्यामसुन्दरने (ही) इसे सिर चढ़ा रखा है, नहीं तो हम उस मुरलीको देख लेतीं, क्या उसके बीस हाथ हैं ।

राग गौरी

[२६५]

अधर रस मुरली लूट करावति ।
आपुन बार बार लै अँचवति, जहाँ तहाँ ढरकावति ॥ १ ॥
आजु महा चढ़ि बाजी वाकी, जोइ जोइ करै बिराजै ।
कर सिंघासन बैठि, अधर सिर छत्र धरैं वह गाजै ॥ २ ॥
गनति नाहिं अपने बल काहू, स्यामै ढीठि कराई ।
सुनौ सूर बन की जवि वासिनि, ब्रज मैं भई रजाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) मुरली तो (मोहनके) अधर-रसकी लूट करा रही है; स्वयं ले-लेकर बार-बार पीती है और फिर जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) ढुलका (गिरा) देती है । आज उसका सौभाग्य अत्यन्त उच्च हो रहा है, अतः जो-जो (उचित-अनुचित) करे, सब उसे शोभा देता है । (श्यामके) हाथरूपी सिंहासनपर बैठकर, (अपने) मस्तकपर(उनके)ओठका छत्र धारण कर (वह) गर्जना करती है । इसे श्यामसुन्दरने ही ढीठ बना दिया, इसलिये अपने बलके सामने किसीको (कुछ) नहीं गिनती । सुनो ! यह विश्वासघातिनी वनकी रहनेवाली (जंगली) है, किंतु आज व्रजमें इसका राज्य हो गया ।

राग बिलावल

[२६६]

यह मुरली कुलदाहनहारी ।
सुनौ स्रवन दै सब व्रजनारी ॥ १ ॥

कपटिनि, कुटिल बाँस की जाई ।
वन तैं कहाँ घरै यह आई ॥ २ ॥
जो अपनें घर वैर बढ़ावै ।
तनहीं तन मिलि आगि लगावै ॥ ३ ॥
ऐसी की संगति हरि कीन्ही ।
जाति नहीं वाकी उन्ह चीन्ही ॥ ४ ॥
जैसे ए, तैसी वह आई ।
बिधनाँ जोरी भली बनाई ॥ ५ ॥
मुरली के सँग मिले मुरारी ।
भाग सुहागिनि पिय औ प्यारी ॥ ६ ॥
अहै कुटिल कुलटा ए दोऊ ।
इक तैं एक नाहिं घटि कोऊ ॥ ७ ॥
अधरन धरत सबन के आगैं ।
कर तैं नेकु कहूँ नहिं त्यागैं ॥ ८ ॥
इन के गुन कहिए सो थोरे ।
सूर स्याम बंसी बस भोरे ॥ ९ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—यह मुरली अपने कुल (बाँसोंके वन) को भस्म करनेवाली है; व्रजकी सब नारियो, कान लगाकर (ध्यानसे) सुनो। (यह) कपट-चतुरा, कुटिल बाँसकी बेटी वनसे किस प्रकार घर आ गयी। जो अपने घरमें ही शत्रुता बढ़ाती है, परस्पर शरीरोंकी रगड़से अग्नि लगा देती है, ऐसी (वंशी) का श्रीकृष्णने साथ किया, उसकी जाति उन्होंने पहचानी नहीं। जैसे ये (कुटिल), वैसी ही वह (वंशी) आ गयी; ब्रह्माने यह अच्छी जोड़ी निर्मित की। (अनेक छिद्र—दूषित आचरणवाली) मुरलीके साथ मुरारि मिल गये, इससे ये भाग्यवान् प्रियतम और वह (वंशी) सुहागिनी, प्रियतमको प्यारी हो गयी। ये दोनों अनाचारी तथा अनाचारिणी हैं, इनमें एक-से दूसरा कोई घटकर

(कम दोषवाला) नहीं । वे (श्याम) उसे सबके सामने ही ओठोंपर रख लेते हैं, हाथसे तनिक भी कहीं छोड़ते नहीं । इनके जो गुण कहे जायँ, वही कम हैं; ये श्यामसुन्दर वंशीके वश होकर बहक गये हैं ।

[२६७]

हरि मुरली के हाथ बिकाने ।
वह अपमान करति न लजाने ॥ १ ॥
उहिं ऐसे करि लिए दिवाने ।
बार बार वा जसै बखाने ॥ २ ॥
ठाढ़े रहत न पाइ पिराने ।
एते पै मन रहत डेराने ॥ ३ ॥
आयसु देति, सुनत मुसुकाने ।
जीवन जनम सुफल करि माने ॥ ४ ॥
वह गरजति ए हरैं बताने ।
बार बार अधरन पै ठाने ॥ ५ ॥
त्रिभुवन पति जे कहियत बाने ।
ते ता बस तन दसा भुलाने ॥ ६ ॥
वा आगैं हम सबन सुगाने ।
वह गावति, ए सुनत पगाने ॥ ७ ॥
'सूर' नेति निगमनि जे गाने ।
ते मुरली के नाद ठगाने ॥ ८ ॥

(गोपी कह रही है—सखियो !) श्रीकृष्ण तो मुरलीके हाथ (मानो) बिक गये हैं; वह (हमारा) अपमान करती है, फिर भी (ये) लज्जित नहीं होते । उसने इन्हें (अपने प्रेममें) ऐसा पागल बना लिया है कि बार-बार उसीके यश (गुण) का वर्णन करते रहते हैं । (उसके सम्मानमें) खड़े रहते हुए भी इनके चरण दुखते नहीं, इतनेपर भी मनमें उससे डरते रहते हैं । वह जो भी आज्ञा देती है, उसे मुस्कराते हुए सुनते हैं और अपना जीवन तथा

जन्म-धारण सफल हुआ मानते हैं। वह गर्जना करती (चिल्लाकर बोलती) है तो ये धीरे-धीरे बात करते हैं और बार-बार उसे ओठोंपर रखते हैं। जो स्वरूपतः त्रिभुवनपति कहे जाते हैं, वे उस (वंशी) के वशमें होकर अपने शरीरकी दशा भी भूल गये। उसके सामने हम सबसे घृणा करने लगे। वह गाती है और ये निमग्न (तल्लीन) होकर सुनते हैं।' सूरदासजी कहते हैं कि वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर जिनका वर्णन किया है, उन्हें वंशीकी ध्वनिने मोह लिया।

[२६८]

मुरली निदरै स्याम कौं, स्यामै निदराई।
मधुर बचन सुनि कैं ठगे, ठगमूरी खाई॥ १॥
रहत बस्य वाके भएँ सब मेटि बड़ाई।
वह तन, मन, धन ह्वै रही, रसना रस माई॥ २॥
वौ कर, वह अधरनि रहै, देखौ अधिकाई।
वहै कहति सो सुनत हैं ए कुँवर कन्हाई॥ ३॥
बन की बाढ़ी बापुरी, घर यह ठकुराई।
सूर स्याम कौं वा बिना कछु नाहिं सुहाई॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है--(सखियो !) वंशी जो श्यामका अनादर करती है, वह अनादर तो श्याम (अपना) स्वयं कराते हैं, उसके मधुर बोल सुनकर ऐसे मुग्ध हो गये मानो ठग-बूटी (वशीकरण जड़ी) ही खा ली हो। अपना सब बड़प्पन मिटाकर (त्यागकर) उसके वश हुए रहते हैं। सखी ! वही इनका तन, मन, धन और जिह्वाका आनन्द हो रही है। उसका उत्कर्ष (उन्नति) तो देखो कि वह (इनके) हाथों-पर रहती है, वही ओठोंपर रहती है, और (जो) वह कहती है, उसे ही कुँवर कन्हैया सुनते हैं (दूसरेकी बात सुनते ही नहीं)। यह बेचारी (कंगालिनी) तो वनमें बढ़ी थी; किंतु यहाँ आनेपर उसे घरका स्वामित्व मिल गया। श्यामसुन्दरको उसके बिना कुछ अच्छा ही नहीं लगता।

राग नट

[२६९]

सखी री, माधौहि दोष न दीजै।
जो कछु करि सकिऐ सोई सब या मुरली कौं कीजै ॥ १ ॥
बार बार बन बोलि मधुर धुनि अति प्रतीति उपजाई।
मिलि स्रवनन मन मोहि महारस तन की सुधि बिसराई ॥ २ ॥
मुख मृदु बचन, कपट उर अंतर, हम यह बात न जानी।
लोक बेद कुल छाँड़ि आपनौ जोइ जोइ कही सो मानी ॥ ३ ॥
अजहूँ वहै प्रकृति याकैं जिय, लुब्धक सँग ज्यौं साधी।
सूरदास क्यौंहूँ करुना मैं परति नाहिं अवराधी ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—सखी ! माधवको दोष नहीं देना चाहिये। जो कुछ किया जा सके, इस मुरलीके प्रति ही करना चाहिये। बार-बार वनमें मधुर ध्वनिसे बोलकर (इसने) अत्यन्त विश्वास उत्पन्न कर लिया और (ध्वनिके द्वारा) कानोंसे मिल अत्यन्त आनन्दके साथ (मनमोहनके) मनको मोहित कर शरीरकी सुधि भुलवा दी। हम यह बात नहीं समझ सकीं कि इसके मुखमें (तो) कोमल वाणी है और हृदयके भीतर कपट है। लोक-मर्यादा, वैदिक मर्यादा और अपना कुल (तक) छोड़कर, (इसने) जो-जो कहा, वही (हमने) माना। अब भी इसके मनका वही (छल करनेका) स्वभाव है, जैसे उसने बहेलियेके साथ (छलका) अभ्यास किया हो। किसी प्रकार भी उसे प्रसन्न करके दयालु नहीं बनाया जा सकता।

राग धनाश्री

[२७०]

स्यामै दोष देहु जनि माई !
कहौ याहि किन बाँस जाति की, कौनैं तोहि बुलाई ? ॥ १ ॥

उन की कथा मनै दै राख्यौ, याकी चलति ढिठाई।
वे जो भले बुरे तौ अपने, यह लंगरि टुनहाई ॥ २ ॥
ऐसी रिस अब आवति मोकौं, दूरि करौं झहराई।
सूर स्याम की कानि करति हौं, नातरु करति बड़ाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखियो ! श्यामसुन्दरको दोष मत दो। इस (वंशी) से क्यों नहीं कहती कि 'अरी बाँस (तुच्छ) जातिकी ! तुझे यहाँ किसने बुलाया था ?' उन (मोहन) की बात (दोष) मनमें ही दबा रखो, ढिठाई तो इसकी चल रही है। वे भले या बुरे जो भी हैं, अपने हैं; यही धूर्त और जादूगरनी है। मुझे तो अब ऐसा क्रोध आ रहा है कि इसे झटककर (श्यामसुन्दरसे) अलग कर दूँ। मैं तो श्यामसुन्दरका संकोच करती हूँ, नहीं तो इसका (अच्छा) आदर करती।

[२७१]

स्यामै दोष कहा कहि दीजै।
कहा बात मुरली सौं कहिऐ, सब अपनेहिं सिर लीजै ॥ १ ॥
हमही कहति बजावौ मोहन, यह नाहीं तब जानी।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी ॥ २ ॥
बारे तैं मुँह लागत लागत अब ह्वै गई सयानी।
सुनौ सूर हम भोरी भारी, याकी अकथ कहानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखियो !) श्यामको क्या कहकर हम दोष दें और वंशीसे (भी) क्या बात कहें, सारा (दोष तो) अपने ही सिर लेना चाहिये। हमलोग ही (पहले) कहती थीं 'मोहन ! (वंशी) बजाओ !' तब (हमने) यह नहीं समझा था। हम तो समझती थीं कि यह बाँसकी वंशी है, यह कौन जानता था कि यह पटरानी हो जायगी। बचपनसे मुँह लगते-लगते (यह) अब चतुर हो गयी है। सुनो ! हम सब तो भोली-भाली हैं और इसकी (तो) कथा ही अवर्णनीय है। (यह इतनी धूर्त है कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता।)

[२७२]

सुनि री सखी, बात यह मोसौं ।
तुम अपनें सिर मानि लई क्यौं, मैं वाही कौं कोसौं ॥ १ ॥
जौ वह भली नेकहूँ होती, तौ मिलि सबनि बताती ।
वह पापिनी दाहि कुल आई, देखि जरति है छाती ॥ २ ॥
वैसी की का कानि मानिये, वह हत्यारिनि नारी ।
'सूर' स्याम वा गुन का जानै, धोखें कीन्ही प्यारी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—अरी सखी ! मुझसे यह बात सुन ! तुमने (सब दोष) अपने ही सिर क्यों मान लिया, मैं तो उसीको कोसूँगी (उसीकी निन्दा करूँगी) । यदि वह तनिक भी भली होती तो (हम) सबसे मिलकर (भेदकी बातें) बतलाती । वह पापिनी तो अपने कुलको भस्म करके आयी है, उसे देखकर छाती जल उठती है । वह तो हत्यारी स्त्री है; भला, ऐसीका क्या संकोच माना जाय । श्यामसुन्दर उसके गुण क्या जानें, धोखेमें ही (उसे उन्होंने) प्रियतमा बना लिया ।

राग आसावरी

[२७३]

बिनु जानें हरि वाहि बढ़ाई ।
वह तौ मिली बचन मधुरे कहि, सुनतै दई बड़ाई ॥ १ ॥
रिझै लियौ हरि कौं टोना करि तुरतै, बिलम न लाई ।
उन लै कर अधरन पै धारी, अनुपम राग बजाई ॥ २ ॥
मानौ एकै संग रहे ते, ऐसैं मिले कन्हाई ।
सूर स्याम हम सबनि बिसारीं, जबहीं तैं वह आई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो,) श्रीकृष्णने बिना जाने ही उसे (वंशीको) बढ़ा दिया । वह तो मधुर वाणी (ध्वनि) बोलकर मिली, जिसे सुनते ही श्रीकृष्णने (उसे) बड़प्पन दे दिया ।

(उसने भी) तुरंत ही टोना (जादू) करके हरिको रिझा लिया (वशमें कर लिया), तनिक भी विलम्ब नहीं किया । उन्होंने (भी उसे) हाथमें लेकर ओठोंपर रख लिया और अनुपम राग बजाया । कन्हैया उससे ऐसे हिलमिल गये हैं, जैसे वे (सदासे) एक साथ ही रहते आये हों । जबसे वह आयी है, तबसे श्यामसुन्दरने हम सबोंको भुला दिया है ।

राग बिलावल

[२७४]

सुनु सजनी ! इक कथा कहौं री, करम करै सो कोउ न करै ।
यह महिमा करता की अगनित, कौनें विधि धौं काहि ढरै ॥१॥
बन झारनि की घर बैठाई, स्याम अधर सिर छत्र धरै ।
हम कौं घर कुल कानि छुड़ाई, ऐसी उलटी रीति जरै ॥२॥
अधर सुधा रस अपनौ जानति, दिनहीं दिन यह आस भरै ।
सूर स्याम ताकौं करि लीन्हौ, वहै सुधा सब ताहिं झरै ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है— सखी ! सुनो, एक बात कह रही हूँ——कर्म जो करता है, वह दूसरा कोई नहीं करता । सृष्टिकर्ताकी यह अगणित महिमा है; पता नहीं किस प्रकार (वह) किसपर प्रसन्न हो जाता है । वनकी झाड़ियोंमें रहनेवालीको घरमें बैठाकर उसके मस्तकपर श्यामसुन्दरके ओठका छत्र रख दिया और हमसे घर और कुलकी मर्यादा छुड़ा दी । (सृष्टिकर्ता) ऐसी उलटी रीतिसे ही सबको जलाया करता है । (मोहनके) अधरामृत-रसको (हम) अपना जानती थीं और दिनोंदिन इसी आशासे पूर्ण (तृप्त) रहती थीं (कि वह हमें मिलेगा ही) । (किंतु) श्यामसुन्दरने उसे (वंशीको) अपनी बना लिया, वही सब अधरामृत (अब) उससे झरता है ।

राग आसावरी

[२७५]

यह मुरली बहि गई न नारें ।
निदरें हमै सुधा-रस अँचवति, टरति नाहिं कहुँ टारें ॥ १ ॥
देखौ भाग जरत तैं उबरी, मिली आनि हरि पास ।

इन तौ ताहि लूटि सी पाई, हम करि दई निरास ॥ २ ॥
अब वह भई स्याम पटरानी, स्याम भए बस वाके ।
सुनौ सूर ए चरित करति है, लखै कौन गुन ताके ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) यह वंशी नालेमें नहीं बह गयी; हम सबका अनादर करके यह (श्यामके) अधर-सुधा-रसको पीती है, हटानेसे भी कहीं हटती नहीं। इसके भाग्य तो देखो कि (जब बाँसोंमें दावाग्नि लगी, तब) जलनेसे यह बच गयी और श्यामसुन्दरके पास आकर (उनसे) मिल गयी। इन्होंने (मोहनने) तो जैसे उसे लूटमें पाया हो (इस प्रकार उसपर अनुरक्त हो गये और) हम (सब) को निराश कर दिया। अब (तो) वह श्यामकी पटरानी हो गयी और श्याम उसके वश हो गये। सुनो ! वह ये (त्रिया-) चरित्र करती है, उसके गुण (दोष) कौन देखे ?

राग कान्हरौ

[२७६]

मुरली कहै सो स्याम करैं री।
वाही कें बस भए रहत हैं, वाकें रंग ढरैं री ॥ १ ॥
घर बन, रैनि दिना सँग डोलत, कर तैं करत न न्यारी ।
आई बन बलाइ यह हम कौं, कहा दीजिऐ गारी ॥ २ ॥
अब लौं रहे हमारे माई, इहिं अपने अब कीन्हे ।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुनि भलैं करि चीन्हे ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) मुरली जो कहती है, वही श्याम करते हैं; वे उसीके वशमें हुए रहते हैं, उसीके अनुकूल बने रहते हैं। घरमें एवं वनमें (सर्वत्र) वह रात-दिन (उनके) साथ घूमती है, (उसे) वे हाथसे पृथक् करते ही नहीं हैं। यह विपत्ति बनकर हमारे लिये आयी है। (अतः अब) गाली (तो) क्या दी जाय। सखी ! श्याम अबतक हमारे रहे, पर अब इसने उन्हें अपना रूप बना लिया। श्यामसुन्दर चतुर और यह भी नागरी (चतुर) है, दोनोंको (हमने) भलीप्रकार पहचान लिया।

राग गौरी

[२७७]

मुरलिया हरि कौं कहा कियौ।
इन कौं नाहिं और कछु भावै, यौं अपनाइ लियौ ॥ १ ॥
औरै दसा भई मोहन की, कहा मोहिनी लाई।
अधर सुधा रस देत निरंतर, राखत ग्रीव नवाई ॥ २ ॥
कर जोरें आग्या प्रतिपालत, कहाँ रही दुखहाई।
सुनौ सूर ऐसी नान्ही कौं काहें लाड़ लड़ाई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) वंशीने श्यामको क्या (जादू) कर दिया। इनको (उसने) इस प्रकार अपना (मोह) लिया कि (अब) और कुछ प्रिय ही नहीं लगता। पता नहीं, उसने कौन-सी मोहिनी डाल दी, जिससे मोहनकी और ही दशा हो गयी—उसे वे निरन्तर अधर-सुधारस देते रहते हैं और (उसके सम्मुख नम्रतासे) गर्दन झुकाये रहते हैं। हाथ जोड़े उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। पता नहीं, यह दुःखदायिनी कहाँ थी (कहाँसे आ गयी)। सुनो! ऐसी क्षुद्रको उन्होंने प्यार-दुलार दिया ही क्यों?

राग मलार

[२७८]

ज्यौं ज्यौं मुरली महत दियौ।
त्यौं त्यौं निदरि स्याम कोमल तन, बदन पियूष पियौ ॥ १ ॥
राखें रहति पानि पल्लव गहि, होत न काज त्रियौ।
पौढ़ति आपु अधर सिज्जा पै, सकुचत नाहिं हियौ ॥ २ ॥
जग जान्यौं रति पति सिव जार्‌यौ, सो या सब्द जियौ।
मेटी बिधि मरजाद सूर यह जो भायौ सो कियौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) जैसे-जैसे (मोहनने) मुरलीको महत्ता दी, वैसे-वैसे ही श्यामसुन्दरके सुकुमार

शरीरका ध्यान न रखकर यह उनके मुखामृतको पीती गयी। वह उनके पल्लव-सरीखे कोमल हाथोंको पकड़कर रोके रहते हैं, इसलिये दूसरा (कोई) काम उनसे होता ही नहीं। (यही नहीं) यह उनके ओठरूपी पलंगपर सोती है, (किंतु इसके) हृदयमें संकोच नहीं होता। संसारने समझ रखा था कि शंकरजीने कामदेवको जला दिया; वह (कामदेव) इसके शब्दसे (फिर) जीवित हो गया। इसने तो ब्रह्माकी मर्यादा (भी) मिटा दी और इसके मनको जो भी अच्छा लगा, वही इसने किया।

राग गौरी

[२७९]

मुरली महत दिऐं इतरानी।
निदरि पियति पीयूष अधर कौ, स्याम नहीं यह जानी ॥ १ ॥
कर गहि रही, टरति नहिं नेकौ, दूजौ काज न होइ।
लाज नहीं आवति, अति निधरक रहति बदन पै सोइ ॥ २ ॥
सिव कौ दह्यौ काम इहिं ज्यायौ, सबद सुनत अकुलाई।
आरज पथ बिधि की मरजादा सूर सबनि बिसराई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) मुरली महत्त्व देनेसे गर्विष्ठ हो गयी। बेपरवाह होकर यह (मोहनके) अधरामृतको पीती है; श्यामने इसे (ठीक) समझा नहीं। (सदा) उनका हाथ पकड़े रहती है, तनिक भी (कहीं) हटती नहीं; (इसीसे) उनके द्वारा दूसरा कोई काम हो (ही) नहीं पाता। (इसे) लज्जा भी नहीं आती, अत्यन्त संकोचहीन होकर उनके मुखपर ही सोती रहती है। शंकरजीका जलाया हुआ कामदेव इसने जीवित कर दिया, (हम भी) इसके शब्द सुनते ही व्याकुल हो जाती हैं। इसीके कारण (हम) सबने आर्यपथ तथा ब्रह्माकी मर्यादा भुला दी।

राग मलार

[२८०]

जब जब मुरली कैं मुख लागत।
तब तब कान्ह कमल दल लोचन नख सिख तैं रस पागत ॥ १ ॥

पलकै माँझ पलटि से लीजत, प्रगटत प्रीति अनागत।
फरकत अधर बिंब, नासा पुट, सूधी चितवनि त्यागत ॥ २ ॥
बात न कहत, रहत टेढ़े ह्वै, नहिं आलिंगन माँगत।
सूरदास स्वामी बंसी बस मुरछे नेकु न जागत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) जब-जब वंशीके मुँहसे लगते हैं (वंशीको मुखसे लगाते हैं) तब-तब कमल-दल-लोचन कन्हैया नखसे चोटीतक (पूर्णतः) आनन्दमें निमग्न हो जाते हैं। एक पलकमें ही बदल-से जाते हैं और सहसा (एकाएक) प्रेम प्रकट करने लग जाते हैं। बिम्बाफलके समान (लाल-लाल) ओठ तथा नथुने फड़कने लगते हैं, और सीधे देखना छोड़ देते (तिरछे देखने लगते) हैं। कोई बात (किसीसे) नहीं कहते, टेढ़े (ऐंठे) हुए रहते हैं और (किसीसे) आलिंगन (भी) नहीं माँगते। हमारे स्वामी वंशीके वशमें होकर ऐसे मूर्छित हुए रहते हैं कि तनिक भी नहीं जागते (सँभल नहीं पाते)।

राग रामकली

[२८१]

जबहीं मुरली अधर लगावत।
अंग अंग रस भरि उमगत हैं, जातैं पुनि पुनि भावत ॥ १ ॥
औरै दसा होति पलकै मैं, अगम प्रीति परकासत।
तब चितवत काहू तन नाहीं, जबै नाद मुख भाषत ॥ २ ॥
ग्रीव नवाइ देत हैं चुंबन, सुनि धुनि दसा बिसारत।
सूर मुरछि लटकत ताही पै, ताही रसै बिचारत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) जब भी मोहन मुरलीको ओठसे लगाते हैं, (तभी) उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग आनन्दसे भरकर उमँगने लगता है, जिससे बार-बार वह (वंशी उन्हें) प्रिय लगती है। वे अगम्य (समझसे परे) प्रीति प्रकाशित करते हैं, जिसके कारण एक क्षणमें ही (उनकी) कुछ दूसरी ही दशा हो जाती है। जब मुखसे गान

करते हैं, तब वे किसीकी ओर ताकते (भी) नहीं। गर्दन झुकाकर उसे चुम्बन देते हैं और उसकी ध्वनि सुनकर अपनी दशा भूल जाते हैं। (वे) मूर्छित (-से) होकर उसी (वंशी) पर झुक जाते हैं और उसीके आनन्द (माधुर्य) को सोचते हैं।

[२८२]

मुरली हरि कौं नाच नचावति।
एते पै यह बाँस बँसुरिया, नंद नँदन कौं भावति ॥ १ ॥
ठाढ़े रहत बस्य ऐसे ह्वै, सकुचत बोलत बात।
वह निदरें आग्या करवावति नेकौ नाहिं लजात ॥ २ ॥
जब जानति आधीन भए हैं, देखति ग्रीव नवावत।
पौढ़ति अधर, चलित कर पल्लव रंध्र-चरन पलुटावत ॥ ३ ॥
हम पै रिस करि करि अवलोकत, नासा पुट फरकावत।
सूर स्याम जब जब रीझत हैं, तब तब सीस डुलावत ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) मुरली हरिको नाच नचाती (इच्छानुसार चलाती) है, इतनेपर भी यह बाँसकी वंशी नन्दनन्दनको प्रिय लगती है। इसके वशमें होकर ऐसे खड़े रहते हैं कि कोई बात (शब्द) बोलते भी संकोच करते हैं; और वह इनका अनादर कर (इनसे) अपनी आज्ञाका पालन कराती हुई तनिक भी लज्जित नहीं होती। जब इन्हें गर्दन झुकाते देखती है, (तब) समझती है कि ये वशमें हो गये हैं। इसके बाद (यह) ओठपर सोकर (उनके) हिलते हुए पल्लव-के समान कोमल हाथोंसे अपने छिद्ररूपी पैर दबवाती है। श्यामसुन्दर हमपर (तो) नथुने फड़काते क्रोध करके (हमारी ओर तिरछे) देखते हैं और जब-जब (उसपर) प्रसन्न होते हैं, तब-तब मस्तक हिलाते हैं।

राग जैतश्री

[२८३]

मुरलीं मोहि लिए गोपाल।
बस करि आपु अधर रस अँचवति, करि पाए हरि ख्याल ॥ १ ॥

सरबस अधर सुधा रस सब कौ, कोउ देखन नहिं पावति ।
आपुहि पियति, अघाति न तौहू, पुनि पुनि लोभ बढ़ावति ॥२॥
दुहुँ कर बैठि गरब सौं गरजति, बादति सुनति न बात ।
जो कुल दह्यौ डरै सो कौनै, अतिहीं निरदै गात ॥३॥
बारे तैं तप कियौ जौन हित, सो गँवाइ पछितानी ।
सूरदास बन ब्याधि माँझ घर, देखि देखि अकुलानी ॥४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो,) मुरलीने गोपालको मोहित कर लिया, उन्हें वशमें करके स्वयं उनके अधर-रसको पीती है, इसने हरिको अपने विचारके अनुसार चलनेवाला बना लिया है । (मोहनका) अधरामृत-रस (तो) हम सबका सर्वस्व है; उसे (हममेंसे) कोई देखने ही नहीं पाती । यह स्वयं ही उसे पीती है, फिर भी तृप्त नहीं होती तथा बार-बार लोभ बढ़ाती ही जाती है । दोनों हाथोंपर बैठकर अभिमानसे गर्जती है, बजते (या झगड़ा करते) हुए किसीकी बात ही नहीं सुनती । जिसने अपने कुलको ही जला दिया, वह फिर किससे डरे, वह अत्यन्त ही निर्दय शरीरवाली है । बचपनसे जिस (अधरामृत) के लिये हमने तपस्या की, उसे खोकर (अब) पश्चात्ताप कर रही हैं । वनके रोगको घरमें देख-देखकर (इस प्रकार गोपियाँ) व्याकुल हो रही हैं ।

राग मलार

[२८४]

माई, मुरली है चित चोर्‌यौ ।
बदति नाहिं अपनें बल काहू, नेह स्याम सौं जोर्‌यौ ॥ १ ॥
करत सनेह, सहत तन अपनें, देखत अंगनि मोर्‌यौ ।
श्रवन सुनत सुर नर मुनि मोहे, सागर जाइ झकोर्‌यौ ॥ २ ॥
गोपी कहतिं परसपर, ऐसैं सबहिनि कौ मन मोर्‌यौ ।
सूरदास प्रभु की अरधंगी, या बिधि स्याम अँकोर्‌यौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखी ! मुरलीने (मोहनका) चित्त चुरा लिया है, यह अपने बलके आगे किसीको कुछ गिनती ही नहीं; क्योंकि इसने श्यामसुन्दरके साथ प्रेमका नाता जोड़ा है। वे (भी) इससे स्नेह करते हैं और इसका भार अपने शरीरपर सहते हैं; इसने देखते-देखते श्यामसुन्दरके अङ्गोंको मरोड़ डाला है—टेढ़ा (त्रिभङ्गी) बना दिया है। इसकी ध्वनि कानोंसे सुनकर देवता, मनुष्य, मुनिगण—सभी मोहित हो हो गये, और समुद्रमें जाकर उस ध्वनिने हिलोरें उत्पन्न कर दीं।' गोपियाँ एक दूसरेसे कह रही हैं कि इस वंशीने ऐसे ही सबका मन आकर्षित कर लिया। यह हमारे प्रभु श्यामसुन्दरकी पत्नी बन गयी है, इस प्रकार श्यामको इसने आलिङ्गन दिया है।

राग गौरी

[२८५]

सखी री, मुरली भइ पटरानी।
अधर सदाँ सुख करति स्याम कें, सुधा पियति इतरानी ॥ १ ॥
मोहे पसु, पंछी, द्रुम, बेली, जमुना उलटि बहानी।
सुर नर मुनि बस भए नाद कें, सबै बस्य मन, ध्यानी ॥ २ ॥
तिहू भुवन मैं चली बड़ाई, अस्तुति मुख मुख गानी।
सूर स्याम की अब अरधंगिनि, रही झार लपटानी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपिका कह रही है—सखी ! मुरली तो (मोहनकी) पटरानी हो गयी; यह सदा श्यामके ओठपर आनन्द करती है और उनका अमृत पीकर गर्विष्ठ हो गयी है। इसने पशु-पक्षी, वृक्ष-लता सबको मोहित कर लिया; (और तो और, इसकी ध्वनिके प्रभावसे) यमुनाजी (भी) उलटकर (ऊपरकी ओर) बहने लगीं। (यही नहीं) देवता, मनुष्य एवं मुनिगण (भी) इसकी ध्वनिके वशमें हो गये, तथा सब ध्यान करनेवाले भी मनसे उसके वश हो गये। तीनों लोकोंमें इसकी बड़ाई होने लगी, प्रत्येक मुखसे इसका विरद गाया जाने लगा, पहले (वनमें) यह झाड़ियोंसे चिपटी रहती थी; (किंतु) अब तो श्यामसुन्दरकी पत्नी बन गयी।

[२८६]

स्याम नृपति, मुरली भइ रानी।
बन तैं ल्याइ सुहागिनि कीन्ही, और नारि उन कौं न सुहानी ॥१॥
कबहुँ अधर धरि देत अलिंगन,
बचन सुनत तन दसा भुलानी।
सूरदास प्रभु गिरिधर नागर,
नागरि बन भीतर तैं आनी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि,) श्यामसुन्दर राजा बन गये और मुरली (उनकी) रानी हो गयी। वनसे ले आकर मोहनने उसे सौभाग्यवती बना दिया, दूसरी कोई स्त्री उन्हें अच्छी नहीं लगी। कभी उसे ओठपर रखकर आलिङ्गन देते हैं और उसकी वाणी (ध्वनि) सुनकर अपने शरीरकी दशा भूल जाते हैं। हमारे स्वामी गिरिधरलाल नागर (चतुर) हैं, और इस नागरी (चतुरा स्त्री) को वे वनके भीतरसे (ढूँढ़कर) ले आये हैं।

राग मलार

[२८७]

ग्वालिनि, तुम्ह कित उरहन देहु ?
पूछौ जाइ स्याम सुंदर कौं, जिहिं दुख जुर्‌यौ सनेहु ॥ १ ॥
जनमत ही तैं भई बिरत चित, तज्यौ गाउँ, गुन, गेहु।
एकै पाउँ रही हौं ठाढ़ी, हिम ग्रीषम रितु मेहु ॥ २ ॥
तज्यौ मूल साखा सुपत्र सब, सोच सुखानी देहु।
अगिनि सुलागत मुर्‌यौ न तन मन, बिकट बनावत बेहु ॥ ३ ॥
बकतीं कहा बाँसुरी कहि कहि, करि करि तामस तेहु।
सूर स्याम इहिं भाँति रिझै किन, तुमहु अधर रस लेहु ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वंशी कह रही है—गोपियो ! तुम (मुझे) उलाहना क्यों दे रही हो ? जिस कष्टके साथ श्यामसुन्दरसे मेरा प्रेम

हुआ, वह उन्हींसे जाकर पूछ लो। जन्मसे ही मैं चित्त (हृदय) से विरक्त हो गयी, गाँव, (अपना) गुण तथा घर मैंने छोड़ दिया। सर्दी, गर्मी और वर्षा-ऋतुमें भी मैं एक पैरपर ही खड़ी (तपस्या करती) रही। (अपना) मूल, शाखा और उत्तम पत्ते आदि सब छोड़ दिये, चिन्तासे मेरा शरीर सूख गया। अग्निसे दागकर अटपटे छेद बनानेपर (मैंने) शरीर और मन विचलित नहीं किया। (अब तुम) बार-बार अभिमान और क्रोध करके बाँसुरी कह-कहकर मुझे क्यों अनाप-शनाप बातें कह रही हो? इसी प्रकार (मेरे समान कष्ट सहकर) श्यामसुन्दरको प्रसन्न करके तुम भी उनका अधर-रस क्यों नहीं लेतीं?

[२८८]

ग्वारिनि मोही पै सतरानी।
जौ कुलीन, अकुलीन भईं हम, तुम्ह तौ बड़ी सयानी ॥ १ ॥
नाना रूप बखान करति हौ, काहें बृथाँ रिसानी।
तुम्ही कहौ का दोष हमारौ? खोटी क्यौं पहिचानी ? ॥ २ ॥
जो स्रम मैं अपने तन कीन्हौ, सो सब कहौं बखानी।
सूरदास प्रभु बन भीतर तैं, तब अपने घर आनी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वंशी कह रही है—गोपियाँ तो मुझपर ही क्रुद्ध हो गयी हैं। (अरे!) मैं चाहे कुलीन हुई या अकुलीन; किंतु तुम तो बड़ी चतुर हो। फिर व्यर्थ क्रोध करके अनेक प्रकार (व्यङ्ग्य) से मेरा वर्णन (मेरी निन्दा) क्यों करती हो? तुम्हीं बताओ, मेरा क्या दोष है? मुझे बुरी क्यों समझती हो? अपने शरीरसे मैंने जो श्रम (तप) किया, वह सब वर्णन करके बताये देती हूँ। मेरे स्वामी तो, तब (मेरे तप करनेके बाद) मुझे वनके भीतरसे अपने घर लाये।

राग सूहौ

[२८९]

जब सुनिहौ करतूति हमारी।
तब मन मन तुमहीं पछितैहौ, बृथाँ दई हम याकौं गारी ॥ १ ॥

तुम तप कियौ, सुन्यौ मैं सोऊ, रिस पावौगी और कहा री।
मो समान तप तुम नहिं कीन्हौ, सुनौ, करौ जिनि सोर बृथा री॥ २॥
मैं का कहौं, सुनौगी तुमहू, जगत बिदित यह बात हमारी।
सूर स्याम आपुन ही कहिऐ, सुनत कहा मुसुकात मुरारी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वंशी कह रही है—(गोपियो !) जब तुमलोग मेरा कर्म सुनोगी, तब तुम स्वयं अपने-अपने मनमें पश्चात्ताप करोगी कि 'इसको हमने व्यर्थ ही गाली दी।' तुमने जो तपस्या की, उसका वर्णन भी मैंने सुन लिया; किंतु (मैं जो कहने जा रही हूँ, उससे) तुम और क्रोध करोगी, दूसरा तो क्या होना है। किंतु (सच बात यह है कि) सुनो ! तुमने मेरे समान तपस्या नहीं की, अब व्यर्थ हल्ला मत मचाओ। मैं स्वयं क्या कहूँ, तुम अपने-आप सुन लोगी; क्योंकि यह हमारी (तपस्याकी) बात तो संसारमें प्रसिद्ध है।' (फिर वंशी श्यामसुन्दरसे कहती है—) श्यामसुन्दर ! आप ही कहिये। (मेरी बातें) सुनकर मुरारि ! आप मुसकरा क्यों रहे हैं ? (मैं क्या झूठ कह रही हूँ ?)

राग कान्हरौ

[२९०]

मो पै ग्वालि ! कहा रिसाति।
कहा गारी देति मोकौं, कहा उघटति जाति॥ १॥
जौ बड़ी तुम आपुही कौं, तुम्हीं होहु कुलीन।
मैं बँसुरिया बाँस की जौ, तौ भई अकुलीन॥ २॥
पीर मेरी कौन जानै छाँड़ि इक करतार।
सूर प्रभु सँग देखि काहें खिझति बारंबार॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें मुरली कहती है—गोपियो ! तुम मुझपर क्या क्रोध करती हो, मुझे क्यों गाली देती हो और मेरी जातिको क्यों भला-बुरा कहती हो ? यदि तुम बड़ी हो तो अपने लिये हो, तुम्हीं कुलीन होकर रहो।

मैं यदि बाँसकी वंशी हूँ तो अकुलीन हो गयी। एक सृष्टिकर्ताको छोड़कर मेरी पीड़ाको कौन समझ सकता है, स्वामीके साथ मुझे देखकर (मुझपर) क्यों बार-बार रोष करती हो?

राग बिहागरौ

[२९१]

मैं अपनें बल रहति स्याम सँग, तुम काहें दुख पावति री।
मो पै रिस पावति हौ पुनि पुनि कछु काहुहिं बतरावति री ॥१॥
तुमहु करौ सुख, मैं बरजति का, ऐसेहिं सोर लगावति री।
कहा करौं मोहि स्याम निवाजी, काहें न दूरि करावति री ॥२॥
बृथाँ बैर तुम करति निसा दिव, आछौ जनम गँवावति री।
सूर सुनौ ब्रजनारि सयानी, मूरख ह्वै समुझावति री! ॥३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें मुरली कह रही है—(गोपियो!) मैं तो अपने बल (अपनी शक्ति) से श्यामसुन्दरके साथ रहती हूँ, (इसमें) तुमलोग क्यों दुखी होती हो? मुझपर बार-बार क्रोध करती हुई चाहे जिस किसीसे चाहे जो कुछ कहकर बतलाती (मेरी निन्दा करती) हो। तुम भी (श्यामसुन्दरके साथ रहकर) आनन्द करो, मैं क्या तुम्हें रोकती हूँ? यों (व्यर्थ) ही क्यों हल्ला-गुल्ला करती हो? मैं क्या करूँ (मेरा क्या दोष), श्यामसुन्दरने ही मुझपर कृपा की; (अब) मुझे (उस कृपासे) वञ्चित क्यों नहीं करा देतीं? तुम रात-दिन मुझसे व्यर्थ ही शत्रुता करके अपना यह उत्तम जीवन (द्वेषमें) खो रही हो। व्रजनारियो! सुनो, तुम तो चतुर हो; मैं मूर्ख होकर भी तुम्हें समझा रही हूँ।

राग रामकली

[२९२]

सुनौ इक बात हो ब्रजनारि!
रिस किएँ पावति कहा हौ, कहा दीन्हें गारि ॥१॥
जाति उघटति, पाँति उघटति, लेति हौ सब मानि।

तुम कहति, मैं हूँ कहति सोइ, मोहि बन तैं आनि ॥ २ ॥
कर्म कौ यह बहुत नाहीं, स्याम अधरनि धारि ।
सूर प्रभु जौ कृपा कीन्ही, कहा रहीं बिचारि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वंशी कह रही है—व्रजनारियो ! मेरी एक बात तो सुनो । मुझपर क्रोध करके तुम क्या पा जाती हो या गाली देनेसे ही तुम्हें क्या मिलता है ? तुम मेरी जाति बखानती हो, मेरी पंक्ति (कुल-परम्परा) बतलाती हो; यह सब (दोष) मैं मान लेती हूँ (कि मुझमें हैं)। जो तुम कह रही हो, वही मैं भी कह रही हूँ कि यह मेरे किसी कर्मका फल नहीं है, जो मुझे वनसे ले आकर श्यामसुन्दरने अपने ओठोंपर धारण किया। यदि स्वामीने कृपा की (कृपावश ही यह सब किया) तो इसपर तुम क्या विचार कर रही हो ? (भगवान् कुछ जाति-पाँति या योग्यता देखकर तो कृपा करते नहीं और जब उनकी कृपा हो गयी, तब जाति-पाँति या योग्यताका विचार ही व्यर्थ है) ।

राग बिलावल

[२९३]

रिझै लेहु तुमहू किन्ह स्यामै ।
काहे कौं बकवाद बढ़ावति, सतर होति बिनु कामै ॥ १ ॥
मैं अपने तप कौ फल भोगति, तुमहू करि फल लीजौ ।
तब धौं बीच बोलिहै कोऊ, ताहि दूरि धरि कीजौ ॥ २ ॥
अपनौ भाग नाहिं काहू सौं, आपु आपने पास ।
जो कछु कहौ सूर के प्रभु कौं, मो पै होति उदास ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें मुरली कहती है—(गोपियो !) तुम भी श्यामसुन्दरको क्यों नहीं प्रसन्न कर लेतीं, विवाद किसलिये बढ़ा रही हो और बिना काम (व्यर्थ) रुष्ट होती हो । मैं तो अपनी तपस्याका फल भोग रही हूँ, तुम भी (वैसी) तपस्या करके जो फल लेना हो, ले लो । उस समय यदि कोई (तुम्हारे) बीचमें बोले (बाधा दे) तो उसे पकड़कर दूर हटा

देना। अपना प्रारब्ध तो अपने साथ है, दूसरे किसीसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। (अतः तुम्हें) जो कुछ कहना हो, अपने स्वामीसे कहो, मुझपर नाहक खिन्न (क्रुद्ध) होती हो।

[२९४]

मेरे दुख कौ ओर नहीं।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैं ठाढ़े पाइ रही॥ १॥
कसकी नाहिं नेकुहूँ काटत, घामैं राखी डारि।
अगिनि सुलाक देत नहिं मुरकी, बेह बनावत जारि॥ २॥
तुम जानति मोहि बाँस बँसुरिया, अगिनि छाप दै आई।
सूर स्याम ऐसैं तुम्ह लेहु न, खिझति कहा हौ माई॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें वंशी कह रही है—(गोपियो !) मेरे कष्टका कहीं अन्त (किनारा) नहीं है (कि मैंने कितना कष्ट भोगा); छहो ऋतुओंकी सर्दी, गर्मी और वर्षामें मैं एक पैरसे खड़ी रही। मैंने काटते समय भी तनिक-सी पीड़ाका अनुभव नहीं किया। फिर मुझे धूपमें डालकर रखा गया, अग्निद्वारा दागे जानेपर तथा जलाकर छेद करते समय (भी) मैं मुड़ी नहीं (विचलित नहीं हुई)। तुम तो मुझे केवल बाँसकी वंशी जानती हो; किंतु मैं अग्निका चिह्न लगवाकर (तप्तमुद्राङ्कित होकर) आयी हूँ। सखियो ! (मुझपर) क्यों क्रोध करती हो, इसी प्रकार तुम भी श्यामसुन्दरको (तप करके) अपना न लो।

[२९५]

स्रम करिहौ जब मेरी सी।
तब तुम अधर सुधा रस बिलसौ,
मैं ह्वै रचिहौं चेरी सी॥ १॥

बिना कष्ट यह फल न पाइहौ,
जानति हौ अवडेरी सी ।
षट रितु सीत तपनि तन गारौ,
बाँस बँसुरिया केरी सी ॥ २ ॥
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ,
कहा करति अवसेरी सी ।
सुनौ सूर मैं न्यारी ह्वैहौं,
जब देखौं तुम मेरी सी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें मुरली कह रही है—(गोपियो !) जब तुमलोग मेरी तरह तपस्या करोगी, तब तुम (मोहनके) अधरामृत-रसका उपभोग करना और मैं तुम्हारी दासीके समान बनकर रहूँगी । बिना कष्ट (तप) किये यह फल नहीं पा सकोगी ! (यद्यपि तुम्हें इसमें झंझट-सी प्रतीत होती है ।) मुझ बाँसकी वंशीके समान छहो ऋतुओंकी सर्दी-गर्मीमें (तपस्या करके) अपने शरीरको गला दो (क्षीण कर दो) । (अब सब) चुप हो-होकर क्यों खड़ी हो ? क्यों चिन्ता करती हो ? सुनो, जब मैं तुम्हें अपनी-जैसी (तपस्विनी) देखूँगी, तब (स्वयं) पृथक् हो जाऊँगी ।

राग सारंग

[२९६]

मुरली तौ अधरनि पै गाजति ।
कैसैं बैठी दुहूँ करनि चढ़ि, अँगुरी रंध्रनि राजति ॥ १ ॥
स्यामै मिलि हम सबनि दिखावति, नेकु नाहिं मन लाजति ।
नाद सवाद मोद सौं उपजत, मधुरैं मधुरैं बाजति ॥ २ ॥
कबहुँ मौन ह्वै रहति, कबहुँ कछु कहति, रहति नहिं हाजति ।
सूर स्याम वाकौ सुर साजत, वह उनही सौं भ्राजति ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) मुरली तो मोहनके ओठोंपर (बैठी) गर्जना कर रही है । (श्यामसुन्दरकी)

अँगुलियोंसे (अपने) छिद्रोंको सुशोभित करती कैसी दोनों हाथोंपर चढ़कर बैठी है। श्यामसुन्दरसे मिलकर (अपना मिलन) हम सबको दिखलाती है। तनिक भी मनमें लज्जा नहीं करती; आनन्दपूर्वक रसमय ध्वनि उत्पन्न करती, मधुर-मधुर स्वरमें बज रही है। कभी चुप हो रहती है और कभी कुछ कहती है; इसे (दूसरेकी) कोई आवश्यकता ही नहीं। श्यामसुन्दर उसका स्वर सजाया करते हैं और वह (भी) उन्हींसे सुशोभित होती (सुन्दर स्वरमें बजती) है।

राग नट

[२९७]

मुरलीं तप कियौ तनु गारि।
नेकुहूँ नहिं अंग मुरकी, जब सुलाकी जारि॥ १॥
सरद, ग्रीषम, प्रबल पावस, खरी इक पग भारि।
कटतहूँ नहिं अंग मोरयौ, साहसिनि अति नारि॥ २॥
रिझै लीन्हे स्याम सुंदर, देति हौ कित गारि।
सूर प्रभु तब ढरे हैं री, गुननि कीन्ही प्यारि॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) वंशीने अपने शरीरको गलाकर तपस्या की है। जब जलाकर उसमें छिद्र किया गया, तब भी शरीरमें उसने तनिक भी सिकुड़न नहीं आने दी। शरद् (के शीत) में, ग्रीष्म (की गर्मी) में तथा (पावसकी) तीव्र वर्षामें एक पैरके बल (स्थिर) खड़ी रही। यह स्त्री बड़ी साहसी है, काटते समय भी इसने अंगोंको मोड़ा नहीं (टेढ़ा नहीं होने दिया)। श्यामसुन्दरको (इस प्रकार इसने) प्रसन्न कर लिया, अब इसे गाली क्यों देती हो। हमारे स्वामी तब (इतने कष्ट सहनेके बाद) इसपर अनुकूल हुए हैं, और इसके (इन) गुणोंके कारण ही (इसे उन्होंने) प्यार किया है।

राग सारंग

[२९८]

मुरलिया ऐसैं स्याम रिझाए।
नंद नँदन के गुन नहिं जानति, अति स्रम तैं इहिं पाए॥ १॥

तुव व्रत कौ फल उहै दिखायौ, चीर कदंब चढ़ाए।
कह्यौ कहा सब वैसेहिं आवौ, जुवतिनि लाज छुड़ाए॥ २॥
तब दै चीर अभूषन बोले, धनि धनि सबद सुनाए।
सुनौ सूर ब्रजनारी भोरीं इतनेहिं हरष बढ़ाए॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) वंशीने इस प्रकार (कठोर तप करके) श्यामसुन्दरको प्रसन्न किया है। नन्दनन्दनके गुण तुम नहीं जानती हो? बड़े परिश्रमसे इसने उन्हें पाया है। तुम्हारे व्रतका फल (तो) उन्होंने वही दिखला दिया कि (तुम्हारे) वस्त्र ले जाकर कदम्बपर रख दिये और समस्त युवतियोंकी लज्जा छुड़ाते हुए क्या कहा कि 'सब जैसी हो वैसे ही (जलसे बाहर) निकल जाओ। (जब सब जलसे बाहर आ गयीं,) तब वस्त्र और आभूषण देकर 'तुम सब धन्य हो, धन्य हो, (ये) शब्द (हमें) सुनाये और सुनो, हम व्रजनारियाँ (इतनी) भोली हैं, जो इतनेसे (धन्य-धन्य कहनेसे) ही अत्यन्त हर्षित हो गयीं।

राग बिलावल

[२९९]

मुरली जैसैं तप कियौ, कैसैं तुम करिहौ।
षट रितु इक पग क्यौं रहौ, अबहीं लरखरिहौ॥ १॥
वह काटत मुरकी नहीं, तुम तौ सब मरिहौ।
वह सुलाक कैसैं सहौ, परसत हीं जरिहौ॥ २॥
तुम अनेक वह एक है, वासौं जनि लरिहौ।
सूर स्याम जिहिं ढरि मिले, नहिं जीतौ हरिहौ॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें एक गोपी कह रही है—(सखियो!) मुरलीने जैसी तपस्या की, (वैसी तपस्या) तुम कैसे कर सकोगी। छहों ऋतुओंमें एक पैरसे कैसे खड़ी रहोगी, अभी (थोड़ी देरमें ही) लड़खड़ा (गिर) जाओगी। वह तो काटते समय सिकुड़ीतक नहीं; किंतु तुम सब (यदि काटी जाओ तो) मर (ही) जाओगी। वह छिद्र करना कैसे सहोगी। (अग्नि) छूते

ही तो जल जाओगी। तुम अनेक हो और वह अकेली है, (इसलिये न्याय यही है कि) उससे लड़ोगी नहीं। श्यामसुन्दर जिससे अनुकूल (कृपालु) होकर मिले हैं, उससे (लड़कर) जीतोगी नहीं, (निश्चय) हार जाओगी।

[३००]

मुरली की सरि जनि करौ, वह तप अधिकारिनि।
एते पै तुम्ह बोलिहौ, का भइ वन जारिनि॥ १॥
धीर धरें मरजाद है, ना तौ लघु ह्वैहौ।
नेकु दरस की आस है, ताहू तैं जैहौ॥ २॥
झगरें झगरोई रहै, तिहिं कहा बड़ाई।
वह अपनौ फल भोगवै, तुम देखौ माई॥ ३॥
देखौ वाके भाग कौं, ताकौं न सराहौ।
सूरदास झिझकीं कहा, नीकें किन चाहौ॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कहती है—(सखियो !) मुरलीकी बराबरी मत करो, वह तपस्यासे (श्यामके प्रेमकी) अधिकारिणी हुई है। इतनेपर भी तुम कहोगी कि यह वनको जलानेवाली तपस्या करके क्या हो गयी (जो इसकी बराबरी हम नहीं कर सकतीं। देखो,) धैर्य रखनेमें ही मर्यादा (गौरव) है, नहीं तो छोटी (तिरस्कृता) हो जाओगी और थोड़ी-सी (श्यामसुन्दरके) दर्शनकी आशा है, उससे भी जाओगी (वे दर्शन देना भी बंद कर देंगे)। झगड़नेसे झगड़ा (लड़ाई) ही होता है, उसमें कौन बड़प्पन है। सखियो ! वह (वंशी) अपने तपका फल भोगती है और तुम देखा करती हो (वह तुम्हें प्राप्त नहीं होता)। उसके सौभाग्यको देखो, भले ही उसकी प्रशंसा न करो। अरी ! झिझक क्यों रही हो, (तुम भी) भली प्रकार (वंशीकी भाँति श्यामसुन्दरको) क्यों नहीं चाहती (जिससे उनकी कृपा प्राप्त हो)।

राग रामकली

[३०१]

मुरली सौं अब प्रीति करौ री।
मेरी कही मानि मन राखौ, उर रिस दूरि धरौ री॥ १॥
तुम जु सुनीं मुरली की बातैं, दीन होइ बतरानी।
काहें न ढरैं स्याम ता ऊपर, क्यौं न होइ पटरानी॥ २॥
हम जान्यौ यह गरब भरी है, साधु न यातैं और।
रिझै लियौ हरि कौं तप कें बल, बृथाँ करौ तुम्ह सोर॥ ३॥
सूर स्याम बहुनायक सजनीं, यहू मिली इक आइ।
तुम अपने जौ नेम रहौगी, नेम न कर तैं जाइ॥ ४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखियो! अब मुरलीसे प्रेम कर लो। मेरा कहना मानकर उसे हृदयमें रख लो और चित्तसे रोष दूर कर दो। मुरलीकी बातें तुमने सुन ही लीं। उसने दीन बनकर (नम्रतासे) बातें की हैं। (ऐसी नम्र होनेसे) क्यों न श्यामसुन्दर उसपर द्रवित हों और क्यों न वह पटरानी बने। हमने तो समझा था कि यह गर्वसे भरी है; पर इससे सज्जन तो दूसरा कोई नहीं है। इसने अपनी तपस्याके बलसे श्रीकृष्णको प्रसन्न कर लिया है, तुम व्यर्थ ही हल्ला कर रही हो। सखि! श्यामसुन्दर तो अनेकोंके नायक (प्रेमास्पद) हैं, सो (औरोंके समान) यह भी एक उनसे आकर मिल गयी (इसमें बिगड़ा क्या)। तुम यदि अपने नियमपर रहोगी तो वे तुम्हें भी मिलेंगे; पर (देखना) नियम हाथसे न चला (छूट) जाय।

राग कान्हरौ

[३०२]

नेमहिं मैं हरि आइ रहैंगे।
मुरली सौं तुम कछू कहौ जिनि, ऐसेहिं तुम्है मिलैंगे॥ १॥
वे अंतरजामी सब जानत, घट घट की जो प्रीति।
जाकौ जैसौ भाव सखी री, ताहि मिलैं तिहिं रीति॥ २॥

मातु पिता कुल कानि लाज तजि भजी जनम तैं जाहि।
काहे कौं मुरली के डाहन अब तजिऐ री ताहि ॥ ३ ॥
सोरह सहस एक मन आगरि, नागरि मुरली जानि।
सूर स्याम कौं भजौ निरंतर, जासौं है पहिचानि ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) श्रीकृष्ण इस नियम-पालन (भजन) से ही आये रहेंगे; तुम मुरलीसे कुछ भी मत कहो। वे (जैसे इसे मिले हैं) ऐसे ही तुमसे भी आ मिलेंगे। वे अन्तर्यामी हैं। प्रत्येक हृदयकी जो प्रीति है, उसे वे (पूर्णतः) जानते हैं; सखी! जिसका जैसा भाव होता है, उससे उसी प्रकार (वे) मिलते हैं। अरी! माता-पिता, कुलकी मर्यादा और लोक-लाज छोड़कर (हमने) जन्मसे ही जिसका भजन किया (जिससे प्रेम किया), अब मुरलीके द्वेषसे उसे क्यों छोड़ना चाहिये? समझ लो कि इस (श्याम) के मन (रूपी) खजानेमें (रत्नरूप) सोलह सहस्र (गोपियाँ और) एक (मुरली) है, इस मुरलीको भी नागरी (व्रजस्त्री) समझ लो और जिनसे पहचान (प्रेम) है, उन श्यामसुन्दरका निरन्तर भजन करो।

[३०३]

मुरली की जनि बात चलावौ।
वह बल करति आपने तप कौ, तुम काहें बिसरावौ ॥ १ ॥
कहा रही एकै पग ठाढ़ी, कहा काटि जो डारी।
कहा सुलाक सह्यौ उहिं गाढ़े, कर सौं स्याम सँवारी ॥ २ ॥
निमिष एक भरि कष्ट सह्यौ जो, तुरत अधर मधु सींची।
सूर सुनौ, जिनि बात कह्यौ तिहि, बड़ी आहि जौ नीची ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें दूसरी गोपी कह रही है—(सखियो!) मुरलीकी चर्चा मत चलाओ। तुम यह बात भूल क्यों जाती हो कि वह अपनी तपस्याका बल (गर्व) करती है। क्या हुआ जो वह एक पैरसे खड़ी रही और क्या हुआ जो काट डाली गयी, क्या हुआ जो उसने छेद करानेका भारी कष्ट सहा जब कि (अन्तमें जाकर) श्यामसुन्दरने (उसे अपने)

हाथसे सँवार दिया। (उसने) यदि एक पलके लिये कष्ट सहा (भी) तो तुरंत मोहनने (उसे) अधरामृतसे सींच दिया। सुनो, जो अत्यन्त नीच है, उस (वंशी) की (कोई) बात मत कहो।

[३०४]

हम तैं तप मुरली न करै री।
कहा सुलाक सह्यौ जो इक पल, नित प्रति बिरह जरैं री ? ॥ १ ॥
किरिया सी करि कैं भइ ठाढ़ी, तुरत अधर तट लागी।
हम कौं निसि दिन मदन जरावत, वाही रस अनुरागी ॥ २ ॥
यहै बात करमन तैं मोटी, तातैं हम सरि नाहीं।
सूर स्याम की महिमा न्यारी, कृपा करी ता माहीं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) मुरलीने हमसे (अधिक) तप नहीं किया। क्या हुआ जो एक पल इसने छेद करनेका कष्ट सह लिया, हम (तो) नित्य-प्रति (दिन-दिन) विरहमें जलती हैं। यह तो कर्तव्य-पूर्ति-(फर्ज अदायगी) सी करके खड़ी हो गयी और तुरंत (मोहनके) ओठोंके किनारेसे जा लगी; उधर उसी (अधरके) रसकी अनुरागिणी हमलोगोंको रात-दिन कामदेव जलाया करता है। यह बात ठीक है कि वह बड़ी भाग्यवान् है, इससे हम उसके बराबर नहीं हैं। श्यामसुन्दरकी महिमा ही न्यारी है (जो हमें छोड़कर उन्होंने) उसपर कृपा की।

[३०५]

तुम्ह अपने तप की सुधि नाहीं, जो तन गारि कियौ।
संबत पाँच पाँच की लबहीं अजहूँ प्रगट हियौ ॥ १ ॥
वह तुषार, वह तपनि तपस्या, वह पावस झकझोर।
वह लरिकई मात पितु कौ हित, वैसी प्रीतै तोर ॥ २ ॥
तबही तैं तन बिरह जरत है, निसि बासर यौं जात।
कैसैं तप निरफलै जाइगौ, सुनौ सूर यह बात ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) जो तपस्या शरीरको गलाकर तुमने की, उस अपने तपका तुम्हें स्मरण नहीं है, वह बात तो आज भी हृदयमें प्रत्यक्ष-(सी) है—हम सब (उस समय केवल) पाँच-पाँच वर्षकी थीं। वह (कठोर) सर्दी, वह (भयंकर) गर्मी और वह वर्षाकी झड़ी और उनमें (हम सबकी) तपस्या, वह बाल्यावस्था और माता-पिताका प्रेम और उस प्रकारके प्रेमको तोड़ना (उनके मना करनेपर भी श्यामको पानेकी आतुरता)। तभीसे विरहमें हमारा शरीर जल रहा है और रात-दिन ऐसे ही बीते जाते हैं, यह बात सुनो तो, वह तपस्या निष्फल कैसे जायगी।

राग गौरी

[३०६]

मुरलिया एकै बात कही।
भाग आपनौ अपने माथें, मानी यह मनहिं सही॥ १॥
हम तैं बहुत तपस्या नाहीं, बिरह जरी वह नाहीं।
कहा निमिष करि प्रेम सुलाकी, देखौ गुनि जिय माहीं॥ २॥
बात कहति कछु निंदति नाहीं, भाग बड़े हैं वाके।
सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि बस्य भए हैं जाके॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) वंशीने एक ही बात (ठीक) कही कि अपना प्रारब्ध ही अपने सिर पड़ता है, हमारे मनने (भी) इसे ठीक मान लिया। (किंतु) हमसे अधिक उसकी तपस्या नहीं है; अपने चित्तमें सोच देखो कि वह वियोगमें तो जली नहीं है, एक क्षण प्यार करके (अच्छे भावसे) छेदी ही गयी तो क्या हो गया। यह मैं (सच) बात कहती हूँ, कुछ निन्दा नहीं कर रही हूँ; (किंतु) उसका सौभाग्य महान् है, जिसके कारण हमारे चतुरशिरोमणि स्वामी (भी) उसके वशमें हो गये हैं।

[३०७]

मुरली सौं का काम हमारौ।
अधर धरैं, सिर पै किन राखैं, तुम्ह जिनि कबहुँ बिगारौ॥ १॥

जा कारन तुम जनम भईं व्रज, ध्यावौ नंद दुलारौ ।
बीचै कहूँ और सौं अटके, तामैं कहा तुम्हारौ ॥ २ ॥
वह मुसुकनि, वह स्याम सुभग छवि, नैननि तैं जिनि टारौ ।
सूरज प्रभु व्रजनाथ कहावत, ते तुम्ह छिन न बिसारौ ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें दूसरी गोपी कह रही है—(सखियो !) मुरलीसे हमारा क्या प्रयोजन है । वे उसे ओठपर धरें अथवा सिरपर ही क्यों न रखें; तुम उससे कभी बिगाड़ (द्वेष) मत करना । जिसके लिये तुमने व्रजमें जन्म लिया है, उस नन्द-दुलारेका ध्यान करती रहो । बीचमें ही वे किसी दूसरे (के प्रेम) में उलझ गये, तो उसमें तुम्हारा क्या (बिगड़ा) । उस (मोहनकी) मुस्कराहट और उस मनोहर श्याम छटाको नेत्रोंसे मत हटाओ, हमारे स्वामी व्रजनाथ कहे जाते हैं (अतः तुम्हारे भी नाथ हैं ही); उन्हें तुम एक क्षणके लिये भी मत भूलो ।

राग बिहागरौ

[३०८]

मुरली स्याम बजावन लागे ।
अधर सुधा रस है वह पागी, आपुन ता रस पागे ॥ १ ॥
धन्य धन्य बड़भागिनि नागरि, धनि हरि के मुख लागी ।
धनि वह बन, धनि धनि वह उपबन, जहँ बाँसुरी सुहागी ॥ २ ॥
धनि वह रंध्र, धन्य वह अँगुरी, बारंबार चलावत ।
सूर सुनत व्रजनारि परसपर, दुख सुख दोऊ पावत ॥ ३ ॥

श्यामसुन्दर वंशी बजाने लगे हैं, वह (मुरली) उनके अधरामृतके आनन्दमें निमग्न है और वे (स्वयं) भी उसके आनन्दमें निमग्न हैं । वह चतुर वंशी महान् भाग्यशालिनी तथा परम धन्य है, और उसका श्रीकृष्णके मुखसे लगना (भी) धन्य है । वह वन धन्य है तथा वह उपवन (भी) परम धन्य है, जहाँ (यह) सौभाग्यवती वंशी पैदा हुई । उसके वे छिद्र धन्य

हैं, (उन छिद्रोंपर रखी मोहनकी) वे उँगलियाँ (भी) धन्य हैं, जिन्हें वे बार-बार (उन छिद्रोंपर) चलाते हैं । सूरदासजी कहते हैं कि उस वंशीध्वनिको सुनते हुए व्रजकी स्त्रियाँ दुःख-सुख दोनों (ही) पाती हैं ।

राग पूरबी

[३०९]

मुरली कैसैं बजै रस सानी,
गरज धुँकार अमृत बानी।
नाद प्रवाह तरै, भरै, रीझै,
इतनौ रस कहँ तैं जानी ॥ १ ॥
सप्त सुरनि गति, जति उपजति अति,
विपरित थावर पवन पानी ।
सूरदास गिरिधर बहुनायक,
याही सौं निसि दिनि रति मानी ॥ २ ॥

मुरली कैसी रसमयी ध्वनिसे बज रही है, उसकी गर्जना और गूँजकी ध्वनि अमृतमय है । वह (वंशी) नाद (स्वर) के प्रवाहमें तैरती (उसे पार करती) हुई (कभी) निमग्न होती है और (कभी) रीझती (प्रसन्न होती) है; (पता नहीं) इतना आनन्द इसने कहाँसे जान लिया । (वंशीसे) अत्युत्तम सातों स्वरोंकी गति और यति (विराम या ताल) उत्पन्न होती है, जिसके श्रवणसे स्थावर (जड) पवन तथा जल (की दशा ही स्वाभाविकसे) विपरीत हो जाती है । सूरदासजी कहते हैं कि गिरिधारीलाल तो बहुतोंके नायक हैं, अब इसी (मुरली) से उन्होंने रात-दिन सुख मान लिया है (इसीपर सदा अनुरक्त रहते हैं) ।

राग रामकली

[३१०]

मुरलिया बाजति है बहु बान ।
तीनि ग्राम, इकईस मूर्छना, कोटि उनंचास तान ॥ १ ॥

सरब कला ब्युत्पन्न सुघर अति, या समसरि को आन।
अति सुकंठ गावति, मन भावति, रीझे स्याम सुजान ॥ २ ॥
ऐसी सौं नहिं बैर कीजिऐ, दूरि करौ रिस ग्यान।
सूर स्याम कें अधर बिराजति सबही अंग निधान ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) वंशी बहुत प्रकारसे (अनेक रागोंमें) बजती है। तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छना और उन्चास प्रकारकी तानें—(इस प्रकार संगीतकी) सभी कलाओंमें यह निपुण है, (उनमें) अत्यन्त चतुर है, इसकी समता करने योग्य और दूसरी कौन है। अत्यन्त सुन्दर (कोमल) कण्ठ (स्वर) से गाती है, जिसके कारण मनको प्रिय लगती है; इसीसे चतुर श्यामसुन्दर इसपर प्रसन्न हो गये हैं। ऐसी (वंशी) से शत्रुता नहीं करनी चाहिये। (अपना) क्रोधपूर्ण विचार दूर कर दो (त्याग दो), सभी अङ्गोंसे परिपूर्ण (सभी गुणोंसे युक्त) यह श्यामसुन्दरके ओठोंपर विराजती है।

[३११]

मुरलिया स्याम अधर पै बैसी।
सुनौ सखी! यह है तिहि लायक, अतिहिं भली, नहिं नैसी ॥ १ ॥
कैसैं नंद नँदन कर धरते, जो पै होती गैसी।
तुमही बृथाँ कहति जोइ सोई, यह जैसी की तैसी ॥ २ ॥
सुनौ कहा कहि कहि मुख गावति, हृदे स्याम कें पैसी।
सूरदास प्रभु क्यौं न मिलै ढरि, तिहूँ भुवन जै जै सी ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—मुरली श्यामसुन्दरके ओठपर बैठी है। सखी ! सुनो, यह उसके योग्य है—अत्यन्त ही भली है, बुरी नहीं। यदि यह गयी-बीती (निकृष्ट) होती तो नन्दनन्दन इसे हाथपर कैसे रखते। तुम्हीं व्यर्थ इसे जो मनमें आता है (उल्टी-सीधी) कहती हो; यह जैसी थी, वैसी ही है। सुनो ! यह श्यामसुन्दरके हृदयमें प्रविष्ट होकर

क्या कह-कहकर मुखसे गा रही है । (फिर) हमारे स्वामी रीझकर इससे क्यों न मिलें; तीनों लोकोंमें यह उनकी जय-जयकारके समान है (इसीके कारण तीनों लोकोंमें उनकी जयध्वनि होती है) ।

राग बिलावल

[३१२]

आपु भलाई सबै भले री ।
जो वह भली, गुननि की पूरी, तौ ढरि स्याम मिले री ॥ १ ॥
इक जुवती, औ मधुरैं गावति, बानौ ललित कहै री ।
जब जब स्याम अधर पै राखत, तब तब सुधा बहै री ॥ २ ॥
एते पै हम सौं सनमुख है तुम काहें रिस पावति ।
सूरदास प्रभु कमल नैन कौं एते पै वह भावति ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) अपने भले हो जानेपर (फिर) सभी (अपने लिये) भले हो जाते हैं । जब वह वंशी भली और गुणोंसे भरपूर है, तभी तो (उससे) श्यामसुन्दर अनुकूल होकर मिले हैं। एक तो वह युवती, दूसरे मधुर स्वरमें गाती है और (तीसरे) मनोहर शब्द कहती है; और जब-जब श्यामसुन्दर उसे ओठपर रखते हैं, तब-तब (वह) अमृत प्रवाहित करती है । इतनेपर भी (गर्व न करके) वह हमारे अनुकूल है; ऐसी दशामें (उसपर) तुम क्रोध क्यों करती हो । और इतनेपर भी (यह और सोचनेकी बात है कि) हमारे स्वामी कमलनयनको वह प्रिय लगती है (उसपर रोष करनेसे वे रुष्ट हो सकते हैं) ।

राग केदारौ

[३१३]

जौ पै मुरली कौ हित मानौ ।
तौ तुम बार बार ऐसैं कहि, मन मैं दोष न आनौ ॥ १ ॥
बासर जाम बिरह अहि ग्रासित, हूजत मृतक समान ।
लेति जिवाइ सुमंत्र सुरस कहि, करति न डर अपमान ॥ २ ॥

निज सँकेत लेखावति अजहूँ, मिलवति सारँगपानि ।
सरद निसा रस रास करायौ, बोलि बोलि मृदु बानि ॥ ३ ॥
परकृत सील सुकृत उपमा रमी, तासौं यौं कत कहिऐ ।
पर कौ सूरजदास मेटि कृत, न्याइ इतौ दुख सहिऐ ॥ ४ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) यदि तुम मुरलीका उपकार मानो (समझो) तो बार-बार ऐसी (उसकी निन्दाकी) बातें कहकर मनमें उसके दोष न ले आओ । (देखो,) दिनके प्रहर (समय) में (जब श्याम वनमें चले जाते हैं, तब) विरहरूपी सर्पके द्वारा (काट लिये जानेके कारण हम सब मृतकके समान हो जाती हैं। उस समय यह (वंशी) ही अपने उत्तम रसमय (ध्वनिरूपी) सुन्दर मन्त्रको पढ़कर (बोलकर) हमें जिला लेती है (वंशी-ध्वनि ही हममें जीवन डालती है) । अपमानका भय वह (उस समय) नहीं करती (कि सावधान होकर हम उसका अपमान करेंगी) । अब भी (वह) अपना संकेत लक्षित कराके (अपनी ध्वनिके द्वारा हमें संकेत करके) शार्ङ्गपाणि (श्याम) से मिलाती है। शरद्‌की रात्रियोंमें (उसीने) कोमल शब्द बोल-बोलकर रसमय रास कराया । वह तो दूसरेके उपकार, शील तथा पुण्यकी उपमामें क्रीड़ा करती है (उसके कार्य ऐसे हैं कि परोपकार, शील तथा पुण्यके आदर्शरूपसे उसकी उपमा दी जा सकती है); उससे इस प्रकार (अनादरकी बात) क्यों कहना चाहिये । दूसरेका उपकार मिटा (भूल)-कर (ही) इतना दुःख हम सहती हैं, यह न्याय ही है । (जो परोपकार भूल जाय, उसका दुःखी होना उचित ही है ।)

राग रामकली

[३१४]

मुरली स्याम बजावन दै री ।
स्रवनन सुधा पियति काहें नहिं, इहि तू जिनि बरजै री ॥ १ ॥
सुनति नाहिं वह कहति कहा है, राधा राधा नाम ।
तू जानति हरि भूलि गए मोहि, तुम्ह एकै पति बाम ॥ २ ॥

वाही के मुख नाम धरावत, हमै मिलावत ताहि।
सूर स्याम हम कौं नहिं बिसरे, तुम डरपति हौ काहि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें श्रीराधाजी कह रही हैं—(सखी !) श्यामसुन्दरको वंशी बजाने दे। कानोंके द्वारा (यह ध्वनिरूपी) सुधा (अमृत) क्यों नहीं पीती ? इसे (मुरलीको) तू रोक मत। सुनती नहीं, वह क्या कह रही है ? (वह तो) 'राधा ! राधा !' (मेरा) नाम ही लेती है। तू समझती है कि हरि मुझे भूल गये ? (वे क्या) केवल (एकमात्र) तुम्हारे ही स्वामी हैं ? (तुम तो) उसी (वंशी) को मुखसे नाम धराती (खोटी-खरी सुनाती) हो, जो हमें उनसे मिलाती है। श्यामसुन्दर हमें भूले नहीं हैं, तुम (व्यर्थ) क्यों डरती हो।

राग जैतश्री

[३१५]

जब जब मुरली कान्ह बजावत।
तब तब राधा नाम उचारत, बारंबार रिझावत ॥ १ ॥
तुम रमनी, वे रमन तुम्हारे, वैसेंहिं मोहि जनावत।
मुरली भई सौति जो माई, तेरी टहल करावत ॥ २ ॥
वह दासी, तुम्ह हरि अरधांगिनि, यह मेरे मन आवत।
सूर प्रगट ताही सौं कहि कहि तुम कौं स्याम बुलावत ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी श्रीराधासे कह रही है—जब-जब श्रीकृष्ण मुरली बजाते हैं, तब-तब (मुरलीमें तुम्हारे) 'राधा' नामका उच्चारण करते बार-बार (तुम्हें) प्रसन्न करते हैं। मुझे वे उसी प्रकार बताते हैं कि तुम (उनकी) प्रियतमा हो और वे (श्यामसुन्दर) तुम्हारे प्रियतम हैं। सखी ! यह मुरली जो सौत बन गयी, उससे वे तेरी सेवा कराते हैं। मेरे मनमें यह बात आती है कि वह (मुरली) दासी है और तुम हरिकी अर्धाङ्गिनी हो। यह बात तो इसीसे प्रकट है कि श्यामसुन्दर उसी (वंशी) से कह-कहकर तुमको बुलाते हैं।

राग केदारौ

[३१६]

यह मुरली ऐसी है माई ।
हम यासौं रिस वृथाँ करति हीं, तब इहि कदरि न पाई ॥ १ ॥
बानी ललित सुनत स्रवनन हित, चित मेरे अति भाई ।
गाजति बाजति स्याम अधर पै, लागति तान सुहाई ॥ २ ॥
मैं जानी यह निठुर काठ की, नरम बाँस की जाई ।
सूरदास ब्रजनारि परसपर ताकी करतिं बड़ाई ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—) सखी ! यह मुरली तो ऐसी (उत्तम) है । (जब) हम इसपर व्यर्थ क्रोध करती थीं, तब इसकी (महिमा) नहीं जान पायी थीं (उस समय इसे योग्य नहीं समझा था) । इसकी ललित वाणी सुननेमें कानोंके लिये हितकारी (सुखद) ज्ञात हुई और वह मेरे चित्तको अत्यन्त प्रिय लगी । श्यामसुन्दरके ओठपर प्रसन्नता-पूर्वक बजती हुई इसकी तान (मुझे) सुहावनी लगती है । मैंने तो यह समझा था कि यह निष्ठुर काष्ठकी है; किंतु यह तो कोमल बाँससे उत्पन्न हुई है । सूरदासजी कहते हैं कि इस प्रकार परस्पर व्रजस्त्रियाँ उस (वंशी) की बड़ाई करती हैं ।

राग कान्हरौ

[३१७]

अब मुरली कछु नीकें बाजति ।
ज्यौं अधरनि, ज्यौं कर पै बैठति, त्यौं अतिहीं अति राजति ॥ १ ॥
अब लौं जानी बाँस बँसुरिया, यातैं और न बंस ।
कैसैं बजि रजि चली सबनि कौं, राधा करति प्रसंस ॥ २ ॥
यह कुलीन, अकुलीन नाहिं री, धनि याके पितु मात ।
सुनौ सूर नाते की भैनी, कहति बात हरषात ॥ ३ ॥

(गोपी कह रही है—सखियो !) मुरली अब कुछ अच्छी तरह बजती है। जैसे-जैसे यह (मोहनके) ओठोंपर और हाथोंपर बैठती है, वैसे-वैसे अधिकाधिक सुन्दर लगती है । अबतक तो हम जानती थीं कि यह बाँसकी वंशी (मात्र) है; किंतु इससे श्रेष्ठ तो (दूसरा) किसी-का वंश (ही) नहीं है । कैसे यह बजकर सबको रिझाती हुई श्रीराधाकी प्रशंसा करती है । सखी ! यह कुलीन (उच्च कुलकी) है, अकुलीन (हीन कुलकी) नहीं; इसके पिता-माता धन्य हैं। सुनो ! यह तो सम्बन्धमें हमारी बहिन लगती है। सूरदासजी कहते हैं—(इस प्रकारकी बातें) कहती हुई वे (गोपियाँ) हर्षित हो रही हैं।

[३१८]

मुरलिया मोकौं लागति प्यारी ।
मिली अचानक आइ कहूँ तैं, ऐसी रही कहाँ री ॥ १ ॥
धनि याके पितु मातु, धन्य यह, धन्य धन्य मृदु बोलनि ।
धन्य स्याम गुन गुनि कैं ल्याए नागरि चतुर अमोलनि ॥ २ ॥
यह निरमोल, मोल नहिं याकौ, भली न यातैं कोई ।
सूरदास याके पटतर कौं, तौ दीजै जौ होई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो !) वंशी मुझे (अत्यन्त) प्यारी लगती है । (पता नहीं) ऐसी (गुणवती) यह कहाँ (छिपी) थी, (सौभाग्यसे) अचानक कहींसे आकर मिल गयी । इसके पिता-माता धन्य हैं, यह धन्य है और कोमल स्वरमें (इसका) बोलना (भी) परम धन्य है। श्यामसुन्दर (भी) धन्य हैं, जो इसके गुणोंको समझकर इस चतुर नागरीको बिना मूल्य ले आये। यह (तो) अमूल्य है, इसका कोई मूल्य हो नहीं सकता; इससे भली (भी) और कोई नहीं है । इसकी उपमा तो तब दी जाय, जब कोई इसके समान हो ।

राग रामकली

[३१९]

मुरली दिन दिन भली भई ।
बन की रहनि नाहिं अब यामैं, मधुहीं पागि गई ॥ १ ॥

अमिय समान कहति है बानी, नीकें जानि लई।
जैसी संगति, बुधि तैसीऐ ह्वै गइ सुधामई ॥ २ ॥
जब आई तब औरै लागी, सो निठुरई हई।
सूर स्याम अधरनि के परसें सोभा भई नई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखियो!) मुरली दिनोंदिन (उत्तरोत्तर) भली होती जा रही है। अब इसमें वनकी रहनी (जंगलीपना) नहीं रही, यह तो अमृतमें ही पग (अमृतमय हो) गयी है। हमने अच्छी प्रकार जान लिया कि यह अमृतके समान वाणी कहती है; जैसा सङ्ग होता है, बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है; अतः (श्यामके अधरामृतके सङ्गसे) यह अमृतमयी हो गयी है। जब आयी थी, तब कुछ दूसरी (ही) प्रकारकी प्रतीत हुई थी; किंतु (इसकी) वह निष्ठुरता नष्ट हो गयी है। श्यामसुन्दरके ओठोंका स्पर्श करनेसे अब इसकी नवीन ही शोभा हो गयी है।

राग गौड़ मलार

[३००]

भली, अनभली करतूति संगतिहि तैं,
बाँस बन झार की भई मुरली।
कहा तब लहति ही, निठुरताई अबै
बचन अमृत कहति, सुरन सुरली ॥ १ ॥
सुधा अधरन संग भई सापुहिं सुधा,
कहा अब प्रीति मैं इन गमायौ।
सूर प्रभु मिले अरु हम मिलीं धाइ कैं,
इते पै धन्य चहुँ जुग कहायौ ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि!) अच्छे और बुरे कर्म सङ्गसे ही होते हैं। (बेचारी) वंशी वनकी झाड़ियोंके बाँससे ही तो उत्पन्न हुई है; अतः वहाँ और क्या पाती, निष्ठुरता (ही) इसने पायी। (किंतु) अब तो अपने सुरीले स्वरोंमें अच्छी तरह घुली हुई अमृत-वाणी बोलती है। (श्यामके) अधरामृतके सङ्गसे यह स्वयं अमृतमयी

हो गयी, (मोहनके) प्रेममें अब भला इसने खोया क्या। हमारे स्वामी (इसे) मिले और हम सब (भी) दौड़कर (इससे) मिलीं और इसके ऊपरसे चारों युगोंमें यह धन्य कहलायी।

[३२१]

धन्य मुरली, धन्य तप तिहारौ।
धन्य धनि मातु, धनि धन्य भ्राता पिता,
बहुरि धनि धन्य तुव भगति सारौ ॥ १ ॥
धन्य वह बाँस, धनि धन्य जहँ तू रही,
धन्य बन झार, तो तैं बड़ाई।
धन्य तप कियौ, षट रितु रही एक पग,
डुली नहिं धन्य मन की दृढ़ाई ॥ २ ॥
कटतहू मुरी नहिं, रंध्रहू जरी नहिं,
नेम तैं टरी नहिं, तुही जानै।
तैसेहीं मिले प्रभु सूर तोकौं तुरत,
सींचि अमृत अधर नेह मानैं ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—वंशी ! तुम धन्य हो और तुम्हारी तपस्या धन्य है ! परम धन्य है तुम्हारी माता और तुम्हारे भाई तथा पिता अत्यन्त धन्य हैं; फिर तुम्हारी उत्तम भक्ति भी धन्य-धन्य है। (जिससे तू उत्पन्न हुई,) वह बाँस धन्य है; (वह स्थान,) जहाँ तू रही, अत्यन्त धन्य है और वनकी वे झाड़ियाँ धन्य हैं, जिन्हें (तुमसे) बड़प्पन प्राप्त हुआ। तुम धन्य हो कि छहो ऋतुओंमें एक पैरपर खड़ी रहकर तुमने तपस्या की; तुम्हारे मनकी दृढ़ता (भी) धन्य है कि तनिक भी हिली नहीं। कटते समय भी (तुम) मुड़ीं नहीं (टेढ़ी नहीं हुई), छेद करते समय भी जलीं नहीं और अपने नियमसे भी नहीं हटीं। यह कष्ट सहना (तो) तुमने ही जाना। उसी प्रकार (उतने ही उल्लाससे) हमारे स्वामी तुम्हें तुरंत प्राप्त हुए। ये अपने अधरामृतसे (तुम्हें) सींचकर (तुम्हारे) प्रेमका सम्मान करते हैं।

राग हमीर

[३२२]

आजु बजाई मुरलि मनोहर, सुधि न रही कछु तन मन मैं ।
मैं जमुना तट सहज जाति ही, ठाढ़े कान्ह बृंदावन मैं ॥१॥
नाना राग रागिनी गावत, धरैं अमृत मृदु बैननि मैं ।
सूर निरखि हरि अंग त्रिभंगी, वा छवि भरि लियौ नैननि मैं ॥२॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) मोहनने आज मनोहर वंशी बजायी, (जिसे सुनकर) शरीर और मनकी कुछ सुधि नहीं रह गयी । मैं स्वभाववश (प्रतिदिनकी भाँति) यमुना-किनारे जा रही थी और कन्हैया वृन्दावनमें खड़े थे । कोमल बोलोंमें अमृतभरे हुए वे अनेक प्रकारकी राग-रागिनियाँ गा रहे थे । श्यामसुन्दरके अङ्गोंकी वह त्रिभङ्गी छटा (शोभा) देखकर (मैंने) नेत्रोंमें भर ली है ।

राग सारंग

[३२३]

तबहीं मेरौ मन चोरयौ री, जब कर मुरलि लई ।
बाजत राग रागिनीं उपजत, तान-तरंग नई ॥ १ ॥
देह दसा बिनु सुधि भइ सजनी, अँग अँग प्रीति रई ।
तन, मन, प्रान, ग्यान, गुन मेरौ, स्यामै अरपि दई ॥ २ ॥
हरि मुख बचन सुधा रस लोचन इकटक चितै दई ।
सूरदास प्रभु तुम्हरी दासी करि बिन मोल लई ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि ! मोहनने तभी चित्त चुरा लिया, जब उन्होंने हाथमें मुरली ली । (उसके) बजते समय (अनेक) राग एवं रागिनियाँ उत्पन्न होतीं । तानकी नयी-नयी तरंगें उठी थीं । सखी ! (मेरे) अङ्ग-प्रत्यङ्गमें (उनकी) प्रीति रम गयी और (उससे) देहकी दशाका अनुसंधान जाता रहा । (मैंने) अपना तन, मन, प्राण, ज्ञान और गुण (सब कुछ) श्यामसुन्दरको भेंट कर दिया (दे दिया) । श्रीकृष्णके मुखपर

निर्निमेष नेत्र लगा दिये और उनके वचनोंसे झरनेवाले सुधारसमें चित्तको लगा दिया। प्रभो! (इस प्रकार) तुमने (मुझे) बिना मूल्यकी अपनी दासी बना ली।

राग केदार

[३२४]

मुरली सबन कौ मन हर्‌यौ।
प्रथमहीं ब्रजनारि सुनि कैं आनि गिरिधर बर्‌यौ॥ १॥
तब नहीं रहि गयौ हम पै, सब्द स्रवनन पर्‌यौ।
पिता, सुत, पति, बिसरि अंबर, चलीं तजि गृह भर्‌यौ॥ २॥
सिद्ध, चारन, गुनी, गँधरब, सुनत सब बिसर्‌यौ।
मगन मन मारुत न डोलै, सिथिल ससि न टर्‌यौ॥ ३॥
मोर, मधुप, चकोर, सारस, सबनि यह मत कर्‌यौ।
आपनौ ब्रत छाँड़ि बानी, जोग जड़ ब्रत धर्‌यौ॥ ४॥
निकसि सर्प न दुरत बाँबी, कछु जु बंसी कर्‌यौ।
तोरि तृन मृग सुरभि दसनन दाबि नाहिन चर्‌यौ॥ ५॥
चतुर कोकिल रही चित दै, कीर नैकु न मुर्‌यौ।
ध्यान सौ धरि रहे द्रुम सब, नाद उर मैं अर्‌यौ॥ ६॥
थके थिर चर सुर असुर नर, लए धरनी धर्‌यौ।
सूर प्रभु मुरली अधर धरि, काम नाचत खर्‌यौ॥ ७॥

सूरदासजी कहते हैं—वंशीने सभीका मन हर लिया। उसे सुनकर व्रजकी स्त्रियोंने पहिले ही आकर गिरिधरलालको (पतिरूपमें) वरण कर लिया। जब उसका शब्द कानोंमें पड़ा, तब हमसे (घर) नहीं रहा गया। पिता, पुत्र, पति तथा (शरीरका) वस्त्र तकको हम भूल गयीं, भरा हुआ (सम्पन्न) घर भी छोड़कर चल पड़ीं। सिद्ध, चारण, कलावंत, गन्धर्व आदि सब उसे सुनते ही (अपनी कला) भूल गये। पवनका चित्त भी (उसमें) मग्न हो गया, वह चलता नहीं था और चन्द्रमा (भी) शिथिल होकर हिलतातक न था। मयूर, भौंरे, चकोर, सारस आदि सबको (वंशीने) इस प्रकारका बना दिया कि अपने बोलनेका नियम

त्यागकर सबने जडयोगका व्रत ले लिया (जडके समान स्थिर बन गये)। वंशीने कुछ ऐसा (जादू) कर दिया कि सर्प बिलसे निकल आये और फिर बिलमें छिपे नहीं; हिरन और गायें घासको दाँतोंसे काटकर उसे दाँतोंमें ही दबाये रहीं—निगल नहीं पायीं। चतुर कोकिला (जो दूसरेका शब्द सुनकर बोलने लगती है) चित्त लगाये (मूक) रह गयी। तोता तनिक भी मुड़ा (हिला) नहीं। वंशीध्वनि वृक्षोंके हृदयमें प्रवेश करके ऐसी अड़ (अटक) गयी कि वे सब ध्यान-सा लगाये स्थिर हो रहे। जड-चेतन, सुर-असुर, मनुष्य और पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनागतक मुग्ध हो गये। प्रभुने जब ओठपर वंशी रख ली उस समय (ऐसा लगा कि) साक्षात् कामदेव नृत्य कर रहा है।

[३२५]

मुरली बहुतै ढीठ भई।
ऐसी निठुर भई देखतहीं, उपजी व्याधि नई॥ १॥
यह रस भरी बदति नहिं काहू, अति उर रोष तई।
सूरदास ऐसी कुनारि किन्ह बचननि मोल लई॥ २॥

सूरदासजीके शब्दोंमें कोई गोपी कह रही है—(सखि!) मुरली बहुत ही ढीठ हो गयी है। यह देखते-देखते ही इतनी निष्ठुर हो गयी, (यह तो) एक नया रोग उत्पन्न हो गया (एक रोग बन गयी)। यह रससे पूर्ण है, (इसीलिये) किसीको कुछ गिनती ही नहीं, हृदयमें अत्यन्त क्रोधसे तप्त रहती है। ऐसी बुरी स्त्रीने (मोहनको न जाने) अपने किन (मीठे) वचनोंसे मोल ले लिया (वशमें कर लिया)।

[३२६]

मुरली या तैं हरिहि पियारी।
अधर धरत सरजीव होति है, मृतक होति किएँ न्यारी॥ १॥
जैसी प्रीति मीन जल, पंकज तरनि बिना मुरझाई।
× × × × ॥ २॥

अरु ज्यौं जगै अगिनि चकमक की, पाथर सहै झरारी।
तौ लौं सूर कहाँ पिय पैयत गोकुल चंद बिहारी॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) मुरली इसलिये हरिको प्यारी है कि वह उनके ओठपर रखते ही सजीव (बोलनेवाली) हो जाती है और पृथक् करनेपर मृतक (मूक) हो जाती है। (उसका जीवन ही श्यामके हाथमें है।) जैसा प्रेम मछलीका जलसे है और जैसे कमल सूर्यके बिना मुरझा (कुम्हला) जाता है, (वैसी ही प्रीति वंशीकी नन्दनन्दनसे है)............। और जैसे चकमक पत्थरसे अग्नि प्रकट होती है, तब पत्थर उसकी ज्वाला (ताप) सहता है; उसी प्रकार जबतक प्रेमका ताप न सहा जाय, तबतक गोकुलचन्द्र श्रीविहारीलालको प्रियतम-रूपसे कैसे पाया जा सकता है।

[३२७]

मुरली ! तेरौई बड़ भाग।
धन्य सुबंस कुंज कौ लहनौ, जिहिं उपजी बन बाग॥ १॥
प्रथम सह्यौ छत कर कुठार कौ, दूजें सब तन दाग।
उतनें दुख इतनौ सुख पायौ, पीवति कमल पराग॥ २॥
जाकौ जस गुन गँधरब गावत, सुर, नर, मुनि जन, नाग।
सूरदास प्रभु बस्य किये हरि, बंसी करि अनुराग॥ ३॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—वंशी! तुम्हारा ही भाग्य महान् है। जिस वन-उपवनमें तुम उत्पन्न हुई, उस बाँसके कुञ्ज (झुरमुट) का तुम्हें पाना धन्य हुआ। पहिले तो तुमने हाथसे कुल्हाड़ेद्वारा किये गये घाव और फिर पूरे शरीरपर अग्निसे बनाये गये चिह्न (छिद्र तथा चित्रादि) सहे। इतने (घोर) दुःखसे तुमने इतना (महान्) सुख पाया कि (अब) हरि-मुख-कमल-पराग (श्यामके अधरामृत) को पीती हो। जिसका सुयश एवं गुण गन्धर्व, देवता, मनुष्य, मुनिजन तथा शेषनाग भी गाते हैं, उन्हीं प्रभु श्रीहरिको प्रेम करके वंशीने (अपने) वशमें कर लिया।

[३२८]

स्याम सुँदर मदन मोहन बाँसुरी बजाई री।
दोऊ कर जोरि बहुरि अधरनि पै आनि धरी,
थकित भईं ग्वारिनि सुधि नहीं रही काई री।
बाजै सु अनेक राग, बानी, सिव, सेस नाग,
धुनि सुनि सब सीस धुनैं धरनि परी आई री ॥ १ ॥
बाजै बर कौन सुनै, (यातैं) मगन भए सुर, नर, मुनि,
रुद्र जु कौ ध्यान छुट्यौ, गौरी उर लाई री।
सूर गावत हरि छंद, गोपिन मैं भयौ अनंद,
सबनि श्रीराधा प्यारी प्रीति कै बुलाई री ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि ! मदनमोहन श्यामसुन्दरने वंशी बजायी है, दोनों हाथोंसे संयुक्त करके (दोनों हाथोंमें लेकर) फिर उसे उठाकर ओठोंपर रख लिया। (उसकी ध्वनि सुनकर) सभी गोपियाँ मुग्ध हो गयीं, किसीको भी अपनी सुधि नहीं रही। वह अनेक उत्तम राग बजाती है, जिसकी ध्वनि सुनकर सरस्वती, भगवान् शंकर तथा शेषनाग आदि सब (देवता) पृथ्वीपर आकर मस्तक धुनते (झूमने लगते)—हैं। इससे श्रेष्ठ (दूसरा) बाजा कौन हो सकता है, जिसे वे सुनें। (इसीसे) देवता, मनुष्य तथा मुनिगण भी (आनन्द-) मग्न हो गये। शंकरजीका ध्यान (समाधि) भङ्ग हो गया और उन्होंने पार्वतीको हृदयसे लगा लिया। श्यामसुन्दरका यशोगान करते समय गोपियोंमें बड़ा आनन्द हुआ (और) उन सबोंने अपनी प्यारी सखी श्रीराधाको प्रेमपूर्वक बुलाया।

[३२९]

आजु कहुँ मुरली स्याम बजाई।
तब तैं तरवर मोर सबै, पुर रही बदरिया छाई ॥ १ ॥

गौवन अधर दसन तृन रहि गयौ, बछरा पियत न धाई।
सिध, साधक, ब्रह्मादिक, येऊ रहे सबै लौ लाई ॥१॥
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं धुनि सुनि सुनि उठि धाई ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—श्यामसुन्दरने आज कहीं वंशी बजायी है, तभीसे सभी मयूर श्रेष्ठ वृक्षोंपर ही (शान्त) बैठे हैं और नगरपर बादल छा रहे हैं। गायोंके जबड़ों और दाँतोंमें पकड़ा तृण (घास) बीचमें (मुखमें) ही रह गया और बछड़े दौड़कर थन नहीं पी रहे हैं। सिद्ध, साधक तथा ब्रह्मादि देवता भी उसी (ध्वनि) में ध्यान लगाकर स्थिर हो रहे हैं। प्रभो ! तुम्हारी (वंशीकी) ध्वनि सुन-सुनकर ही (हम सब) तुम्हारे दर्शनके लिये उठकर दौड़ पड़ी (दौड़ी आयी) हैं।

[३३०]

सुनौ हो, या मोहन की बैन।
स्रवन सुनत सुधि बुधि सब बिसरी, बिरह बिथा भइ ऐन ॥१॥
गृह अँगना न सुहाइ मेरी सजनी, नाहिं परत चित चैन।
जब मुख देखौं स्याम सुँदर कौ, तब सचु पावैं नैन ॥२॥
रास रच्यौ बृंदाबन महियाँ, सब गोपिनि सुख दैन।
अप-अपने बानक बनि आईं, तट जमुना जल फैन ॥३॥
देवलोक सुरलोक बिसारी, चंदा बिसरयौ रैन।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं चलीं मदन गढ़ लैन ॥४॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि ! इस मोहनकी वंशी (तो) सुनो, कानोंसे इसे सुनते ही सारी सुधि-बुधि (शरीरका स्मरण एवं विचार) भूल गयी और वियोगकी पीड़ा (हृदयमें) घर कर गयी। मेरी सखी ! (अब मुझे) न घर अच्छा लगता है, न आँगन और न चित्तमें चैन (स्थिरता) ही पड़ता है। जब श्यामसुन्दरका श्रीमुख देखूँ (उनके दर्शन हों), तब मेरे नेत्र शान्त (सुखी) हों। उन्होंने सभी गोपियोंको सुख देनेके लिये वृन्दावनमें रासक्रीड़ा की। गोपियाँ यमुनाजलमें फेनकी भाँति (स्वतः एकत्र हो) अपना-अपना शृङ्गार करके यमुना किनारे आ

गयी थीं । देवता लोग स्वर्ग लोकको भूल (कर पृथ्वीपर छा) गये थे और चन्द्रमा तो रात्रि ही भूल गया (कि कब रात्रि समाप्त करके उसे अस्त होना है) । स्वामी ! तुम्हारे दर्शनके लिये (हम सब) कामदेवके दुर्गको ही जीतने चल पड़ी हैं ।

[३३१]

मुरली मोहन अधरनि बासा ।
सिव समाधि छूटी धुनि सुनि कैं, सरिता कियौ निवासा ॥१॥
मीन, कुरंग, सेष, ससि मोहे, सब थकि रहे निवासा ।
कमल नैन कहि कहि अति जोधा जपत रहे सूरदासा ॥२॥

(जब) मुरलीने मोहनके ओठोंपर डेरा डाला (ओठोंसे लगकर बजने लगी), (तब) उसकी ध्वनि सुनकर शंकरजीकी समाधि छूट गयी और सरिताएँ स्थिर (प्रवाहहीन) हो गयीं । मछलियाँ, मृग, शेषनाग तथा चन्द्रमा—सभी अपने-अपने स्थानपर थकित (गतिहीन) हो रहे । कमलनयन (श्यामसुन्दर) बहुत बड़े योधा (शूरवीर) हैं, (केवल वंशीसे सम्पूर्ण जगत्‌को वशमें कर लेते हैं) यह बार-बार कहकर सूरदास उनका जप (यशोगान) करता रहता है ।

राग काफी

[३३२]

मोहन मन मोहि लियौ ललित बेनु बजाई री ।
मुरली धुनि स्रवन सुनत बिबस भई माई री ॥ १ ॥
लोक लाज, कुल की मरजादा बिसराई री ।
घर घर उपहास सुनत नेकु ना लजाई री ॥ २ ॥
जप तप बेद ऽरु पुरान, कछू ना सुहाई री ।
सूरदास प्रभु की लीला निगम नेति गाई री ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि ! मोहनने मनोहर वंशी बजाकर (मेरे) मनको मोहित कर लिया । सखी ! कानोंसे वंशीकी ध्वनि

सुनते ही मैं विवश हो गयी। लोक (समाज) की लज्जा और कुलकी मर्यादा (सब इस वंशीध्वनिने) भुलवा दी, प्रत्येक घरमें (अपना) उपहास (निन्दा) सुनते हुए भी मैं तनिक भी लज्जित नहीं हुई। जप, तप, वेद तथा पुराण (इनका उपदेश) आदि (अब) कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हमारे स्वामीकी लीलाका वेद भी 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं। (उन्होंने मुझे इस प्रकार वशमें कर लिया; इसमें कौन आश्चर्य है।)

[३३३]

सुनि आधी सी राति मोहन मुरलि बजावै।
नींद उचटि गइ, मन मुरझानी, प्रानन और न भावै॥ १॥
मन हरि लियौ, देह गति भूली, घर अँगना न सुहावै।
सूरदास प्रभु मुरली तानन देह दसा बिसरावै॥ २॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखी !) सुनो, लगभग आधी रातके मोहनने वंशी बजायी, (जिससे) मेरी निद्रा भङ्ग हो गयी और मन उदास हो गया। (अब) प्राणोंको और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। (उन्होंने) मेरा चित्त हरण कर लिया, मैं देहकी दशा भूल गयी और (अब) घर या आँगन—कुछ भी अच्छा नहीं लगता। हमारे स्वामी तो वंशीकी तानोंसे शरीरकी दशा भी भुलवा देते हैं।

[३३४]

स्याम ! तेरी मुरली मधुर धुनि बाजै।
मुरली तेरी सुर नर मोहै, तीनि लोक पर गाजै॥ १॥
लीन्हे बाल गुपाल लाल सँग, आवत गैयनि पाछैं।
मोर मुकुट, कुंडल की सोभा, पीत काछनी काछैं॥ २॥
काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, माथें तिलक बिराजै।
सूरदास के प्रभु की सोभा कोटिन काम पराजै॥ ३॥

श्यामसुन्दर ! तुम्हारी मुरली मधुर ध्वनिसे बजती है। तुम्हारी वंशी सभी देवता और मनुष्योंको मोहित कर लेती है तथा तीनों लोकोंके ऊपर प्रभुत्व करती है। गोपाललाल बालकोंको साथ लिये गायोंके पीछे (वनसे) आ रहे हैं, मयूरपिच्छका मुकुट (मस्तकपर) है, (कानोंमें) कुण्डल शोभा दे रहे हैं, पीताम्बरकी कछनी काछे हैं । कंधेपर कम्बल है, हाथमें छड़ी है, मस्तकपर तिलक सुशोभित है। सूरदासके स्वामीकी इस शोभासे करोड़ों कामदेव पराजित हो जाते हैं।

[३३५]

माई, मुरली बजाई किन री।
नंद महर कौ कुँअर कन्हैया, रैनि न जानै दिन री॥ १ ॥
मोहे खग, मृग, औ पसु पालक, मोहे बन उपबन री।
चलत न नीर, थकित भइ जमुना, गऊ न चारैं तृन री॥ २ ॥
मुरलि बजाई, सब मन भाई, स्रवन सुन्यौ जिन जिन री।
सूरजदास सकल जन मोहे, मुरली की धुनि सुनि री॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि ! (यह) वंशी किसने बजायी ? व्रजराज श्रीनन्दजीके कुमार ये कन्हैया न तो रात देखते हैं और न दिन। (इन्होंने) पक्षी-पशु और पशुपालक गोपोंको मोहित कर लिया तथा वन और उपवनोंको भी मोहित कर लिया। यमुनाजी (भी) स्तम्भित (स्थिर) हो गयी हैं, उनका जल बहता नहीं तथा गायें घास नहीं चरतीं। इन्होंने ऐसी वंशी बजायी कि जिन-जिनने उसे कानोंसे सुना, उन सभी (प्राणियों) के मनको वह (बहुत ही) प्यारी लगी। (उनकी) मुरलीकी ध्वनि सुनकर सभी लोग मोहित हो गये।

[३३६]

जब कर बेनु सची बलबीर।
स्रवन सुनत सुर नर जु थकित भए,
सरिता थकित, बहत नहिं नीर॥ १ ॥
सागर थकित, कमठ पुनि बिथक्यौ,
सेस सहस मुख धरत न धीर।

सिव थकि ध्यान, ग्यान ब्रह्मा थके,
गो सुत थकित पियत नहिं छीर ॥ २ ॥
पवन थकित, औ थकि बन बेली,
बनिता थकित बिसारे चीर ।
सूरदास प्रभु थकित जसोदा,
उड़गन थकित रहे इहिं तीर ॥ ३ ॥

जब श्रीबलरामजीके छोटे भाई श्यामसुन्दरने हाथमें वंशी ली, उस समय उसकी ध्वनि कानोंसे सुनते ही देवता और मनुष्य (सब) मुग्ध हो गये, नदियाँतक स्थिर हो गयीं, उनका जल बहता नहीं । समुद्र स्तम्भित हो गया, (शेषनागके भी आधार) भगवान् कच्छप अत्यन्त विमुग्ध हो गये तथा सहस्र मुखवाले शेषनाग धैर्य नहीं रख सके । शंकरजीका ध्यान शिथिल (भङ्ग) हो गया । ब्रह्माजीका ज्ञान थकित (विस्मृत) हो गया और बछड़े मुग्ध हुए दूध नहीं पी रहे थे । वायु गतिहीन हो गया और वनकी लताएँ शिथिल हो गयीं तथा व्रजस्त्रियाँ मुग्ध होकर शरीरके वस्त्र (तक) की सुधि भूल गयीं । सूरदासजी कहते हैं—मेरे स्वामीके (वंशी बजानेके) कारण माता यशोदा थकित (मुग्ध) हो रहीं और तारागणतक थकित होकर (आकाशके) इसी किनारे रह गये (उनकी गति बंद हो गयी, अतः रात्रि बढ़ गयी) ।

राग मलार

[३३७]

मुरली ! कौन गुमान भरी ।
जानति है उतपात आपने, उतपति क्यौं बिसरी ॥ १ ॥
हवै आपनें बेध बनाए, बहु बिधि जरनि जरी ।
तातैं श्रीकमलापति लीन्ही, अधरनि आँनि धरी ॥ २ ॥
अब धौं कहा कियौ चाहति है, सरबस लै निबरी ।
सूरदास ब्रज हा हा करि कैं गोपी कहति खरी ॥ ३ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—) वंशी ! तू किस गर्वसे पूर्ण हो रही है ? तू अपने उत्पात (कितने उपद्रव तू कर रही है) जानती है ! अपनी (बाँससे) उत्पत्ति (तू) क्यों भूल गयी ? (तूने) अपने हृदयमें छेद करा लिये और अनेक प्रकारकी ज्वालाओंमें जली (नाना प्रकारके तप किये); इसीलिये श्रीलक्ष्मीकान्त (श्यामसुन्दर) ने तुझे उठा लिया और लाकर (अपने) ओठोंपर रख लिया। तू हमारा सर्वस्व (वह अधरामृत) तो ले चुकी, अब भला और क्या करना चाहती है ?' सूरदासजी कहते हैं कि व्रजकी गोपियाँ 'हाय-हाय' करती हुई इस प्रकार (वंशीसे) खरी-खरी (कठोर) बातें कहती हैं।

राग नट

[३३८]

हम न भईं बड़भागिनि बँसुरी।
कर अंबुज मैं बास सदाई जाकौ,
छन छन पियति अधर मधु रसु री ॥ १ ॥
मुरलि मनोहर नाम कहावत,
तीनौं लोक बिदित जग जसु री।
सूरदास प्रभु अधिक निठुर भए,
मुरलि कौं दियौ हमारौ सरबसु री ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपियाँ कह रही हैं—(सखियो !) हम महान् भाग्यशालिनी वंशी नहीं हो सकीं, जिसका (श्यामसुन्दरके) कर-कमलमें नित्य ही निवास है और जो क्षण-क्षणमें अधरामृत-रसका पान करती है। (इसीके कारण) ये मुरली-मनोहरके नामसे पुकारे जाते हैं और संसारके तीनों लोकोंमें (इनका) सुयश प्रख्यात हो गया है। हमारे स्वामी (उसके संसर्गसे) अत्यधिक निष्ठुर हो गये हैं। उन्होंने हमारा सर्वस्व (अपना अधरामृत) मुरलीको दे दिया है।

राग गौरी

[३३९]

मुरली कुंजनि कुंजनि बाजति ।
सुनि री सखी ! स्रवन दै अब तू, जिहिं बिधि हरि मुख राजति ॥१॥
कर पल्लव जब धरत साँवरे, सप्त सुरनि कल साजति ।
सूरदास यह सौति साल भई, सबहिनि कै सिर गाजति ॥२॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—मुरली कुञ्जों-कुञ्जोंमें बजती है । अरी सखी ! अब तू कान लगाकर सुन, यह जिस प्रकार श्यामके मुख-पर सुशोभित होती है (वह मैं तुझे बतलाती हूँ) । श्यामसुन्दर जब (इसे) अपने पल्लवके समान हाथपर रखते हैं, तब यह सातों मधुर स्वरोंसे सज्जित होती है (सातों स्वरोंमें बजती है) । यह तो दुःखदायिनी सौत हो गयी है, जो हम सभीके सिरपर गर्जती है ।

[३४०]

मुरली तनक सुनै जो है ।
जल, थल, जीव, जंतु कौ स्वामी, सोऊ वा सुर मोहै ॥ १ ॥
जा तीरथ व्रत कियौ तरुनि सब स्रम करि, पीठि न दीन्ही ।
ता तीरथ के व्रत के फल सौं स्याम सुहागिनि कीन्ही ॥ २ ॥
हमैं छुड़ाइ अधर रस पीवै, करति न रंचक कानि ।
सूरदास प्रभु निकसि कुंज तैं जुरी सौति बनि आनि ॥ ३ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि !) जिसने तनिक (भी) मुरली सुनी, उनका हाल बतलाती हूँ । जल, स्थल तथा समस्त जीव-जन्तुओंके जो स्वामी हैं, वे (श्यामसुन्दर) भी उसका स्वर सुनकर मोहित हो जाते हैं । जिसके लिये तीर्थ (यमुनाजी) में स्नान करते हुए व्रजकी सब युवतियोंने परिश्रमपूर्वक व्रत किया, कभी मुख नहीं मोड़ा, उस तीर्थपर किये हुए व्रतके फल (अधरामृत) से श्यामसुन्दरने इस (वंशी) को सौभाग्यवती बना दिया । हमसे (उसे) छुड़ाकर (हमें वञ्चितकर) यह (वंशी) (स्वयं) मोहनके अधर-रसको पीती है और तनिक भी संकोच नहीं करती । कुञ्ज (वन) मेंसे निकलकर हमारे स्वामीसे यह आ मिली और हमारी सौत बनकर बैठ गयी ।

राग पूरबी

[३४१]

मुरली बाजै मुख मोहन कैं, सुनि रीझी रसताननि।
अतिहिं दूरिही धुनि सँग आई, भईं मगन दै काननि ॥ १ ॥
तब तैं और कछू नहिं भावत, मन भावति छबि बाननि।
सूरदास प्रभु नवल छबीलौ हरत नवेलिनि ग्याननि ॥ २ ॥

सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—(सखि!) मोहनके मुखसे वंशी बज रही है। उसकी रसपूर्ण तानें सुनकर (सब गोपियाँ) रीझ (मुग्ध हो) गयीं। अत्यन्त दूरसे ही उसकी ध्वनिपर कान लगाकर सब (प्रेम-) मग्न हो गयीं और उसके सहारे (श्यामके पास) चली आयीं। तभीसे उन्हें दूसरा कुछ अच्छा नहीं लगता, केवल वही सजीली छटा मनको प्रिय लगती है। सूरदासके नवल मनोहर स्वामी (इस प्रकार) युवतियोंकी सुध-बुध हर लेते हैं।

राग काफी

[३४२]

(माई) मोहन की मुरली मैं मोहिनी बसत है।
जब तैं सुनी स्रवन, रह्यौ न परै भवन,
देह तैं मनौ प्रान अब निकसत हैं ॥ १ ॥
कहा करौं मेरी आली, बाँसुरी की धुनि साली,
माता पिता पति बंधु अतिहीं त्रसत हैं।
मदन अगिनि और बिरह की ज्वाल जरी
जैसैं जल हीन मीन तट दरसत हैं ॥ २ ॥
अतिहिं तपति छाती, लागति है प्रेम काती,
फूलनि की माला मनौ ब्याल ह्वै डसत है।
सूर स्याम मिलन कौं आतुर ब्रज की बाल,
एक एक पल जुग जुग ज्यौं खसत है ॥ ३ ॥

(सूरदासजीके शब्दोंमें गोपी कह रही है—सखि!) 'मोहनकी मुरलीमें तो मोहित करनेकी शक्ति निवास करती है। जबसे मैंने उसे कानोंसे सुना है,

(तबसे) घरमें रहा नहीं जाता; (ऐसा लगता है) मानो शरीरसे अभी ही प्राण निकल जानेवाले हैं। मेरी सखी ! मैं क्या करूँ, वंशीकी ध्वनिने मुझे बेचैन कर दिया। माता, पिता, पति तथा भाई आदि अत्यन्त त्रास (क्लेश) देते हैं। कामदेवकी अग्नि तथा वियोगकी ज्वालासे मैं ऐसे जल रही हूँ जैसे जलसे पृथक् हुई मछली (सरोवरके) किनारेपर दिखलायी पड़े। मेरा हृदय अत्यन्त संतप्त हो रहा है। प्रेमका डंक बराबर लग रहा है और पुष्पोंकी माला मानो सर्प बनकर डँस रही है।' सूरदासजी कहते हैं कि श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये व्रजनारियाँ इतनी व्याकुल हैं कि उन्हें एक-एक पल एक-एक युगके समान (कठिनाईसे) खसकता (बीतता) जान पड़ता है।

राग आसावरी

[३४३]

इक दिन मुरली स्याम बजाई।
मोहे सुर, नर और सकल मुनि, उन बदरिया आई।
जमुना नीर प्रवाह थकित भयौ, चलै नहीं जु चलाई।
गायनि के मुख दाँतन तृन रहे, बच्छ न छीर पिवाई॥ २॥
द्रुम बेली अनुराग पुलकि तनु, ससि थकि निसि न घटाई।
सूरदास प्रभु मिलिबे कारन चलीं सखीं सुधि पाई॥ ३॥

एक दिन श्यामसुन्दरने वंशी बजायी; (उसे सुनकर) देवता, मनुष्य और सभी मुनिगण मोहित हो गये और मेघ उमड़-घुमड़कर छा गये। यमुना-जलका प्रवाह रुद्ध हो गया, बहानेसे भी वह बहता नहीं। गायोंके मुखकी घास दाँतोंमें दबी रह गयी तथा बछड़े दूध नहीं पीते। वृक्ष और लताओंका शरीर प्रेमसे पुलकित हो गया। चन्द्रमा स्तब्ध (स्थिर) रह गया, इसलिये रात्रि घटी ही नहीं। सूरदासके स्वामीसे मिलनेके लिये (परस्पर) समाचार पाकर सब सखियाँ चल पड़ीं।